बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का समालोचनात्मक अध्ययन (पालि त्रिपिटक के विशेष सन्दर्भ में)

पी-एच्.डी. (बौद्ध अध्ययन)
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध



शोधार्थी

शुभम महेश गजभिये
पंजीयन संख्या - **En16-00004**

शोध-निर्देशक

डॉ. रमेश रोहित
सहायक प्राध्यापक (वरिष्ठ श्रेणी)
बौद्ध-दर्शन विभाग

विभागाध्यक्ष

डॉ. सन्तोष प्रियदर्शी
सहायक प्राध्यापक (वरिष्ठ श्रेणी)
अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध अध्ययन स्कूल
विभागाध्यक्ष
बौद्ध-दर्शन विभाग

बौद्ध-दर्शन विभाग
बौद्ध-दर्शन एवं अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध अध्ययन स्कूल
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय
साँची, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

2025

बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का समालोचनात्मक अध्ययन (पालि त्रिपिटक के विशेष सन्दर्भ में)

पी-एच्.डी. (बौद्ध अध्ययन)

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध



शोधार्थी

शुभम महेश गजभिये

पंजीयन संख्या- En16-00004

शोध-निर्देशक

डॉ. रमेश रोहित

सहायक प्राध्यापक (वरिष्ठ श्रेणी)

बौद्ध-दर्शन विभाग

विभागाध्यक्ष

डॉ. सन्तोष प्रियदर्शी

सहायक प्राध्यापक (वरिष्ठ श्रेणी)

अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध अध्ययन स्कूल

विभागाध्यक्ष

बौद्ध-दर्शन विभाग

बौद्ध-दर्शन विभाग

बौद्ध-दर्शन एवं अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध अध्ययन स्कूल

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

साँची, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

2025



नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।

महाकारुणिकं नाथं, ञेय्यसागरपारगुं।
वन्दे निपुणगम्भीर-विचित्रनयदेसनं॥
विज्जाचरणसम्पन्ना, येन निय्यन्ति लोकतो।
वन्दे तमुत्तमं धम्मं, सम्मासम्बुद्धपूजितं॥
सीलादिगुणसम्पन्नो, ठितो मग्गफलेसु यो।
वन्दे अरियसङ्घं तं, पुञ्ञक्खेत्तं अनुत्तरं॥
वन्दनाजनितं पुञ्ञं, इति यं रतनत्तये।
हतन्तरायो सब्बत्थ, हुत्वाहं तस्स तेजसा॥

शोध-निर्देशक प्रमाण-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि शोध-प्रबन्ध विषय **"बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का समलोचनात्मक अध्ययन" (पालि त्रिपिटक के विशेष सन्दर्भ में)** शुभम महेश गजभिये द्वारा किया गया शोध-कार्य है, जिसे साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय में पी-एच्. डी. उपाधि के लिए मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

मेरी जानकारी के अनुसार

1. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य प्रतीत होता है।
2. यह शोध-कार्य यू.जी.सी. के दिशा निर्देशों को पूरा करता है।
3. विश्वविद्यालय की पी-एच्. डी. उपाधि से सम्बन्धित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

शोध-निर्देशक

डॉ. रमेश रोहित
सहायक प्राध्यापक (वरिष्ठ श्रेणी)
बौद्ध-दर्शन विभाग

शोधार्थी द्वारा घोषणा-पत्र

मैं एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ की यह शोध-कार्य "**बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का समलोचनात्मक अध्ययन" (पालि त्रिपिटक के विशेष सन्दर्भ में),** (शोध-निर्देशक) बौद्ध-दर्शन विभाग एवं अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध अध्ययन स्कूल के अधीन किया गया मेरा मौलिक शोध-कार्य है, जिसे विभागीय शोध समिति द्वारा अनुमोदित किया गया है।

मैं, यह भी घोषणा करता हूँ की मेरी जानकारी के अनुसार इस शोध-प्रबन्ध में किसी प्रकार का ऐसा तथ्य उद्धृत नहीं किया गया, जो इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय के समक्ष किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो। साथ ही मैं यह घोषणा करता हूँ कि

1. मैंने यू.जी.सी. के अधिनियम 2018 के मापदण्डों के अनुसार एक सत्र का कोर्स वर्क सफलतापूर्वक पूर्ण कर लिया है।
2. मैंने शोध-प्रबन्ध प्रस्तुति पूर्व सेमिनार भी दिया है और दिए गये निर्देशों एवं सुझावों के आधार पर संशोधनों को सफलापूर्वक शामिल किया है।
3. मेरे द्वारा शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित शोध-कार्य ISSN / Referred Journals में दो शोध-पत्र प्रकाशित किया गया है जिसकी छायाप्रति शोध-प्रबन्ध के अन्त में संलग्न है। मैंने संगोष्ठी में शोध-पत्र भी प्रस्तुत किये है।
4. मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में कोई भी समग्री, किसी अन्य शोध या किसी प्रकाशित सामग्री का हिस्सा नहीं है। यदि किसी साहित्यिक सामग्री को लिया है तो उसका यथास्थान सन्दर्भ दे दिया गया है।

शुभम महेश गजभिये
शोधार्थी
EN16-00004
बौद्ध-दर्शन विभाग

सर्वाधिकार

मैं, शुभम महेश गजभिये, एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची, रायसेन, मध्य प्रदेश द्वारा **"बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का समलोचनात्मक अध्ययन" (पालि त्रिपिटक के विशेष सन्दर्भ में)** को शैक्षणिक / अनुसन्धान उद्देश्य से इलेक्ट्रिनिक या प्रिंट प्रारूप में उपयोग करने के अधिकार होंगे।

नोट : शोधार्थी अथवा अन्य द्वारा शोध-प्रबन्ध के आँकडों / निष्कर्ष का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से किया जा सकेगा बशर्ते कि विश्वविद्यालय के सर्वाधिकार का उल्लेख किया जाये।

शुभम महेश गजभिये
शोधार्थी
EN16-00004
बौद्ध-दर्शन विभाग

शोध मौलिकता प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध **"बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का समलोचनात्मक अध्ययन" (पालि त्रिपिटक के विशेष सन्दर्भ में)** की साहित्यिक प्रतिबद्धता की जाँच निम्नलिखित उपकरण से की गयी है। मैं यह घोषणा करता हूँ कि–

1. शोध-प्रबन्ध ज्ञान के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। यह शोध-प्रबन्ध इस विषय में अब तक किये गये कार्य/प्रकाशित/अप्रकाशित होने वाले कार्यों से भिन्न है। किसी भी प्रकार का वाक्य, चित्र, आरेख, अनुच्छेद कहीं से भी नकल नहीं है, तथा जहाँ भी किसी पूर्व के कार्यों का उल्लेख शोध-प्रबन्ध में किया गया है, उसे उद्धरण चिन्ह के अन्तर्गत रखा गया है।
2. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य है (किसी भी कार्य का नकल नहीं है) । शोधार्थी द्वारा किसी अन्य के कार्यों, संकल्पना, प्रक्रिया, परिणाम को अपने शोध-कार्य में दावा नहीं किया गया है।
3. शोध-कार्य के परिणाम एवं विश्लेषण में किसी भी प्रकार की मिथ्या धारणा का सहारा नहीं लिया गया है।
4. शोध-कार्य में किसी भी अनुसन्धान सामग्री, उपकरण या प्रक्रियाओं या परिणामों की अदला-बदली के माध्यम से गलत परिणाम आते हैं, शोध-कार्य में ऐसा कोई भी प्रयास नहीं है ।
5. "विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (उच्चतर शिक्षा संस्थानों में अकादमिक सत्यनिष्ठ एवं साहित्यिक चोरी की रोकथाम को प्रोत्साहन) विनियम, 2018" के दिशा-निर्देश के अनुसार शोध-प्रबन्ध की जाँच DrillBit के द्वारा की गई है।

शुभम महेश गजभिये
शोधार्थी
EN16-00004

DrillBit

The Report is Generated by DrillBit Plagiarism Detection Software

Selected Language Hindi

Submission Information

Author Name	Shubham Gajbhiye
Title	बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का समालोचनात्मक अध्ययन
Paper/Submission ID	3486237
Submitted by	coordinator.inflibnet@subis.edu.in
Submission Date	2025-04-10 21:41:50
Document type	Thesis

Result Information

Similarity	**6%**

A Unique QR Code use to View/Download/Share Pdf File



DrillBit

DrillBit Similarity Report

6	28	A
SIMILARITY %	MATCHED SOURCES	GRADE

A-Satisfactory (0-10%)
B-Upgrade (11-40%)
C-Poor (41-60%)
D-Unacceptable (61-100%)

LOCATION	MATCHED DOMAIN	%	SOURCE TYPE
1	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	1	Publication
2	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	1	Publication
3	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	1	Publication
4	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
5	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
6	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
7	Paper Submitted to Dr. Rammanohar Lohia Avadh University, Ayodhya	<1	Student Paper
8	Paper Submitted to Banaras Hindu University	<1	Student Paper
9	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
10	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
11	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
12	Paper Submitted to Banaras Hindu University	<1	Student Paper
13	Paper Submitted to Banaras Hindu University	<1	Student Paper
14	Paper Submitted to Banaras Hindu University	<1	Student Paper

15	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
16	Paper Submitted to Kolhan University	<1	Student Paper
17	Paper Submitted to Awadesh Pratap Singh University, Rewa	<1	Student Paper
18	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
19	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
20	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
21	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
22	Paper Submitted to Awadesh Pratap Singh University, Rewa	<1	Student Paper
23	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
24	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
25	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
26	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
27	Thesis Submitted to Shodhganga, shodhganga.inflibnet.ac.in	<1	Publication
28	Paper Submitted to Mahatma Gandhi Kashi Vidyapeeth, Varanasi	<1	Student Paper

Established by Ministry of Culture Govt. of Madhya Pradesh
Recognised by UGC under section 2(F) & 12(B)

Sanchi University of Buddhist-Indic Studies
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

No. 871..../BPD/SUBIS/2025 Sanchi, Date: 16/04/2025

CERTIFICATE

TO WHOMSOEVER IT MAY CONCERN

This is to certify that **Shubham Mahesh Gajbhiye** having Enrollment Number En16-00004 in the Department of Buddhist Philosophy & School of Buddhist Philosophy, School of International Buddhist Studies, Sanchi University of Buddhist-Indic Studies, Sanchi, Raisen, Madhya Pradesh, has made Pre-Ph.D., Presentation Seminar on **13/01/2025** at our University Campus under the supervision of **Dr. Ramesh Rohit** before the Departmental Research Committee (DRC) members, faculty members and research scholars for feedback and comments according to UGC Regulation 2018 on his Research topic " बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन समालोचनात्मक अध्ययन (पालि त्रिपिटक के विशेष संदर्भ में)".

Dr. Santosh Priyadarshi
HOD
Department of Buddhist Philosophy

University Campus : Sanchi-Salamatpur Tiraha, Tehsil Sanchi, Distt. Raisen (464651), M.P.
Contact No. : +91 7587579500, **Email :** info@subis.edu.in, **Website :** www.sanchiuniv.edu.in

विश्वविद्यालय परिसर : सांची-सलामतपुर तिराहा, तहसील सांची, जिला रायसेन (464651), म.प्र.
दूरभाष : 7587579500, **ई-मेल :** info@subis.edu.in , **वेबसाइट :** www.sanchiuniv.edu.in

आभार

इस शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में मार्गदर्शकों का मौलिक मार्गदशन और उनके सहयोग से मैं अपना शोध-कार्य पूर्ण कर पाया, उनमें सर्वप्रथम अपने शोध-निर्देशन डॉ. रमेश रोहित सर के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। जिन्होंने प्रस्तुत शोध-कार्य के विषय चुनाव से लेकर शोध-कार्य के सम्पन्न होने तक मुझे अनवरत मार्गदर्शन और सहयोग दिया। जिससे यह शोध-कार्य अपने अन्तिम रूप में आ सका। उनके मार्गदर्शन, मैत्रीभाव और सहयोग से मैं अपने शोध-कार्य को पूर्ण कर सका, जिसके लिए सर का मैं सदैव कृतज्ञ रहूँगा।

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान विश्वविद्यालय अध्ययन विश्वविद्यालय के कुलगुरु प्रो. वैद्यनाथ लाभ सर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनका समय-समय पर मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा। साथ ही विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता एवं कुलसचिव प्रो. नवीन कुमार मेहता सर का भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने विभिन्न प्रकार से मौलिक सुझाव देकर मुझे मार्गदर्शन प्रदान किया।

इसके साथ ही मैं अपने विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. सन्तोष प्रियदर्शी सर के प्रति आभार अभिव्यक्त करता हूँ। जिनका मुझे शोध के दरम्यान समय-समय पर मौलिक मार्गदर्शन प्राप्त होते रहा। जिन्होंने सदैव मेरा उत्साहवर्धन और सहयोग किया। इसके साथ ही मैं बौद्ध-दर्शन विभाग के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष एवं वर्तमान में नवनालन्दा महाविहार सम विश्वविद्यालय के सह-प्राध्यापक डॉ. मुकेश कुमार वर्मा सर को धन्यवाद देता हूँ उन्होंने समय-समय पर सहयोग प्रदान किया है। साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय के वैदिक अध्ययन विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. देवेन्द्र सिंह सर के प्रति हार्दिक आभार प्रगट करता हूँ, शोध के दरम्यान समय-समय पर उनका मौलिक मार्गदर्शन एवं सानिध्य प्राप्त होते रहा। साथ ही हमारे ऑफिस के क्लर्क धम्मदीप सहारे जी भी हमेशा सहायता करते रहे, उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ। इसी

प्रकार साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय के समस्त प्राध्यापक गणों के प्रति अपना आभार अभिव्यक्त करता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप से मुझे शोध-कार्य के सम्बन्ध में सहयोग किया।

महानाग साक्यमुनि विज्जासन के संस्थापक पूज्य भदन्त विमलकीर्ति गुणसिरी जी के प्रति मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरे धम्म जीवन को पल्लवित किया, मुझे शील-सदाचार के मार्ग पर आरूढ़ किया तथा जिनके आशीर्वचन एवं प्रेरणा से मैं शिक्षा के उच्च स्तर तक पहुँच पाया हूँ। मैं संघ के उन वरिष्ठ भिक्खुओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जो मेरे धम्म जीवन में सदैव प्रेरणा स्त्रोत रहे। आदरणीय भदन्त डॉ. सुरिया, भदन्त थो, भदन्त डॉ. लाम, भदन्त विलासालंकारा, भदन्त डॉ.लोकपाल, भदन्त सज्जन, भदन्त इन्द्रश्री, भदन्त जीवनदर्शी और भदन्त वेपुल्ल को हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

मैं, मेरे जन्मदाता एवं जन्मदात्री, मेरी दोनों बहने, सौ. मनीषा राहुल मस्के (गजभिये), कु.सुप्रिया महेश गजभिये तथा मेरी दिवंगत दादी सुलकाबाई दौलतराव गजभिये का अत्यन्त ऋणी हूँ, जिनकी संघर्ष, प्रेरणा, स्नेह और आशीर्वचन से आज मैं शिक्षा के उच्च स्तर तक पहुँचा हूँ। मैं, मेरे सद्धम्मिक मित्र नागार्जुन जीनसेन, महेन्द्र रत्नबोधी तथा रत्नसंभव बुद्ध विहार, वर्धा के सभी उपासक-उपासिकाओं का हार्दिक आभार अभिव्यक्त करता हूँ।

मेरे शोध-कार्य में विशेष रूप से मदद करने वाले मेरे प्रिय मित्र एवं सहपाठी श्री. अविनाश बर्मन के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही मेरे शोध-कार्य में यथा सम्भव मदद करने वाले विभाग के मित्र कमलेश अहिरवार, प्रकाश अहिरवार, सोनाली बारमाटे, शेषनाथ वर्णवाल, सोनम दोरजे का आभार व्यक्त करता हूँ। इसी प्रकार मैं वैदिक अध्ययन विभाग के मित्र डॉ.विकास आर्य, हिन्दी विभाग के अनिल अहिरवार, दिल्ली विश्वविद्यालय के मित्र विशाखानन्द बन्सोड एवं मैडम डॉ. ज्योति मन्द्रेले जी का

हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। मैं साँची विश्वविद्यालय के सभी शोधार्थियों एवं कर्मचारियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने शिक्षा और मेरी जीवन में सदैव उत्साहवर्धन किया।

इसी प्रकार साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय और उन सभी ज्ञात-अज्ञात लेखकों, सम्पादकों एवं विचारकों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनकी पुस्तकों, पत्रिकाओं, शब्दकोशों तथा आलेखों से मुझे सहयोग मिला।

अन्त में उन सभी लोगों का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मेरी सहायता की है।

शुभम महेश गजभिये
शोधार्थी
EN16-00004
बौद्ध-दर्शन विभाग

भूमिका

भारतीय वाङ्मय में बौद्ध साहित्य और उनमें भी त्रिपिटक साहित्य का अत्यधिक महत्त्व है। वर्तमान समय तक उसकी प्रासंगिकता को अनेक विद्वानों तथा मनीषियों ने तत्सम्बन्धी शोध से सिद्ध किया है। यदि पालि साहित्य उपलब्ध नहीं होता तो ईसवी सन् के पहले का भारतीय विचार, समाज, साहित्य एवं संस्कृति, इत्यादी का ज्ञान अपूर्ण रह जाता। त्रिपिटक ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वसनीय, प्रामाणिक साहित्यिक स्रोत हैं, जिसके द्वारा हमे तत्कालीन इतिहास, राजतन्त्र-प्रजातन्त्र, इत्यादी विषयों का ज्ञान, अन्तर जनपदीय वाणिज्यिक विषयों की सूचनाएँ तथा इसके अतिरिक्त अन्य सम्बन्धित सूचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। भगवान् बुद्ध के दर्शन का अध्ययन तथा तत्कालीन सूचनाओं के ज्ञान के लिए त्रिपिटक का विशेष महत्व है।

सामान्यतः पालि भाषा हमारे देश की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। वह दीर्घकाल तक राज भाषा के रूप में भी सुशोभित रही है। भगवान् बुद्ध के समय यह सम्पूर्ण उत्तर भारत की लोकभाषा थी। सम्राट अशोक के समय तृतीय संगीति में बुद्ध वचनों का त्रिपिटक के रूप में विभाजन हो गया था। इसी समय बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार विदेशों में होने लगा। भगवान् बुद्ध के वचन मूलतः पालि में ही विद्यमान थे। जिस कारण देश-विदेशों में बुद्ध-वचनों की भाषा के रूप में पालि का प्रसार हुआ।

भगवान् बुद्ध ने को धनार्जन सिर्फ अपने भोग के लिए ही निर्देशित किया है, अपितु उन्होंने मनुष्यों की अन्य आवश्यकताओं के लिए भी निर्देशित किया है। जिसे भगवान् के निम्नलिखित वचनों से स्पष्ट किया है, यथा-

एकेन भोगे भुञ्जेथ द्वही कम्मं पयोजय।

चतुत्थं व निधापेय्य आपदासु भविस्सति। ।

अर्थात् व्यक्ति अपनी आय के एक भाग से खाये, दो भाग अपने काम अथवा व्यापार में लगाये, चौथे भाग को भविष्य में आवश्यक काम के लिए सुरक्षित रखे।

भगवान् बुद्ध के मतानुसार संसार में जो कुछ भी होता है, वह हेतु-प्रत्यय के कारण होता है। कारण के होने पर ही कार्य की उत्पत्ति होती है, बिना कारण किसी भी कार्य की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। भगवान् बुद्ध के धार्मिक द्रष्टा, दार्शनिक, धर्मोपदेशक, बहुआयामी व्यक्तित्व होने का परिचय पालि त्रिपिटक एवं अट्ठकथाओं में देखा जा सकता है। त्रिपिटक से ज्ञातव्य है कि तथागत ने न केवल आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही धर्म को प्रतिपादित किया है, अपितु मानव समाज को अधिक प्रगति तथा उन्नति करने के लिए भी उपदेश दिये हैं। भगवान् की देशना को 'वोहार देशना' कहा गया है। 'वोहार देशना' यह पालि शब्द है, जिसका तात्पर्य व्यवहार होता है। यहाँ स्पष्ट है कि व्यवहार कुशल अथवा बहुलतया व्यवहार-कौशल्य के लिए उपदेशित होने के कारण 'वोहार' (व्यवहार) देशना कहलाती है। व्यवहार के अन्तर्गत समाज, संस्कृति, राजनीति, अर्थशास्त्र, नीति एवं धर्म अन्तर्निहित है।

अभिसम्बोधि प्राप्ति के पश्चात् भगवान् ने धर्मदेशना द्वारा मानवता को उपकृत किया। बहुजन हित एवं बहुजन सुख के लिए संघ को स्थापित किया। कोई भी प्रचलित धर्म अपनी समृद्धि व संचालन हेतु कुछ प्राथमिक आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। तत्कालीन समाज में नव पल्लवित संघ भी कुछ इसी प्रकार की प्राथमिक आवश्यकताओं को इंगित करता है।

शोध की परिधि

प्रस्तुत शोध जिस विशेष सन्दर्भ के आलोक में किया गया है वह 'पालि त्रिपिटक' है। भगवान् बुद्ध के वचनामृत इन्हीं में संग्रहित है । तथागत के वचनों में तत्कालीन समाज एवं आर्थिक व्यवस्था के विवरण प्राप्त होते है। उन आर्थिक आयामों एवं आधुनिक आर्थिक जीवन में उनकी उपयोगिता पर प्रस्तुत शोध कार्य किया गया है। 'पालि त्रिपिटक' में न केवल भगवान् बुद्ध के उपदेश सन्निहित है अपितु तत्कालीन ऐतिहासिक व भौगोलिक परिदृश्य, समाज, धर्म-दर्शन, अध्यात्म, राजनीती, सांस्कृतिक परम्पराएँ एवं आर्थिक विचार का आवश्यक ज्ञान प्राप्त होता है। वह तत्कालीन भारतीय

परिवेश में घटने वाली घटनाओं का यथा तथ्य विवरण प्रस्तुत करते है। प्रस्तुत शोध को पाँच अध्यायों में विभक्त कर तथ्यात्मक सामग्री को संकलन के उपरान्त सोपानक्त क्रम से विश्लेषित कर प्रस्तुत किया है।

साहित्य का पुर्नरावलोकन

धर्म को आर्थिक चिन्तन(अर्थशास्त्र) से अथवा आर्थिक चिन्तन(अर्थशास्त्र) को धर्म की दृष्टि से व्यवहृत नहीं किया जाता है। सामान्य दृष्टि से धर्म का सम्बन्ध केवल नैतिकता से ही लिया जाता है। समाज में सुव्यवस्था एवं अनुशासन के लिए नैतिकता की आवश्यकता होती है। नैतिकता की दृष्टि से अचौर्य एवं ईमानदारी की चर्चा धर्म का एक पक्ष है। धर्म का उद्‌देश न केवल पारमार्थिक था अपितु कल्याणकारी व्यवस्था का निर्माण एवं समाज हित के पक्ष में था। प्राचीन भारत के इतिहास से ज्ञातव्य है कि जहाँ अति प्राचीन काल में नीतिशास्त्र, दर्शन, जोतिष, आयुर्वेद-चिकित्सा, राजनीति शास्त्र, शस्त्रविद्या एवं शौर्य शास्त्र इत्यादि अनेक विषयों पर चिन्तन किया गया, वहाँ आर्थिक चिन्तन(अर्थशास्त्र) क्यों न किया गया होगा।

प्रस्तुत शोध के सन्दर्भ में साहित्य के पुर्नरावलोकन से यह दृष्टिगत हुआ कि पालि त्रिपिटक साहित्य से हमें बुद्धकालीन भारतीय विचार जिनमें समाज, इतिहास, राजतन्त्र-प्रजातन्त्र, भौगोलिक स्थिति, सांस्कृतिक परम्पराएँ एवं आर्थिक विचार इत्यादी का ज्ञान प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि पालि त्रिपिटक के सभी ग्रन्थ सामान रूप से बुद्धकालीन सामाजिक-आर्थिक संस्थाओं के सम्बन्ध में सूचनाएँ नहीं देते, किसी में इस प्रकार की सामग्री कम है तो किसी में अधिक। अतः सभी बातों को दृष्टि में रखते हुए आवश्यक सतर्कता के साथ यथातथ्य पालि त्रिपिटक की सामग्री का प्रस्तुत शोध के लिए उपयोग किया गया है।

पालि त्रिपिटक के अन्तर्गत विनय पिटक पाँच भागों में विभक्त है। जिसमें न केवल भिक्षु-भिक्षुणियों के आचार सम्बन्धित नियमों की व्याख्या है, अपितु तत्कालीन भारतवर्ष की अन्तर जनपदीय वाणिज्यिक स्थिति की सूचनाएँ भी प्राप्त होती है।

पाराजिक पालि एवं पाचित्तिय पालि से ज्ञात होता है कि विनय नियमों के प्रज्ञापन में तत्कालीन समाज की आर्थिक स्थिति का भी विचार किया गया है। विनय पिटक के महावग्गपालि, चुल्लवग्गपालि एवं परिवार से ध्यातव्य है कि विभिन्न ग्राम, निगम एवं जनपदों में व्यापार के लिए सार्थवाहों की चर्चा है।

सुत्तों में प्रागैतिहासिक और बुद्धकालीन भारत तथा तत्सम्बन्धित अन्य देशों की ऐतिहासिक सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। कतिपय सुत्तों से ज्ञात होता है कि यह युग भारतीय इतिहास के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण का के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस समय आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक इन सभी क्षेत्रों में व्यापक एवं दूरगामी परिवर्तन हुए। दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुत्त निकाय, अंगुत्तर निकाय एवं खुद्दक निकाय में सामाजिक-आर्थिक के सम्बन्ध में अत्यन्त रोचक सामग्री प्रदान करते है। इनमें बुद्धकालीन धार्मिक अवस्थाओं और उनके समकालीन विशिष्ट सम्प्रदायों के गणाचायों के जीवन और उनके दार्शनिक दृष्टिकोण का इतिवृत्त प्राप्त होता है। स्थान स्थान पर सामाजिक जीवन के उन आदर्शों को भी दर्शाया गया है, जिनके अनुपालन से व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन को पूर्ण बनाने में समर्थ होता है। मानवीय जीवन की कई विविधताओं को जातक कथाओं में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है, जिनके आधार पर बुद्धयुगीन सामाजिक-आर्थिक इतिहास का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इनमें न केवल भगवान् बुद्ध के काल का बल्कि बुद्धकाल के पूर्व का भी चित्र प्राप्त होता हैं। अतः प्रस्तुत शोध के लिये कतिपय जातक कथाओं से प्राप्त सामग्रियों का भी उपयोग आवश्यकतानुसार किया गया है। प्रस्तुत शोध के लिये इस तरह के सूक्ष्म विवेचन बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं, क्योंकि हमारा उद्देश्य एक न्यूनाधिक निश्चित कालावधि में आर्थिक संस्थाओं का चित्र प्राप्त करना था।

आधुनिक काल में कई विद्वानों ने पालि त्रिपिटक से प्राप्त सामग्रियों के आधार पर बुद्धयुगीन धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक राजनैतिक एवं आर्थिक संस्थाओं का चित्र प्रस्तुत किया है, जिनमें से कुछ कार्यों का यहाँ विशेष उल्लेख

करना आवश्यक है। टी. डब्ल्यू रीज. डेविड्स ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बुद्धिस्ट इंडिया' को प्रकाशित किया। इसमें बुद्धयुगीन सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि दशाओं का चित्र प्रस्तुत किया गया है। एक प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में जहाँ इसकी महत्ता है वहीं इससे पालि त्रिपिटक की ऐतिहासिकता भी प्रमाणित होती है। प्रस्तुत शोध के लिये इस ग्रन्थ की उपयोगिता एक सीमा तक अवश्य है। शोध के विस्तृत क्षेत्र होने से आर्थिक संस्थाओं के जिस पक्ष को विशेष रूप से उजागर करने के लिए वह सहायक सिद्ध हो सका है। श्रीमती रीजडेविड्स ने 'अर्ली इकनामिक कण्डिशन इन नादर्न इंडिया' तथा रेप्सन संपादित 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' (भाग १) में अपने संक्षिप्त, परन्तु अत्यन्त प्रामाणिक लेख प्रकाशित किया। यह शुद्ध रूप में बुद्धयुगीन आर्थिक विकास के स्वरूप को निश्चित करने वाला एक प्रामाणिक लेख था। देखा जाय तो इसकी शैली विवरणात्मक थी और आर्थिक विकास के लिये उत्पादन एवं वितरण की जिस विश्लेषणात्मक व्याख्या की आवश्यकता थी, उसका प्रायः इसमें अभाव था। रिचर्ड फिक का 'दि सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ इस्ट इंडिया इन बुद्धाज टाइम', हेम चन्द्र राय चौधरी का 'पालिटिकल हिस्ट्री आफ एन्शियन्ट इंडिया', आदि में पालि त्रिपिटक के अध्ययन अपने अने स्थान पर महत्व के हैं। वे सामाजिक संगठन, राजनीतिक इतिहास, राज्य तथा प्रशासन व्यवस्था से सम्बन्धित है। एन.सी. बन्दोपाध्याय की प्रसिद्ध पुस्तक, 'इकनामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन एन्शियन्ट इंडिया' इसमें प्राचीन भारतीय अर्थ व्यवस्था का एक उत्कृष्ट अध्ययन है और अनेक स्थलों पर पालि त्रिपिटक की भरपूर सामग्रियों का उपयोग किया गया है। भरतसिंह उपाध्याय की पुस्तक 'बुद्धकालीन भारतीय भूगोल' बुद्धकालीन भारतवर्षका एक उत्कृष्ट अध्ययन ज्ञात होता है। जिसमें सम्पूर्ण पालि त्रिपिटक की प्राचीन सामग्री का उपयोग कर लेखक ने बुद्धकालीन ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक में आवासीय व्यवस्था, भवन निर्माण, जीविका के साधन, उद्योग व्यापार, परिवहन इत्यादि विकास के कई रूपों में हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

बौद्ध आर्थिक व्यवस्था एक आधुनिक संकल्पना है। जिसके विषय में विश्व भर में अनेक विद्वानों ने अपना कार्य किया है। इसमें मुख्य रूप से ई. एफ. शूमकर, ए.टी. अरियरत्ने, सुलक शिवारक्षा, थिच न्हात हन्ह एवं दलाई लामा इत्यादि के आधुनिक विश्व में उत्पन्न विभिन्न समस्याओं से सम्बन्धित पुस्तकों का अध्ययन एवं पुनरवलोकन किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में मुख्य रूप से मूल स्रोतों पर ही दृष्टि रखी गयी है। यथासम्भव प्रतिपाद्य विषय पर पालि त्रिपिटक से प्राप्त सामग्री की अपेक्षा नहीं की गयी है और जिन विषयों पर पहले के विद्वानों ने न्यूनाधिक कार्य किया उन पर भी मुझे अतिरिक्त सामग्री प्राप्त हुई है । समालोचनात्मक अध्ययन के लिए आर्थिक विकास के उन्हीं पक्षों को चुना गया है जो पालि त्रिपिटक से प्रकाशित अथवा कथमपि संकेतित होते हैं। इसको दृष्टि में रखते हुए कि भिन्न भिन्न प्रकार के साक्ष्यों के अपने पूर्वाग्रह तथा सीमायें हैं। प्रस्तुत शोध में आवश्यक सतर्कता के साथ समालोचनात्मक अध्ययन के लिए वैदिक साहित्य, धर्मशास्त्र साहित्य, पाणिनि की अष्टाध्यायी और साथ में पतंजलि का महाभाष्य, कौटिल्य का अर्थशास्त्र इत्यादि का भी उपयोग किया है। पालि त्रिपिटक के सन्दर्भों को मूल पालि ग्रन्थों से ही एकत्रित करने की चेष्टा की है जिसके लिये नागरी लिपि में नालन्दा संस्करण का प्रयोग किया गया है। और स्थान-स्थान पर जातकों की ही सामग्रियों को अपने निष्कर्ष का मुख्य आधार बनाया गया है। प्रस्तुत शोध में बुद्धकालीन आर्थिक चिन्तन (अर्थशास्त्र) की पृष्ठभूमि, स्थिति एवं विकास और उसकी वर्तमान के सन्दर्भ समालोचना का यत्न किया गया है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध-कार्य की निर्भरता मुख्य रूप से साहित्यिक तथ्यों आधृत थी। परन्तु प्रस्तुत शोध-कार्य को सम्पूर्ण करने तथा उसकी मौलिकता को बढ़ाने में कई अन्य शोध प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। कुछ प्रविधियाँ निम्नवत हैं-

- साहित्यिक प्रविधि
- तुलनात्मक प्रविधि
- विश्लेषणात्मक प्रविधि
- विवेचनात्मक प्रविधि

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है- 1. बौद्ध आर्थिक व्यवस्था को वर्तमान के सम्बन्ध में को आलोक में लाना। 2. त्रिपिटक में वर्णित बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का विशेष अध्ययन कर वर्तमान आर्थिक समस्याओं के निदान में सुविख्यायित करना। 3. त्रिपिटक में वर्णित आर्थिक पद्धति की विवेचना कर समाजपयोगी सिद्ध करना। 4. बौद्ध आर्थिक व्यवस्था एवं उसके नैतिक संरचना से शोधार्थी, विद्वानों को सुपरिचित कराना। 5. बौद्ध आर्थिक व्यवस्था एवं सिद्धान्तों की मुख्यतः प्राचीन तथा वर्तमान आर्थिक सिद्धान्तों के साथ तुलना कर समालोचनात्मक अध्ययन करना।

विषय प्रवेश

प्रस्तुत शोध के प्रथम अध्याय "पालि त्रिपिटक का परिचय'' के अन्तर्गत शीर्षकानुसार विषय वस्तु का विवेचन का प्रयास किया गया है। जिसे हम पालि के नाम से जानते है, वह बुद्ध-वचनों के लिए प्रयुक्त भाषा का आधुनिक नामकरण है। सर्वप्रथम पालि भाषा की व्युत्पत्ति एवं विकास के सन्दर्भ में विचार कर विश्लेषण किया गया है। वह किस प्रदेश की भाषा थी, इस सम्बन्ध में संक्षिप्त तथात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। बुद्ध-वचनों के ऐतिहासिक सन्दर्भों विवेचित कर उसकी प्राचीनता को स्पष्ट किया है। बुद्ध-वचनों के क्रमिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका रखने वाली तीन बौद्ध संगीतियों का विश्लेषण किया गया है। तत्पश्चात् पालि त्रिपिटक का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

त्रिपिटक के नाम से ही ज्ञात होता है कि पिटकों की संख्या तीन है। त्रिपिटक को विनय, सुत्त एवं अभिधम्मपिटक के रूप में विभक्त किया गया है । यह पिटक भी अपने आप में ग्रन्थों के समुह हैं। विनय पिटक में भिक्षु-भिक्षुणियों के आचार सम्बन्धित अनुपालन अनुशासन के नियमों का संग्रह किया गया है। प्रथम सङ्गीतिमें मुख्य रूप से स्थविर महाकाश्यप की अध्यक्षता में भिक्षु उपालि द्वारा विनय का संगायन किया गया था। सुत्तों का संगायन भी इसी सङ्गीतिमें भिक्षु आनन्द द्वारा किया गया था। जिसका अनुमोदन स्वयं स्थविर महाकश्यप द्वारा प्रथम सङ्गीतिके लिए चयनित भिक्षुओं की उपस्थिति में किया गया था। एक महत्त्वपूर्ण तथ्य उपस्थापित होता है कि प्रथम सङ्गीतिमें स्थविर महाकाश्यप भिक्षुओं को कहते है कि भिक्षुओं, हम विनय एवं धम्म का संगायन करें । विनय और धम्म का ही संगायन इस प्रथम सङ्गीतिमें किया गया था। विनय एवं धम्म से यहाँ तात्पर्य 'विनय' से विनय पिटक और धम्म से सुत्त और अभिधर्म से है। तत्पश्चात् तृतीय सङ्गीतिमें त्रिपिटक के रूप में स्पष्ट विभाजन किया गया था। अभिधम्म पिटक के सम्बन्ध में विवाद है कि प्रथम सङ्गीतिमें इसका संगायन नही हुआ। सम्पूर्ण बुद्ध वचनों को चौरासी हजार धर्म स्कन्धों में विभाजित किया है। इस दृष्टि से प्रथम सङ्गीतिकारों ने इसे पृथक् न करते हुए सुत्तों के अन्तर्गत ही रखा । कालान्तर में परवाद के आधिक्य को देखकर मोगलीपुत्त तिस्स ने तृतीय सङ्गीति में बुद्ध वचनों को त्रिपिटक के रूप में विभाजित किया।

अध्याय के अन्त में पालि त्रिपिटक के विभिन्न आयामों के द्वारा उनके महत्त्व स्पष्ट किया है। पालि त्रिपिटक में हमें तत्कालिन भारतवर्ष के ऐतिहासिक व भौगोलिक परिदृश्य, राजनीती, सांस्कृतिक परम्पराएँ एवं आर्थिक व्यवस्था की पुष्टि करने वाले दृष्टान्त प्राप्त होते है। विभिन्न स्थानों पर विविध प्रसंगों में तत्कालिन भारतवर्ष से सम्बन्धित प्राप्त तथ्यों के आधार पर विविध आयामों के आलेखन का प्रयत्न किया है।

द्वितीय अध्याय में "विनय पिटक में आगत आर्थिक व्यवस्था'' के अवलोकन रखा है। जिसके उपविभाग में संघ का स्वरूप एवं विकास का परिचय, विनय प्रज्ञापन में

तत्कालीन, आर्थिक व्यवस्था का प्रभाव तथा विहारों के निर्माण एवं संचालन के आर्थिक स्त्रोत को रखा है। प्रारम्भ में संघ के लिए विनय-विनय का प्रावधान नहीं था। कालान्तर में जैसे-जैसे संघ में वृद्धि होती गई और उसका चतुर्दिक प्रचार होता गया वैसे-वैसे नियम प्रज्ञापन की आवयश्कता प्रतीत हुई। विनय नियमों के प्रज्ञापन की आवयश्कता के साथ उसकी परिभाषा अर्थ और उसका महत्त्व को यहाँ विवेचित किया है। विनय पिटक के संदर्भ में विविध विद्वानों के मतों को भी यहाँ प्रस्तुत किया है। अध्याय में संघ के निर्माण को देने के बाद उसका क्रमिक विकास और स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

भगवान् बुद्ध ने सभी विनय एक-साथ प्रज्ञापन नहीं किये है। दूसरे उपविभाग में उसी का विश्लेषण किया गया है। विभिन्न परिस्थितियों और विभिन्न प्रसंगोत्पाद के अनुरूप ही विनयों का प्रज्ञापन किया है। भिक्षु-भिक्षुणियों का जीवन समाज पर निर्भर था। समाज की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति को आलोक में रखकर यह नियम प्रज्ञापन किये गये है। इस उपविभाग में किस प्रकार विनय के नियमों को प्रज्ञापित करने में तत्कालीन आर्थिक स्थिति का प्रभाव हुआ है उसे व्याख्यापित किया है। ध्यान में रखकर संघ के सांघिक स्वरूप को विहारों के सन्दर्भ में उसके निर्माण संचालन तथा विन्यास के विषय में साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर विस्तार से चर्चा की है।

भिक्षु संघ के लिए विहारों का निर्माण प्रशासकों राजाओं द्वारा किया गया। सामान्य उपासक उपासिकाओं ने की संघ के लिए विहारों का निर्माण कराया। बुद्ध के समकालीन राजा, प्रशासक एवं उपासक-उपासिकाओं का योगदान व आर्थिक स्थिति का विवरण किया है। दान व भिक्षा व अन्य आर्थिक स्त्रोतों की व्याख्या इस अध्याय में प्रस्तुत की गई है।

तृतीय अध्याय "सुत्तों में आगत बुद्ध कालीन आर्थिक व्यवस्था" है। सुत्तों में भगवान् बुद्ध के व्यावहारिक तथा धार्मिक सिद्धान्तों का वचन संग्रह प्राप्त होता है। जिसके अन्तर्गत तत्कालीन कृषि व्यवस्था, पशुपालन व्यवस्था एवं तत्सम्बन्धित उद्योग

का सविवरण विश्लेषण किया गया है। त्रिपिटक में आगत विभिन्न शिल्प एवं व्यवसाय की सम्यक् विवेचना की है। व्यापार, वाणिज्य, मुद्रा एवं विनिमय प्रणाली को उप-शीर्षको में विभक्त कर विचार किया गया है।

बुद्धकालीन समाज के विभिन्न सामाजिक स्थरों की आर्थिक व्यवस्था व परिवेश पर विवेचन किया गया है। तत्कालीन जन-समाज एवं बुद्ध के संघ का व्यवस्थापन करने के लिए दायकों के आर्थिक स्थिति का अनुशीलन किया है । प्राचीन काल से ही कृषि एवं पशुपालन भारत का मुख्य व्यवसाय रहा है। बुद्धकालीन कृषि के दिग्दर्शन से ज्ञात होता है कि उस समय कृषि व्यवसाय अत्यन्त समृद्ध था। कृषक लोक सम्पूर्ण राष्ट्र के अन्नदाता थे। पशुपालन भी एक व्यवसाय के रूप में स्थापित था। जिसके विवरण पालि त्रिपिटक में प्राप्त होते है। त्रिपिटक में 'सार्थवाहों' की चर्चा है। इससे उस समय के अन्तर्राज्यीय व अन्तर्देशीय व्यापार के विषय में ज्ञान होता है। तत्कालीन विभिन्न व्यवसायों का उल्लेख सुत्तों में हुआ है। जिनके विषय में इस अध्याय में व्याख्या की गई है। कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, व्यापार एवं लघु व्यवसाय से जीविका चलाने वाले लोगों की धम्म के प्रति निष्ठा का बोध भी सुत्तों से होता है। समाज के सभी वर्गों के आर्थिक उन्नयन के लिए बुद्धोपदेश प्राप्त करनेवाले श्रद्धालु-जनों की आर्थिक स्थिति का अध्ययन इस अध्याय का प्रमुख अभिधेय है।

चतुर्थ अध्याय का नाम ''वैदिक तथा बौद्ध आर्थि व्यवस्था की समीक्षा'' है। प्रस्तुत अध्याय में प्राचीन भारतीय समाज के प्रारम्भिक जन-जीवन और आर्थिक उत्थान के क्रमिक विकास को लक्ष्य किया है। कोई भी सभ्यता स्वतः उद्भुत नहीं होती है। प्राचीन भारतीय इतिहास में पुरातात्विक अवशेषों के रूप में सिन्धु सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए है। साहित्यिक स्रोत के रूप में प्राचीन साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन वैदिक साहित्य प्राप्त है। इस अध्याय में सर्वप्रथम वैदिक सभ्यता का परिचय देकर वैदिक व्यवस्था का स्वरूप, वेदों का अर्थ, वेदों का वैशिष्ट्य तथा वैदिक वाङ्मय का संक्षेप में परिचय प्रस्तुत किया है।

वैदिक साहित्य में तत्कालीन जीवन के विभिन्न आयाम दिग्दर्शित होते है। मानव सभ्यता का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। भगवान् बुद्ध के पूर्व भारतीय जन-मानव व उसकी व्यवस्था कैसी थी? इसकी लघु समीक्षा इस अध्याय में की गई है। काल के अनन्तर निरन्तरता में समाज-आर्थिक जीवन में किस प्रकार का बदलाव हुआ, किस प्रकार से क्रमिक-विकास हुआ, इस पर मुख्यरूप से विचार किया गया है। वैदिक समाज की व्यवस्था में मूल रूप से परिवर्तन वेदोत्तर काल में आया। वैदिक जीवन मूलतः ग्रामीण जन-जीवन से सम्बद्ध कबीलाई जीवन था। इस काल के उत्तरार्ध में किस प्रकार जनपदों का विकास हुआ, संगठित समाज में आर्थिक परिवर्तन किस प्रकार हुये, इसका यथातथ्य विवरण देकर वैदिक जनजीवन व मूल्यों ने आनेवाले काल को किस प्रकार समृद्ध किया उसका विवेचन किया गया है। इसके अन्तर्गत वैदिक कृषि एवं पशुपालन व्यवस्था की समीक्षा कर विश्लेषण किया गया है। ऋग्वेदिक काल एवं उत्तर वैदिक काल के पश्चात् बुद्धकालीन समाज तक आर्थिक जीवन में किस प्रकार परिवर्तन आये। उनका किस प्रकार से उत्तरोत्तर विकास हुआ। व्यापार-वाणिज्य का उन्नयन, मुद्रा प्रणाली, भूस्वामित्व इत्यादि महत्वपूर्ण विषयों की यथातथ्य विवेचना करने का लक्ष्य कर इस अध्याय में अध्ययन किया गया।

पञ्चम अध्याय का नाम है ''आधुनिक समाज को बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की देन''। प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत भगवान् बुद्ध द्वारा उपदेशित नैतिक मूल्यों पर आधारित कल्याणकारी आर्थिक व्यवस्था की सम्यक् विवेचना करने का प्रयास किया गया है। 'बौद्ध आर्थिक व्यवस्था' यह एक आधुनिक संकल्पना है। 'बौद्ध आर्थिक व्यवस्था' का मुख्य उद्देश्य क्या है? इस संकल्पना कैसे विकास हुआ, इनका विचार प्रस्तुत अध्याय में किया गया है। तत्पश्चात् आर्थिक व्यवस्था एवं बौद्ध सिद्धान्तों का सम्यक् की गयी है। प्रस्तुत शोध का मुख्य केन्द्रबिन्दु पालि त्रिपिटक है। सामान्य गृहस्थ के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन से सम्बन्धित त्रिपिटक में आगत बुद्धोपदेशों का

अनुशीलन किया है। प्रस्तुत अध्याय के अन्तिम में बौद्ध आर्थिक विचार पर आधुनिक विद्वानों के मतों का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत शोध-कार्य जो बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्तों पर आधारित है। विशेषत: इसका उद्‌देश्य मानवीय दुःख को कम करना और कल्याण की ओर अग्रेषित करना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भगवान् बुद्ध द्वारा उपदेशित मध्यम मार्ग का अनुसरण एक स्थायी आर्थिक विकास के प्रतिमान का आधार बन सकता है। अत्याधिक उपभोग और पूर्ण त्याग के बीच बौद्ध आर्थिक प्रणाली आधुनिक आर्थिक व्यवस्थाओं की प्रमुख अवधारणाओं को चुनौती देती है।

मनुष्य के स्वार्थी व्यवहार, अधिकतम लाभ, प्रतिस्पर्धात्मक बाजार और सुविधाओं के लिए पर्यावरण का अत्यधिक ह्रास करने के कारण शारीरिक एवं मानसिक दुःखों में वृद्धि हो गयी है । आधुनिक अर्थशास्त्रियों को इन सब दुःखों से निवृत्ति के लिए भगवान् बुद्ध का विचार उपयुक्त एवं उपयोगी प्रतीत हुआ। 'बौद्ध आर्थिक व्यवस्था' की अवधारणा को प्रमुखता से सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री ई. एफ. शूमकर ने विकसित किया। उनके अनुसार 'बौद्ध आर्थिक व्यवस्था' यह विचारधारा है जो आर्थिक नीतियों और व्यवहारों को आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यों के संदर्भ में पुनः परिभाषित करने का प्रयास करती है। बौद्ध आर्थिक प्रणाली परस्पराश्रित उत्पत्ति को अपनी आधारशिला मानती है। यह व्यक्तियों को एक-दूसरे से और पृथ्वी के साथ एक आपसी सम्बन्ध के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करती है। बौद्ध मूल्य अहिंसा, मैत्री, करुणा, मुदिता उपेक्षा, एवं परोपकारिता को बढ़ावा देते है। मानव के साथ-साथ पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण पर विशेष ध्यान देते है। इन मूल्यों को आर्थिक व्यवस्था में स्थापित करने से सम्पूर्ण जीव जगत् कल्याण हो सकता है।

अनुक्रमणिका

अध्याय	पृ. सं.
शोध-निर्देशक प्रमाण-पत्र	i
शोधार्थी द्वारा घोषणा-पत्र	ii
सर्वाधिकार	iii
शोध मौलिकता प्रमाण-पत्र	iv-vii
Pre-Submission Seminar Completion Certificate	viii
आभार	ix-xi
भूमिका	xii-xxiii
प्रथम अध्याय : पालि त्रिपिटक का परिचय	1-55

1.1 पालि भाषा की व्युत्पत्ति

1.1.1 पालि जनभाषा

1.1.2 पालि शब्द का अर्थ

1.2 त्रिपिटक संकलन में तीन प्रमुख धम्म संगतियाँ

1.2.1 प्रथम धम्म संगीति

1.2.2 द्वितीय धर्म संगीति

1.2.3 तृतीय धर्म संगीति

1.3 बुद्ध-वचनों का वर्गीकरण

1.3.1 रस के अनुसार एक प्रकार

1.3.2 धम्म एवं विनय के अनुसार दो प्रकार

1.3.3 प्रथम, मध्यम एवं अन्तिम वाचा के अनुसार तीन प्रकार

1.3.4 निकाय के अनुसार पाँच प्रकार

1.3.5 अङ्ग के अनुसार नव प्रकार

1.3.6 धम्मस्कन्ध के अनुसार चौरासी हजार प्रकार

1.4 त्रिपिटक का संक्षिप्त परिचय

1.4.1 विनय पिटक

1.4.2 सुत्त पिटक

1.4.3 अभिधम्मपिटक

1.5 पालि त्रिपिटक का महत्त्व

1.5.1 ऐतिहासिक एवं भौगोलिक महत्त्व

1.5.2 सामाजिक एवं धार्मिक महत्त्व

1.5.3 राजनीतिक एवं आर्थिक महत्त्व

द्वितीय अध्याय : विनय पिटक में आगत बुद्धकालीन आर्थिक व्यवस्था 56-110

2.1 संघ का स्वरूप एवं विकास

2.1.1 विनय की परिभाषा एवं अर्थ

2.1.2 विनय पिटक के विषय में विविध विद्वानों के मत

2.1.3 त्रिपिटक में विनय का स्थान एवं उसका महत्त्व

2.2 विनय नियमों के प्रज्ञापन में तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था का प्रभाव

2.2.1 तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था का प्रभाव एवं पाराजिक धर्म

2.2.2 तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था का प्रभाव एवं सङ्घादिसेस

2.2.3 तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था का प्रभाव एवं निस्सग्गिय पाचित्तिय, पचित्तिय तथा पाटिदेसनिय

2.3 विहारों की आर्थिक व्यवस्था एवं उनका प्रबन्धन

2.3.1 विहार निर्माण व्यवस्था

2.3.2 विहार संचालन के आर्थिक स्त्रोत

तृतीय अध्याय : सुत्तों में आगत बुद्धकालीन आर्थिक व्यवस्था 111-160

3.1 सुत्तों का परिचय

3.1.1 सुत्तों की शैली

3.1.2 सुत्तों का वर्गीकरण

3.2 कृषि व्यवस्था एवं पशुपालन आधारित आर्थिक व्यवस्था

3.2.1 भूमि का चुनाव, वर्गीकरण एवं प्रकार

3.2.2 कृषि सम्बद्ध कृषकों के अन्य कार्य

3.2.3 पशुपालन व्यवस्था

3.2.4 कृषि एवं पशुपालन आधारित उद्योग

3.3 पालि सुत्तों में आगत व्यवसाय एवं उद्योग

3.3.1 वस्त्र उद्योग

3.3.2 धातु उद्योग (स्वर्ण-लौह, आदि)

3.3.3 चर्म उद्योग

3.3.4 मृद्भाण्ड उद्योग

3.3.5 काष्ठ उद्योग

3.3.6. सुत्तों में विभिन्न व्यवसाय

3.4 सुत्तों में उल्लिखित व्यापार

3.4.1 स्थल मार्ग से व्यापार

3.4.2 जल मार्ग से व्यापार

3.4.3 विदेशी व्यापार

3.4.4 आन्तरिक व्यापार

3.5 विनिमिय, मुद्रा एवं मूल्य निर्धारण

3.5.1 विनिमिय तथा मुद्रा

3.5.2 मूल्य निर्धारण (तौल और माप)

चतुर्थ अध्याय : वैदिक एवं बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की समीक्षा 161-211

4.1 वैदिक सभ्यता का परिचय

4.1.1 वैदिक काल, रचना एवं स्थल

4.1.2 वेदों का अर्थ, महत्त्व एवं प्रमुख विशेषताएँ

4.2 वैदिक वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय

4.2.1 चार वेद

4.2.2 ब्राह्मण ग्रन्थ

4.2.3 आरण्यक

4.2.4 उपनिषद्

4.3 वैदिक जन-जीवन सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष

4.3.1 वर्ण व्यवस्था

4.3.2 आश्रम व्यवस्था

4.3.3 पुरुषार्थ

4.4 वैदिक और बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की समीक्षा

4.4.1 कृषि व्यवस्था

4.4.2 पशुलालन व्यवस्था

4.4.3 व्यापार और विनिमय प्रणाली

पञ्चम अध्याय : आधुनिक समाज को बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की देन 212-167

5.1 बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का परिचय

5.1.1 आधुनिक बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की संकल्पना का उद्‌भव

5.1.2 आधुनिक बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की संकल्पना का विकास

5.2 आर्थिक विकास एवं बौद्ध सिद्धान्त

5.2.1 मध्यम मार्ग

5.2.2 त्रिलक्षण

5.2.3 ब्रह्मविहार

5.2.4 शील एवं सन्तोष

5.2.5 प्रतीत्यसमुत्पाद

5.3 आर्थिक समन्वय एवं बुद्धोपदेश

5.3.1 गृहपति का जीवन

5.3.2 गृहस्थ जीवन के लिए कल्याणकारी आर्य विनय

5.3.3 आर्थिक समन्वयक के लिए बुद्धोपदेश

5.4 आधुनिक बौद्ध विद्वान एवं उनके मत

5.4.1 ई.एफ. शूमाकर (E.F. Schumacher)

5.4.2 डॉ. भीमराव अम्बेडकर (Dr. Bhimrao Ambedakar)

5.4.3 ए.टी. अरियरत्ने (A. T. Ariyaratne)

5.4.4 सुलक शिवरक्षा (Sulak Sivaraksa)

5.4.5 थिच न्हात हन्ह (Thich Nhat Hanh)

5.4.6 दलाई लामा (Dalai Lama)

उपसंहार 268-276

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 277-287

परिशिष्ट

प्रथम अध्याय
पालि त्रिपिटक का परिचय

छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारत वर्ष के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस युग में भारतीय विचार-जगत् में विशेष परिवर्तन दिखाई पड़ता है। तत्कालीन समय बुद्ध तथा महावीर सदृश महापुरुषों का इस देश में जन्म हुआ। सामाजिक और धार्मिक नवचेतना के इस युग में उन्होंने सत्य और हिंसारहित मैत्रीभाव का सन्देश दिया। जो संसार में भव-व्याधि से पीड़ित मानवता के लिए वरदान था।

भगवान् बुद्ध के विषय में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का कथन है कि "किसी ऐतिहासिक महापुरुष की तुलना पौराणिक देवी देवताओं से करना ठीक नहीं है,पर यदि पौराणिक शब्दावली को इस्तेमाल करें, तो हम कह सकते है, कि बुद्ध सोलह कलापूर्ण पुरुष थे। हमारे देश को बड़े-बड़े पुरुष पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है; पर, बुद्ध को जैसा पूर्ण देखा जाता है, वैसे नहीं मिलेंगे, महापुरुषों में कितने ही मस्तिष्क में बहुत बड़े मिलेंगे, जिनकी प्रतिभा दूर तक बेधने वाली, दूर तक सोचने वाली है है। पर हृदय के माधुर्य में वह उतने बड़े नहीं निकालेंगे। दुसरे हृदय के महाधनी होते है, पर मस्तिष्क में अपूर्ण जचेंगे। बुद्ध हृदय और मस्तिष्क दोनों के महान थे।"[1]

बुद्ध के उपदेशों को किसी रूप में सुरक्षित रखने की अनिवार्यता को बुद्ध परिनिर्वाण के तत्काल पश्चात् ही अनुभव किया गया। शास्ता ने अपने चारिका काल में उस समय की लोकभाषा में जो कुछ उपदेश दिए वह त्रिपिटक के रूप में सुरक्षित है। बुद्ध उपदेशों को भिक्षुओं ने यत्नपूर्वक यथावत् मौखिक रूप में व कालान्तर में लिखित रूप से पालि त्रिपिटक के रूप में सुरक्षित रखा। प्राचीन भारत के आचार-विचार, सांस्कृतिक इतिहास, समाज, राजनीति, आर्थिक स्थिति

[1] सांकृत्यायन, राहुल, "महामानव बुद्ध", पृ.सं. 29-30

एवं व्यवस्था और आध्यात्मिक चेतना के अध्ययन के लिए पालि त्रिपिटक साहित्य का महत्त्व पूर्ण स्थान है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी जिस काल को तथागत भगवान् बुद्ध का उदय काल माना जाता है। इस काल में भारत वर्ष के विभिन्न ग्राम, निगम एवं जनपद में विचरण करते हुए तथागत द्वारा धम्म के ज्ञानमृत का वर्षण किया गया। पालि भाषा और त्रिपिटक साहित्य इस युग की महत्त्व पूर्ण उपलब्धि है। तथागत भगवान् बुद्ध के वचनामृतों में भारतीय मनीषा का चिन्तन, जन-जीवन, दार्शनिक सिद्धान्त एवं आदर्श परिलक्षित होते है।

पालि त्रिपिटक के सम्बन्ध में विवेचन करने से पूर्व यह स्पष्ट करना समीचीन है कि जिसे हम पालि नाम से अभिहित कर रहे है। वह क्या हैं ? उसका उद्‌भव एवं विकास कैसे हुआ? वह किस प्रदेश की भाषा थी और विद्वानों ने इस विषय में किन-किन तथ्यों को परिलक्षित किया है। सामान्यतया गौतम बुद्ध का वास्तव्य मगध प्रदेश में रहा इसलिए प्राचीन ग्रन्थों में इसे 'मागधी भाषा'[2] के नाम से अभिहित किया गया। यहाँ पालि भाषा की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विवेचन इसलिए प्रस्तुत किया जा रहा है क्योंकि उनके द्वारा उपदिष्ट सभी मूल बुद्ध-वचन इसी भाषा में निबद्ध है, जो त्रिपिटक के नाम से सुविख्यात है।

1.1 पालि भाषा की व्युत्पत्ति

बुद्धत्वप्राप्ति के अनन्तर भगवान् ने विचरण करते हुए धम्म ज्ञान की वर्षा का वर्षण किये। भगवान् की इस ज्ञानरूपी कल्याणदायी चारिका में साधारण से साधारण मनुष्य से तत्कालीन समय के बड़े से बड़े श्रेष्ठी तथा राजकुमार भी अपना सर्वस्व त्यागकर संघ में सम्मिलित होते थे। भगवान् के भिक्षु संघ के सम्बन्ध में यह कहना उचित है कि जिस प्रकार सभी दिशाओं से विभिन्न सरितायें प्रवाहित होते हुए अन्ततः समुद्र में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार नाना तरह के प्रान्त, कुल, गोत्र, वर्ण, जाति एवं मत के व्यक्ति संघ में तथागत

[2] सिद्धार्थ, "*सद्धम्मसङ्गहो*", पृ. सं. 58 "मागधानं निरुत्तिया परिवत्तेहि"

द्वारा प्रज्ञप्त निर्वाण के विमुक्ति रस का पान करने के उद्देश्य से सम्मिलित होकर एकत्रित विहार करते थे। विनय पिटक के महावग्ग पालि से ज्ञातव्य है कि वाराणसी के ऋषिपतन मृगदाय वन में अपना प्रथम धर्मोपदेश पञ्चवग्गीय भिक्षुओं को देने के पश्चात् उन छः विमुक्त सत्पुरुषों की तपस्या के फल स्वरूप यश एवं उसके मित्र अन्य कुलपुत्रों ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। उस समय तथागत सहित 61 अर्हन्तो का संघ निर्माण हुआ। उन अर्हन्तो को आदेश देते हुये भगवान् ने कहा *"चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देव-मनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्म आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसनकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवल परिपुण्णंपरिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।"*[3] अर्थात् भिक्षुओ! बहुजनों के हित और सुख के सम्पादन, लोक पर अनुकम्पा करने, देवता एवं मनुष्य के हित व सुख को साधने के लिए सर्वत्र विचरण करो। वहाँ जाकर प्रारम्भ में, मध्य में और अन्त में भी कल्याणकारक इस धर्म का उपदेश करो। जो अर्थसहित, व्यञ्जनसहित, केवल परिपूर्ण, परिशुद्ध ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करने वाला है। इसी लोककल्याण की भावना से भगवान् तथा उनके शिष्य जन-जन को उपदेश देते रहे। जो बुद्धोपदेश पालि के उत्पत्ति के रूप में प्रचारित हुए।

1.1.1 पालि जनभाषा

स्वाभाविक ही हैं कि तत्कालीन सामान्य जन जिस भाषा को समझते होगे उसी जनभाषा का उपयोग किया गया होगा। ग्रन्थों में इसी सामान्य जनता की भाषा को मागधी भाषा कहा गया। इस भाषा को मागधी क्यों कहा गया इस बात को ज्ञात कर लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है। विभिन्नताओं में भी संघ का एकत्रित विहार करना, इस बात से यह सुस्पष्ट होने लगता है कि संघारामो में एक सामान्य भाषा का विकास हुआ जिसे भगवान् के उपदेशों का ज्ञान करने के

[3] शास्त्री,स्वामी द्वारिकादास *"महावग्गपालि"*, पृ. सं. 35

लिए प्रयुक्त किया गया। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा की मागधी भाषा का सम्पूर्ण विकास भिक्खु संघ में हुआ। सामान्य जन से सारे मध्य देश की जनता की भाषा के रूप में एक बड़ा समुदाय इसे गौरव से प्रचलन में प्रयुक्त करता था। भरतसिंह उपाध्याय का कथन है कि "मगध जनपद का बौद्ध-धर्म के इतिहास में महत्त्व पूर्ण स्थान है। वस्तुतः इसी जनपद में धम्म का आविर्भाव हुआ।"[4] बुद्ध कालखण्ड के अनन्तर "मगध जो एक शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में उदय हुआ था ।"[5] उस प्रदेश के शासको द्वारा भी इस भाषा को राजाश्रय प्राप्त हो, राज भाषा बनाया गया होगा, इसमे कोई संदेह प्रतीत नहीं होता है। राज भाषा होने से निश्चय ही इस भाषा का लौकिक एवं ख्याति बढ़ गयी तथा मगध राज्य की राजश्रीत भाषा होने के कारण इसका नाम मागधी पड़ा। बुद्ध वचनों के लिए प्रयुक्त होने वाली भाषा जन भाषा थी, इसमे निश्चित ही कोई संदेह नहीं है। इस सम्बन्ध में यह प्रसंग उद्धृत करना समीचीन है कि भगवान् ने भिक्खुओं को आदेश दिया की वे अपनी-अपनी भाषा में धम्म का उपदेश करे।

"तेन खो पन समयेन यमेळुतेकुला नाम भिक्खू द्वे भातिका होन्ति ब्राह्मण जातिका कल्याणवाचा कल्याणवाक्करणा। ते येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खु भगवन्तं एतदवोचुं- एतरहि भन्ते भिक्खू नाना नामा नानागोत्ता नानाजच्चा नानाकुला पब्बजिता। ते सकायनिरुत्तिया बुद्धवचनं दूसेन्ति। हन्दमयं भन्ते बुद्ध वचनं छन्दसो आरोपेमा"ति। नेतं मोघपुरिसा अप्पसन्नानं वा पसादाय,पस्सन्नानं वा भिय्योभावाय। अथ ख्वेतं मोघपुरिसा अप्पसन्नानं चेव अप्पसादाय पस्सन्नानं वा एकच्चानं अञ्ञथत्ताया" ति"[6] अर्थात् यमेलु और तेकुला नाम के दो ब्राह्मण भिक्षु थे। दोनों भाई रहे। दोनों ही कल्याणवचन भाषी थे। वे दोनों जहाँ भगवान थे

[4] उपाध्याय, भरतसिंह, *"बुद्धकालीन भारतीय भूगोल",* पृ.सं. 327

[5] मजूमदार, रमेशचन्द्र, *"प्राचीन भारत"*, पृ.सं. 75

[6] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"चुल्लवग्गपालि"*, पृ. सं. 228-229

पहुँचे और उनको प्रणाम करके एक ओर पास ही में बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओं ने भगवान से इस प्रकार कहा-भन्ते इस समय नाना जाति, नाना कुल, नानागोत्र और नाना नाम वाले पुरुष प्रव्रजित होकर संघ में प्रवेश कर चुके हैं; इस स्थिति में उत्तम होगा भन्ते, हम बुद्धवचन को छन्दस् में निबद्ध कर दें। भगवान ने उनके कथन का विरोध करते हुए कहा-भिक्षुओं यह अयुक्त है, अनुचित है। भिक्षुओं, यह न अप्रसन्न को प्रसन्न करने के लिए है और न प्रसन्नों के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए होगा। अपितु भिक्षुओं यह प्रसन्नों को अधिक अप्रसन्न करने के लिए तथा श्रद्धालुओं के मन पर विपरीत प्रभावकारी है। फिर भगवान ने कहा "भिक्षुओं, बुद्धवचन को छन्द में नहीं करना चाहिए, ऐसा करने वाले को घोर अपराध का भागी बनना पड़ेगा। भिक्षुओं, अनुमति देता हूँ अपनी-अपनी भाषा में बुद्धवचन सीखने के लिए।"

यह बतला कर धार्मिक कथा कह भगवान् ने भिक्खुओ! को सम्बोधित किया- भिक्खुओ! बुद्ध वचनों को छन्द में नहीं करना चाहिए। जो करेगा उसे 'दुष्कृत्य' अपराध लगेगा। *"अनुजानमि भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया बुद्धवचनं परियापुणितुं।"*[7] इस सन्दर्भ में B.C. Law अपने ग्रन्थ 'A History of Pali Literature' की भूमिका में लिखते है कि "The sakaynirutti just means a mode of expression which a member of the Holy Order might claim as his own, that is to say, an idiom, a diction, a language or a vehicle of expression with which bhikkhu was conversant, which a person could use with advantage, a mode of expression which was not Buddha's own but which might be regarded as one by the Bhikkhus representing divers names, cultures, races and family."[8] उनके मतानुसार बुद्ध ने भिक्षुओं को अपनी अपनी भाषा में धर्मोपदेश देने का आदेश देना उस समय की महत्त्व पूर्ण घटना है। जो भगवान् बुद्ध की तर्कपूर्ण और उदार चरित्र का दर्शन करवाता है।

[7] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*चुल्लवग्गपालि*", पृ. सं. 229

[8] Law, B.C., *"A History of Pali Literature"*, pg. 15

उन्होंने यह प्रतिपादन किया कि "One's mother tongue or vernacular would also be an interpretation of sakaynirutti inconsistent with the context as well as with the Buddha's spirit of rationalism."[9] इसके अनन्तर इस भाषा को पालि नाम से क्यों अभिहित किया जाता है इसका विवरण देना समीचीन प्रतीत होता है। मूलतः पालि शब्द का प्रयोग मूल त्रिपिटक के लिए किया जाता है; यथा- महावग्गपालि, खुद्दकनिकायपालि आदि। *"पाळिमत्तमिधानीतं, नत्थि अट्ठकथा इध"* यहाँ केवल पालि को लाया गया है अट्ठकथा को नहीं; *"नेव पालियं न अट्ठकथाय दिस्सति"* अर्थात् न तो पालि में और न अर्थकथा ही में यह देखा जाता है। *"इमिस्मा पन पालिया एवमत्थो वेदितब्बो"* इस तरह पालि का यह अर्थ समझना चाहिए।[10] इन कुछ उद्धरणों से सुस्पष्ट है कि पालि शब्द का प्रयोग मूल त्रिपिटक के लिए किया गया है। दूसरा एक अर्थ यह भी ज्ञातव्य है कि बुद्ध वचनों का पालन करने से या कहे बुद्ध वचनों को सुरक्षित करनेवाली भाषा को पालि कहा गया है।

1.1.2 'पालि' का अर्थ

पालि शब्द का अर्थ है बुद्ध-वचन, बुद्ध वचनों का संग्रह है त्रिपिटक। विभिन्न स्थानों पर बुद्धदेशना, बुद्धोपदेश अथवा बुद्ध वचन के अर्थ में 'धम्म परियाय' शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है। *"तस्मातिह त्वं आनन्द! इमं धम्म-परियायं अत्थ जालन्ति पि नं धारेहि.....अनुत्तरो सङ्गामविजयो ति पि नं धारेही"ति।"*[11] अर्थात् आनन्द! इस 'धम्म परियाय' को अर्थजाल भी समझो....अलौकिक संग्रामविजय भी समझो। *"न तावायं, सारिपुत्त धम्मपरियायो पटिभासि भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकान।*[12] इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'धम्मपरियाय' शब्द बुद्धवचनों या बुद्धोपदेशों के लिए प्रयुक्त होता था। इसी 'परियाय' का

---

[9] Law, B.C., "A History of Pali Literature", pg. 16

[10] उपाध्याय, भरतसिंह, *"पालि साहित्य का इतिहास"*, पृ.सं. 26-27

[11] भिक्खु जगदीसकस्सपो, सुत्तपिटके दीघनिकायपालि,(1.सीलक्खन्ध वग्गो) ब्रह्मजाल सुत्त, पृ.सं. 40

[12] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"* (नवक-दसक-एकादसनिपाता), पृ.सं. 27

कालान्तर में अपभ्रंश पालियाय हो गया, जो कि सम्राट अशोक के शिलालेखों में द्रष्टव्य है।

भाब्रू शिलालेख में उल्लेख है कि "पियदसि लाजा मागधं संघ अभिवादनं आहा अपावाघतं च फासुविहालतं च। विदितं वे भन्ते आवतके हमा बुधासि धंमसि संघसीति गलवे च पसादे च ए केचि भन्ते भगवता बुधेन भासिते सेव से सुभासिते वा ए चु खो भन्ते हामियाये दिसेया देवं संघमे चिलठितीके होसतीति अलहामि हकं तं वतवे। इमानि भन्ते धंम-पालियायानि विनय समुकसे, आलियवसानि, उपतिसपसिने ए चा लाहुलोवादे मुसावाद अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते। एतान भन्ते धं म-प लि या या नि इछामि । किं ति बहुके भिखुपाये च भिखुनिये चा अभिखिनं सुनयु चा उपधालेयेयु चा। हेवं हेवा उपासका चा उपासिका चा एतेनि भन्ते इमं लिखापयामि अभिहेतं म जानंतांति"।[13]

अर्थात्-प्रियदर्शी (=हितकामी) राजा मगध के संघ को अभिवादन करता है, तथा उनका कुशल-मंगल चाहता है । भन्ते ! आप को मालूम ही है कि बुद्ध, धर्म, तथा संघ के प्रति मेरे हृदय में कितना आदर और श्रद्धा है। भन्ते ! भगवान् ने जो कुछ कहा है सभी सुन्दर ही कहा है। भन्ते! जो कुछ मुझे कहना है उसे कहता हूँ, जिससे सद्धर्म चिरस्थायी हो। भन्ते ! ये धम्म-पलियाय हैं- १. विनय समुत्कर्ष, २. आर्यवंश, ३. अनागत भय, ४. मुनिगाथा, ५. मोनेय्य सूत्र, ६. उपतिष्य-प्रश्न, और ७. राहुलोवाद सूत्र में भगवान् ने जो मृषावाद के विषय में उपदेश दिया है भन्ते ! मैं चाहता हूँ कि सभी भिक्षु, भिक्षुणियाँ, उपासक तथा उपासिकायें इन्हें सदा सुनें और पालन करें। भन्ते ! इसी लिए मैं यह लेख लिखवा रहा हूँ--ऐसा समझे। इन विवरणों से सुस्पष्ट है कि परियाय=पलियाय शब्द का प्रयोगमूल बुद्ध वचनों के लिए किया गया है।

---

[13] *"सम्राट अशोक के अभिलेख"*, पृ.सं. 36

अस्तु यह भाषा किस प्रदेश की भाषा थी, इस संदर्भ में विद्वानों में मत भिन्नता दिखलाई पड़ती है। विद्वानों ने इसे अलग-अलग प्रदेशों की जनभाषा के रूप में माना है यथा- प्राचीन मगध क्षेत्र की भाषा, प्राचीन कोसल क्षेत्र की भाषा मध्य प्रदेश के साँची-विदिशा क्षेत्र की भाषा, मध्य प्रदेश के भरहुत क्षेत्र की भाषा, गुजरात के गिरनार क्षेत्र की भाषा और प्राचीन उत्कल प्रदेश क्षेत्र की भाषा[14]

पालि = बुद्धवचन = धम्म = परियत्ति = परियत्तिधम्म = पालिधम्म आदि शब्दों का प्रयोग मूल साहित्य में प्राप्त है। उपर्युक्त 'अर्थ' जिसके लिए भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिया वह भाषा (वोहार) भी जिसमें वह 'अर्थ' रखा हुआ है उसे ही आधुनिक नामाभिधान पालि से जाना जाता है। पालि त्रिपिटक में रखा 'अर्थ' और उसकी भाषा जिसे पालि कहा जाता है। पालि शब्द का अर्थ जो पालन करती है, रक्षा करती है। स्वाभाविकतः यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि वह किसका पालन करती है, किसका रक्षण करती है। प्रत्युत्तर में कहा जाता है कि *"अत्थं पाति अत्थं रक्खति।"*[15] पूर्वोक्त है कि 'अर्थ' शब्द का प्रयोग धर्म अर्थात् बुद्धवचनों के लिए प्रयुक्त है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जो बुद्धवचन अर्थात् धर्म का पालन करती है, रक्षण करती है, वह पालि है।

1.2 त्रिपिटक संकलन में प्रमुख धम्म संगीतियाँ

बुद्ध वचनों की परम्परा भगवान् के परिनिर्वाण के पश्चात् मौखिक ही रही। थेर परम्परानुसार तृतीय सङ्गीतिके उपरान्त महामहेन्द्र थेर अपने पाँच सहब्रह्मचरियों के साथ बुद्ध वचनों को लेकर सिंहलद्वीप गए। उसी का कालान्तर में त्रिपिटक के रूप में लेखबद्ध कर रक्षण या पालन किया गया। पालि त्रिपिटक के रूप में लेखबद्ध संकलन एवं संरक्षण के ऐतिहासिक कार्य का संकेत दीपवंस

---

[14] पाण्डेय, रामअवध एवं मिश्र, रविनाथ, *"पालि-व्याकरण"*, (भूमिका), पृ.सं xv-xvi i

[15] उपाध्याय, भरतसिंह, *"पालि साहित्य का इतिहास"*, पृ.सं. 34

और महावंस के उद्धरणों से स्पष्ट होता है। इसका प्रामाणिक उल्लेख हमे दोनों में इस प्रकार द्रष्टव्य है-

पिटकत्तयपालिं च तस्सा अट्ठकथं च तं।

मुखपाठेन आनेसुं पुब्बे भिक्खू महामती॥

हानिं दिस्वान सत्तानं तदा भिक्खु समागता।

चिरट्ठित्थं धम्मस्स पोत्थकेसु लिखापयुं॥[16]

अर्थात् "त्रिपिटक की पालि और उसकी अट्ठकथाओं को जिन्हें पूर्व में महामति भिक्षु कण्ठस्थ करके ले आये थे, प्राणियों (स्मृति) को हानि देखकर भिक्षुओं ने एकत्र हो, धर्म की चिरस्थिति के लिए,बुद्धवचनों को पुस्तकों में लेखबद्ध करवाया। उपर्युक्त सभी विवरणों से यह ज्ञात हुआ है कि पालि शब्द का प्रयोग बुद्ध-वचनों के लिए ही प्रयोग किया गया है। इस प्रसंग में यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि उन्नीसवी शताब्दी से पूर्व पालि शब्द का प्रयोग भाषा के रूप में न होकर बुद्ध-वचनों के रूप में ही प्रचलित था। भाषा के रूप में उसका यह नामकरण अत्यन्त आधुनिक है। आज पालि से तात्पर्य पालि भाषा से ही लेते है। पालि भाषा अर्थात् बुद्ध-वचनों कि भाषा, जिसमें स्थविरवाद बौद्ध धर्म का त्रिपिटक और उसका सम्पूर्ण उपजीवी साहित्य रखा हुआ है।

1.2.1 प्रथम धम्म सङ्गीति

लोकनायक शास्ता भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् तत्कालीन भारत वर्ष के विभिन्न ग्राम-निगम, जनपद में सर्वत्र चारिका करते हुए निरन्तर पैतालीस वर्षों तक अपने धर्म का लोककल्याण हेतु उपदेश दिये। बहुजनों के हित एवं सुख के लिए अपने धर्मरूपी वचनों का वर्षण करना ही उनका मूल उद्देश था। इसी लोककल्याण एवं लोकमङ्गल की भावना से प्रेरित होकर स्वस्थ समाज की प्रस्थापना के लिए और मनुष्य को सुख प्रदान करने के लिए

[16] सोहनी, श्रीधर, वासुदेव, *"महावंसटीका"*, पृ.सं. 577-578

भगवान् बुद्ध और उनके शिष्य जनसामान्य को उपदेश देते रहे। पूर्वोक्त है कि उन्होंने अपने उपदेशों को न केवल स्वयं जनभाषा में प्रसारित किया अपितु अपने शिष्यों को भी उनके उपदेश जनभाषा में देने का आदेश दिया। इसी कारण तत्कालीन भारत वर्ष के जनसामान्य के मध्य भगवान् बुद्ध और उनका आर्य श्रावक संघ लोकप्रिय हो गया। उन्होंने चारिका काल में जो कुछ उपदेश दिये वे सभी मौखिक थे। उन सभी उपदेशों को भिक्षु कंठस्थ करते थे, जिन्हे शास्ता के महापरिनिर्वाण के पश्चात् विभिन्न विधि द्वारा संकलित किया गया। लोकनाथ, लोकनायक दसबल के महापरिनिर्वाण के सप्ताह भर पश्चात् वृद्धावस्था में प्रव्रजित सुभद्र नामक भिक्षु द्वारा कहे गये वचनों को स्मरण करते हुए स्थविर महाकाश्यप ने भिक्षुओं को आमन्त्रित करते हुए कहा *"मयं, आवुसो, धम्मञ्च विनयञ्च संगायेय्यामा" ति।*[17] *अर्थात् आवुसों! हम धम्म तथा विनय का संगायन करे। "हन्द मयं, आवुसो, धम्मं च विनयं च सङ्गयाम। पुरे अधम्मो दिप्पति, धम्मो पटिबाहिय्यति; अविनयो दिप्पति, विनयो पटिबाहिय्यति। पुरे अधम्मवादिनो बलवन्तो होन्ति, धम्मवादिनो दुब्बला होन्ति; पुरे अविनयवादिनो बलवन्तो होन्ति, विनयवादिनो दुब्बलो होन्ति"*[18] अब आयुष्यमानों! अब हमारे लिये उचित होगा कि हम लोग धर्म एवं विनय का सङ्गायन कर ले। क्योंकि सामने (निकट भविष्य में ही) अविनय (धर्म का उलंघन) बढ जायेगा तथा विनय(धर्मानुसार आचरण) क्षीण होने लगेगा, अधर्मवादी बलवान (बहुमत में) हो जायेंगे तथा धर्मवादी दुर्बल(अल्प मत में) हो जायेंगे, इसी प्रकार अविनयवादी बलवान् एवं विनयवादी दुर्बल होने लगेंगे। आयुष्यमान् के इस प्रश्न पर भिक्षुओं द्वारा सम्मति प्रदान करते हुए कहा गया कि भन्ते तब संघ मे वरिष्ठ भिक्षुओं का चयन करें। तब आयुष्यमान ने पाँचसौ अर्हन्त भिक्षुओं का चयन कर कहा-

---

[17] तिवारी, महेश, *"सद्धम्मसङ्गहो"*, पृ.सं. 2

[18] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"चुळवग्गो"*, पञ्चसतिकाक्खन्धकं, पृ.सं. 628

"राजगहे, आवुसो, वस्सं वसन्ता धम्म च विनय च संगायेय्यामा"ति।[19] राजगृह में, आवुसों! वर्षावास करते हुए हम धम्म तथा विनय का संगायन करे।

"सात लाख भिक्षुओं में स्थविर महाकाश्यप जेष्ठतम थे। वर्षा काल के द्वितीय मास में द्वितीय दिवस उस सुन्दर मण्डप में वे स्थविर एकत्रित हुए।"[20] इस प्रकार प्रथम सङ्गीतिका विवरण हमे प्राप्त होता है। बुद्ध-वचनों का संगायन उन स्थविरों द्वारा विभिन्न प्रकार से किया गया। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि श्रेणीय नरेश बिम्बिसार जो बुद्ध, धम्म और संघ प्रति श्रद्धा रखता था, उसके मृत्यु पश्चात् उसका पुत्र श्रेणीय नरेश अजातशत्रु का शासन मगध पर था। उसी के शासन काल में एवं उसी के आश्रय से प्रथम धम्मसङ्गीतिका आयोजन राजगृह में स्थित पाण्डव पर्वत के सप्तपर्णी गुफा में किया गया।[21] श्रेणीय नरेश अजातशत्रु यदि आश्राय न देता तो इस सङ्गीतिके आयोजन में कठिनाई बढ़ सकती थी। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो बौद्ध धर्म के विकास एवं उत्थान में कई राजाओं का आश्रय महत्त्व पूर्ण रहा है। भगवान् तथागत के प्रति उनकी श्रद्धा और आस्था का ही यह परिचायक है। इस प्रकार वृद्ध प्रव्रजित सुभद्र जैसे भिक्षुओं के असंयम को देखकर उस समय सङ्घ में सर्वजेष्ठ भिक्षु स्थविर महाकाश्यप ने कहा आयुष्मानों! अधर्म बढ़ रहा है, धर्म का ह्रास हो रहा है! आओ आयुष्मानों! हम विनय और धर्म का सङ्गायन करे।[22] इसी कुशल चेतना से उन महास्थविर महाकाश्यप के आदेश से भगवान् के महापरिनिर्वाणके पश्चात् तीसरे माह (सावन=श्रावण) के समाप्त होने व चौथे मास भाद्रपद आरम्भ होने पर प्रथम सङ्गीति प्रारम्भ हुई।

---

[19] तिवारी, महेश, *"सद्धम्मसङ्गहो"*, पृ.सं. 2 "सत्तसतसहस्सानि,तेसु पामोक्खभिक्खवो । थेरो महकस्सपो च, सङ्घत्थेरो तदा अहु ॥

[20] वही,"वस्सान दुतिय मासे, दुतिये दिवसे पन । रूचीरे मण्डपे तस्मिं, थेरा सन्निपतिंसु ते"ति ॥

[21] तिवारी, महेश, "सुमङ्गलविलासिनी", पठम भागो, पृ.सं. 13"वेभारपब्बतपस्से सत्तपण्णि गुहाद्वारे कातु युत्तं महाराजा"ति।

[22] शास्त्री,स्वामी द्वारिकादास, *"चुल्लवग्गपालि"*, पृ. सं. 628

मगधराज अजातशत्रु के राजकीय संरक्षण एवं महास्थविर महाकाश्यप की अध्यक्षता में यह प्रथम सङ्गीति राजगृह के वेभारगिरी के उत्तरी पार्श्व में स्थित सप्तपर्णी के द्वार पर मण्डप में यह सङ्गीति सम्पन्न हुई। इस धम्म सङ्गीति में 500 अर्हत् भिक्षुओं का सम्मेलन हुआ इस कारण पालि साहित्य में इसे 'पञ्चसतिका'[23] नाम से ख्याति प्राप्त हुई है।

1.2.2 द्वितीय धम्म सङ्गीति

दीपवंस तथा महावंस से पुनः ज्ञातव्य है कि भगवान् के महापरिनिर्वाण के एक सौ वर्ष के पश्चात् वैशाली के वालुकाराम में विनय एवं धम्म का जिस प्रकार प्रथम सङ्गीतिकारों ने सङ्गायन किया था, तद्नुरूप ही पुनः द्वितीय सङ्गीति स्वरूप सङ्गायन किया गया। मुख्यतः यह द्वितीय सङ्गीति 'विनय-नियम' के उल्लंघन से सङ्घ में जो विवाद उत्पन्न हुए थे, के निर्णय तथा बुद्धसासन की रक्षा हेतु की गई। वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षु दसबातों का उल्लंघन करते थे, जिन्हें पालि में 'दसवत्थुनि'[24] कहा जाता है। उन विनय धर्मों के विपरित आचरण करने लगे थे। वह दस बातें निम्नवत है; यथा-

(१) सिंगिलोणकप्प (भूगिलवण कल्प) अर्थात् सींग में नमक भर ले जाना,(२) द्वंगुलकप्प (द्वयंगुल कल्प) अर्थात् दो अंगुल छाया बिताकर दोपहर के बाद भी भोजन कर लेना,(३) गामान्तरकप्प (ग्राम्यन्तर कल्प) अर्थात् किसी दूसरे गाँव जाकर उसी दिन पुनः भोजन कर लेना, (४) आवासकप्प (आवास कल्प) अर्थात् एक ही सीमा के अन्दर बहुत से आवासों में उपोसथ करना, (५) अनुमतिकप्प (अनुमति कल्प) अर्थात् कर्म करने के उपरान्त स्वीकृति लेना, (६) अचिण्णकप्प (आचीर्ण कल्प) अर्थात् अपने आचार्य या उपाध्याय के किसी भी आचरण को अपने लिए उदाहरण बना लेना, (७) अमथितकप्प (अमथित कल्प) अर्थात् अर्थात् भोजन के बाद ऐसे दूध को पीना जो अभी दही नहीं बना है (८) जलगा पान

---

[23] शास्त्री,स्वामी द्वारिकादास, "*चुल्लवग्गपालि*", पृ. सं. 642

[24] सोहनी, श्रीधर, वासुदेव, "*महावंसटीका*", पृ.सं. 122

अर्थात् ताड़ी पीना,(९) अदसकनिसिदन (अदशक निषौदन) अर्थात् बिना मगजी का आसन प्रयोग करना और (१०) जातरूप-रजत अर्थात् सोना-चाँदी ग्रहण करना।[25] विनय धर्मों का उल्लंघन करनेवाले अधर्मवादी भिक्षु कहलाये। जिन भिक्षुओं ने विनय के इन नियमों का उल्लंघन निषिद्ध बतलाया वे धर्मवादी कहलाये। धर्मवादी भिक्षुओं में उस समय के जेष्ठतम भदन्ताचार्य स्थविर रेवत, सम्भूतसाणवासी और यसकाकण्डपुत्त जैसे अधिगमसम्पन्न भिक्षु थे।[26]

यहाँ यह ध्यातव्य है कि इन विनय-शासन के विवाद में पड़े भिक्षुओं के दो दल (गुट) विभाजित हो गये। यह स्थान अथवा दिशा से निर्धारण किये गये– पूर्ववाले भिक्षु जो वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षु थे। जिन्हें पालि में 'पाचानक' (प्राचानक) कहा गया। यहीं वे भिक्षु थे, जो पूर्वोक्त दस निषिद्ध बातों का सेवन करते थे। पश्चिमवाले भिक्षु जो धर्मवादी थे, वे वज्जिपुत्तकों द्वारा सेवित दस निषिद्धों का पुरजोर से विरोध करते थे, इन्हें पालि में पावेय्यक अथवा पाठेय्यक कहाँ गया है। 'इस प्रकार पूर्व वाले वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशाली के विनय विपरीत आचरण करनेवाले भिक्षुओं के पक्ष में थे और पश्चिमवाले विरोध में विपक्ष में थे। विनय धर्म के नियमों का निर्धारण वैशाली की धम्मसङ्गीति में किया गया, जो आठ मास तक चलती रही।[27] यहाँ एक महत्त्व पूर्ण तथ्य है कि निश्चिय ही इन वाद-विवादों का समाधान करने के लिए इस समय तक भिक्षु-संघ के पास सुनिश्चित एवं संगृहीत साहित्य निश्चित ही था, जो परम्परा से प्रथम सङ्गीति के बाद मौखिक परम्परा से आया था। जिस परम्परा के आधार पर इन प्रश्नों का खण्डन व शासन की रक्षा की गयी। किन्तु यह बात तो स्पष्ट है कि विनय धर्म के निर्धारण स्वरूप संघ में विभेद उत्पन्न हो गया। जिस अनुराग के कारण वृद्ध प्रव्रजित सुभद्र के स्वैराचारी कथन से स्थविर महाकाश्यप ने प्रथम सङ्गीति

---

[25] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*चुल्लवग्गपालि*", पृ.सं. 416

[26] वही, पृ.सं. 430

[27] वही, पृ.सं. 423-427

का आयोजन किया था, उसी प्रकार विनय को न मानने वालों का यह एक दल इस समय उत्पन्न हो गया।

वैशाली की सङ्गीति में विनय- सम्बन्धी दस बातों के विषय में निर्णय हो जाने के बाद उन सात सौ भिक्षुओं ने महास्थविर की सभापतित्व में सङ्गीति की। जिस प्रकार महाकाश्यप आदि क्षीणास्रव अर्हत् भिक्षु जिन्होंने राजगृह में प्रथम सङ्गीति, जिसके ऐतिहासिक सन्दर्भ में स्थविरवाद स्थापित हुआ। वे सङ्गीति में सम्मिलित भिक्षु स्थविर कहलाये,उन्होंने जो कुछ विनय और धर्म विनिश्चित किया वही 'थेरवाद' (स्थविरवाद) कहलाया। पालि भाषा में त्रिपिटक इसी थेरवाद परम्परा व बौद्ध धर्म का मूल साहित्य है। बौद्ध परम्परा में स्थविर उसे ही कहते है "सासनेथिरमावंपत्ती ति थेरो" अर्थात् जिसने बुद्धशासन में स्थिरता प्राप्त की है।

"उस समय वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षु उपोसथ के अवसर पर ताम्र-पात्र को जल से भरकर, भिक्षुसंघ के बीच रखकर, आये हुए वैशाली के उपासकों से ऐसा कहते थे- 'दो, आवुसों, संघ को कहापन या अड्ढ या पाद या मासक या रूप दो, यह संघ परिष्कार में आवश्यक होगा।' सात सौ, ज्यादा न कम, भिक्षुओं की इस सङ्गीति के होने के पहले ये सब हुआ। इसलिए यह सङ्गीतिसत्तसतिका (सात सौ भिक्षुओं की) कहलाती है।"[28] दीपवंस और समन्त-पसादिका के अनुसार वह सभा अजातशत्रु के वंशज कालाशोक के समय हुई। कालाशोक पहले वज्जियों पक्ष में था। बाद में उसने थेर-संघ की बात मान ली।[29]

1.2.3 तृतीय धम्म सङ्गीति

इस प्रकार क्रमशः द्वितीय धम्मसङ्गीति के पश्चात् सम्राट अशोक के राज्याभिषेक के सत्रहवे वर्ष में बुद्ध परिनिर्वाण के 235 वे वर्ष में पाटलिपुत्र के

---

[28] सिद्धार्थ, "*सद्धम्मसङ्गहो*", पृ.सं. 21

[29] बापट, पी. वी., "*बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष*", पृ.सं.13

अशोकाराम विहार में तृतीय धम्मसङ्गीति हुई थी।[30] यह भी पूर्वोक्त वर्णित उन थेरवादी भिक्षुओं द्वारा परम्परा के संरक्षणार्थ की गयी सङ्गीति थी। इस सङ्गीति के विषय में कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का विवेचन करना समीचीन प्रतीत होता है। जिस प्रकार वैशाली के वज्जिपुत्तकों द्वारा दसवत्थुनि के उल्लंघन स्वरूप द्वितीय सङ्गीति की आवश्यकता थी तद्नुरूप ही सम्राट अशोक के समय आते-आते बौद्ध- सङ्घ अठराह सम्प्रदायों एवं विभिन्न निकायों में विभक्त हो गया। यहाँ उल्लेखनीय है कि इस समय जिस निकाय अथवा सम्प्रदाय ने यह सङ्गायन किया वह थेरवाद परम्परा का ही अङ्ग है। कहीं उसे विभज्जवादी[31] कहा गया है किन्तु वास्तव में वह स्थविरवाद का ही अङ्ग है। ऐतिहासिक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि सम्राट अशोक के समय राजाश्रय प्राप्त होने के कारण बहुत सारे अधर्मी तथा अन्य धर्मावलम्बी भिक्षु सङ्घ में प्रवेशित होने लगे। जिससे सङ्घ अपनी विमलता खोकर मलीन होता स्पष्ट दिखाई देने लग गया। उस समय 07 वर्ष तक सङ्घ का कोई उपोसथ भी नहीं हुआ व अधार्मिक प्रवृत्ति राजाश्रय व आदर-सत्कार की वजह से बढने लगी।[32] उस समय कहा जाता है कि सम्राट अशोक के गुरु व सङ्घ में जेष्ठतम सङ्घनायक मोगलीपुत्ततिस्स ने अस्सी हजार अधार्मिक लोगों के चीवर उतार कर श्वेत वस्त्र परिधान करवाये। उसी समय उन्होंने सम्राट अशोक के राजाश्रय में पाटलिपुत्र के अशोकाराम में तृतीय धम्मसङ्गीति बुलाई। जिसमें एक हजार भिक्षु सम्मिलित हुए। इसी समय बुद्धवचनों का त्रिपिटकों के रूप में स्पष्ट विभाजन निर्धारित हुआ। 'परवाद के खण्डणार्थ (अठारह सम्प्रदाय) व स्थविरवाद का प्रबल पक्ष रखने के लिए मोगलीपुत्त तिस्स थेर द्वारा कथावत्थुप्पकरण की रचना कर

---

[30] सोहनी, श्रीधर, वासुदेव, *"महावंसटीका"*, पृ.सं. 203

[31] वही,

[32] वही, पृ. सं. 166

अभिधम्मपिटक में मौलिक स्थान दिलाया गया।'[33] बौद्ध परम्परा में इसे 'दससतिका' कहा जाता है। इसी सङ्गीति के फल स्वरूप विभिन्न देश-विदेशों में धर्म प्रचार के लिए धर्मदूत भेजे गये। जिससे बौद्ध धर्म को विश्व धर्म के स्वरूप में ख्याति प्राप्त करने का अवसर मिला है।

सम्राट अशोक के द्वितीय और तेरहवें शिलालेखों से स्पष्ट होता है कि उसने न केवल अपने विशाल साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों में ही बल्कि सीमान्त देशों में बसने वाले यवन, कम्बोज, गान्धारी,राष्ट्रिकपितानिक, भोज, आन्ध्र, पुलिन्द इत्यादि जनजातियों और केरलपुत्र, सत्यपुत्र, चोल,पाण्ड्य नामक दक्षिणी भारत के स्वाधीन राज्यों में तथा सिंहलद्वीप में भी बुद्ध धम्म के प्रचार हेतु धर्मोपदेशकों को भेजा।[34] इनका विस्तृत विवेचन सासनवंस नामक ग्रन्थ में आया है; यथा-

1. स्थविरमाध्यान्तिक (मज्झन्तिक)- काश्मीर और गन्धारप्रदेश
2. स्थविरमहादेव- महिषमण्डल(महिन्सकमण्डल)
3. स्थविररक्षित (रक्खित)- वनवासिप्रदेश (वर्तमानउत्तरीकिनारा)
4. यूनानीभिक्षुधर्मरक्षित (योनेकधम्मरक्खित)- अपरान्तकप्रदेश
5. स्थविरमहाधर्मरक्षित (महाधम्मरक्खित)- महाराष्ट्र (महारट्ठ)
6. स्थविरमहारक्षित (महारक्खित)- यवनदेश
7. स्थविरमध्यम (मज्झिम)- हिमालय(हिमवन्त) प्रदेश
8. स्थविर सोण और उत्तर- सुवर्णभूमि (सुवण्णभूमि)
9. महेन्द्र (महिन्द), ऋष्ट्रिय (इट्टिय), उत्रिय (उत्तिय), शम्बल (सम्बल) और भद्रशाल (भद्दसाल) तामपर्णी (तम्बपण्णि) (लङ्का)[35]

---

[33] बापट, पी. वी., "*बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष*", पृ.सं.14

[34] वही, पृ.सं.20

[35] शर्मा, बीरबल, "*समन्तपासादिका*", पृ.सं. 55

सम्राट अशोक के समय आयोजित इस सङ्गीति की यह फलिश्रुत है कि उपर्युक्त वर्णित विस्तृत धर्म-प्रचार के इतिहास में सिंहलद्वीप में किया गया कार्य व सांस्कृतिक व राजनैतिक सम्बन्ध अधिक है। सम्राट अशोक द्वारा भेजे गये धर्मदूतों का सिंहलद्वीप के राजा देवानाम्प्रिय तिस्स ने सहर्ष स्वागत एवं सत्कार कर उनके धर्मरूपी सन्देश को जनसमुदाय के साथ स्वीकार किया।[36]

सम्राट अशोक के समय में जो तृतीय सङ्गीति सम्पन्न हुई निश्चय ही उस सङ्गीति के फल स्वरूप बुद्धवचनों का त्रिपिटक के रूप में स्पष्टतया विभाजन हो गया। स्थविर महामहेन्द्र और उनके साथी भिक्षु सिंहलद्वीप जो बुद्धवचनों की परम्परा ले गये।[37]

पालि त्रिपिटक के अध्ययन के लिए अनुराधपुर में 'महाविहार' की स्थापना हुई । "यही लंका का पहला विहार महाविहार था, इसी के नाम पर स्थविरवादी सम्प्रदाय 'महाविहारवासी' नाम से प्रसिद्ध हुआ।"[38] इस विहार में अध्ययनक्रम निरन्तर चलता रहा और शताब्दियों तक केवल मुखपाठेन (मौखिक परम्परा) चलता रहा । भगवान् के महापरिनिर्वाण के पश्चात् प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व में सिंहलद्वीप के राजा वट्टगामणि अभय के समय चौथी धम्मसङ्गीति सम्पन्न हुई। जिस पालि त्रिपिटक (मूल बुद्धवचन) को स्थविर महामहेन्द्र और उनके साथी भिक्षु सिंहलद्वीप ले गये थे, उसे इस समय ताम्रपत्रों पर लिखा गया। वट्टगामणि अभय के समय में जिस त्रिपिटक को लेखबद्ध किया गया, वह वही मूल त्रिपिटक था जिसे पाटलिपुत्र की सङ्गीति में अन्तिम रूप से सुनिश्चित किया जा चुका था, जिसे स्थविर महामहेन्द्र और उनके साथी भिक्षु सिंहलद्वीप ले गये थे।[39]

---

[36] उपासक, च.सु., "*सासनवंसो*", पृ.सं. 17-18
[37] सोहनी, श्रीधर, वासुदेव, "*महावंसटीका*", पृ.सं. 162
[38] सांकृत्यायन, राहुल, "*बौद्ध संस्कृति*", पृ.सं. 73
[39] बापट, पी. वी., "*बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष*", पृ.सं.15

1.3 बुद्ध-वचनों का वर्गीकरण

बुद्ध-वचनों को विभिन्न प्रकार से विभाजित किया गया। सम्पूर्ण बुद्धवचन को सात प्रकार से विभाजित किया गया है। "*तदेतं सब्बं पि बुद्धवचनं रसवसेन एकविधं, धम्मविनयवसेन दुविधं, पठममज्झिमपच्छिमवसेन तिविधं; तथा पिटकवसेन, निकायवसेन पञ्चविधं, अङ्गवसेन नवविधं, धम्मक्खन्धवसेन चतुरासीतिसहस्सविधं ति वेदितब्बं।*"[40]

1.3.1 रस के अनुसार एक प्रकार (रसवसेन एकविधं)

भगवान् के द्वारा अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि प्राप्त कर अनुपादिसेस निर्वाण प्राप्त करने तक पैतालीस वर्षों तक अनुशासन करते हुए देवता, मनुष्य, नाग, यक्ष इत्यादि को विवरण कर जिसे उपदेशित किया; वह सभी रस की दृष्टि से एक विमुक्ति रस है।[41]

1.3.2 धम्म एवं विनय के अनुसार दो प्रकार (धम्मविनयवसेन दुविधं)

इस प्रकार सभी बुद्धोपदेश धम्म और विनय है। यहाँ बुद्धवचन से तात्पर्य विनयपिटक से विनय, अवशेष बुद्धवचन से धम्म है। जिसके कारण निश्चय ही हम धम्म और विनय का संगायन करे। मैं उपालि से विनयविषयक प्रश्न पूछूँ और आनन्द से धम्मविषयक प्रश्न पूछूँ। इस प्रकार धम्म, विनय के अनुसार दो प्रकार का है।[42]

1.3.3 प्रथम, मध्यम एवं अन्तिम वाचा के अनुसार तीन प्रकार

(पठममज्झिमपच्छिमवसेन तिविधं)

प्रथम, मध्यम और अन्तिम वचन के अनुसार सम्पूर्ण बुद्धवचन तीन प्रकार का होता है। यहाँ वचन के अनुसार (ऐसा कहा गया है)- "गृहकारक को ढूंढते हुए मैं अनेक जन्मों तक लगातार संसार मे दौड़ता रहा। बार-बार जन्म लेना

---

[40] तिवारी, महेश, "*सुमङ्गलविलासिनी*", पठम भागो, पृ.सं. 21

[41] शर्मा, बीरबल, "*समन्तपासादिका*", पृ.सं. 16

[42] वही, पृ. सं. 16-17

दुःख है। गृहकारक! तू दिखाई दे गया। अब फिर घर नहीं बन सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गई। घर का शिखर बिखर गया। चित्त संस्कार-रहित हो गया। तृष्णाओं का क्षय हो गया। यह प्रथम बुद्धवचन है।"[43]

महापरिनिर्वाण के समय जो भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित कर कहा- "हन्त! भिक्षुओं! अब तुम्हे कहता हूँ- संस्कार(कृतवस्तु) व्यय-धर्मा(नाशवान) है; अप्रमाद के साथ(जीवन का लक्ष्य) सम्पादन करो।"[44]

इन दो (वचनों) के बीच जो कुछ भी कहा गया है, वह मध्यम बुद्धवचन है। इस प्रकार आदि, मध्य एवं अन्तिम के भेद से त्रिविध हैं।

1.3.4 निकाय के अनुसार पाँच प्रकार (निकायवसेन पञ्चविधं)

दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय, अङ्गुत्तरनिकाय और खुद्दकनिकाय के अनुसार सम्पूर्ण बुद्धवचन पाँच प्रकार से है।[45] दीघनिकाय जिसका तीन वर्गों मे विभाजन हुआ है और जिसमें ब्रह्मजाल आदि चौतीस सुत्त संग्रहित है। इसके अतिरिक्त दीघनिकाय कैसे कहाँ जाता है? दीर्घ अप्रमाणित(असीम) सूत्रों का समूह जिसके अन्दर संगृहित है उसे दीघनिकाय कहा गया है। "भिक्षुओं चित्त के समान दूसरा कोई एक धर्म नहीं है। पशु-पक्षी भी अपने चित्त के कारण ऐसे हुए है। इन तिरश्चीन(पशु-पक्षी) प्राणियों में भी चित्त ही प्रधान है। अतः साधक को निरन्तर आत्मचिन्तन करते रहना चाहिये कि मेरा चित्त बहुत काल से राग, द्वेष, मोह से कलुषित है।"[46] लोक मे शासन करते हुए शास्ता ने साधकों को चित्त के कलुषित भाव को कीचड तथा दलदल के निकाय समान बताया। इस प्रकार बुद्ध-वचन में निकायभाव का अर्थ ज्ञात होता है।

---

[43] भिक्खु जगदीसकस्सपो, सुत्तपिटके खुद्दकनिकाये, "*धम्मपदपालि*", पृ.सं. 32
[44] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*दीघनिकायपालि*", (महावग्गो), पृ.सं. 64
[45] शर्मा, बीरबल, "*समन्तपासादिका*", पृ.सं. 16
[46] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*संयुत्तनिकायपालि*", पृ.सं. 934

मध्यम आकार वाले सुत्तों के संग्रह को ही मज्झिमनिकाय कहा जाता है । यह पन्द्रह वर्गों मे विभाजित है, मूलपरियायसुत्त आदि सुत्त इसमें संग्रहित है। मज्झिमनिकाय में क्रमशः152 सुत्त हैं, जो 15 वर्गों में विभाजित है।[47]

देवता संयुक्त एवं अन्य संयुक्तों में कहे गये ओघतरणादि सात सहस्र और सात सौ बासष्ठ सूत्र जिसमे संग्रहित है उसे संयुक्तनिकाय कहा जाता है।[48]

खुद्दकनिकाय जिसमें सम्पूर्ण विनयपिटक, अभिधम्मपिटक और खुद्दपाठ इत्यादि पंद्रह ग्रन्थों का संग्रह किया गया है । चार निकायों को रखकर अवशेष बुद्धवचनों को खुद्दकनिकाय कहा गया है[49]। इसप्रकार निकाय भेद से सम्पूर्ण बुद्धवचन पाँच प्रकार का है।

1.3.5 अङ्ग के अनुसार नव प्रकार (अङ्गवसेन नवविधं)

सुत्त, गेय्य, वेय्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अब्भुत-धम्म, एवं वेदल्ल को नव अंग के रूप से स्वीकार किया जाता है।[50] वहाँ उभय विभंग निर्देश, खन्धक, परिवार, सुत्तनिपात में मङ्गलसुत्त, रतनसुत्त, नालकसुत्त, तुवट्टकसुत्त और अन्य भी सुत्त नामक तथागत वचनं के वचनों को सुत्त कहा जाता है।[51] सभी गाथाओं को सुत्त 'गेय्य' भी कहा जाता है।[52] विशेषतः संयुक्तनिकाय का सगाथवर्ग, सम्पूर्ण अभिधम्मपिटक, निग्गाथक सुत्त आदि 'वेय्याकरण' कहे जाते है।[53] धम्मपद, थेरगाथा, थेरीगाथा, सुत्तनिपात आदि को गाथा कहा गया है।[54] जिनका प्रारम्भ "वुत्तहेतं भगवता" अर्थात् भगवान् ने यह

---

[47] शर्मा, बीरबल, "*समन्तपासादिका*", पृ.सं. 25
[48] वही,
[49] वही,
[50] तिवारी, महेश, "*सुमङ्गलविलासिनी*", पठम भागो, पृ.सं. 32
[51] वही,
[52] वही,
[53] वही,
[54] वही,

कहा से होता है ऐसे एक सौ दस संग्रह को इतिवुत्तक कहा गया है।[55] परम्परा के अनुसार पाँचसौ पचास जातक कहे गये हैं।[56] चार प्रकार के अद्‌भुत धर्म (अब्भुत धम्म)[57] और चुळवेदल्ल, महावेदल्ल आदि वेदल्ल कहे गये है।[58]

1.3.6 धम्मस्कन्ध के अनुसार चौरासी हजार प्रकार

(धम्मक्खन्धवसेन चतुरासीतिसहस्सविधं)

इस विभाजन के अनुसार 82 हजार धर्मस्कन्ध लोकशास्ता भगवान् बुद्ध द्वारा भाषित और 2 हजार धर्मस्कन्धशास्ता द्वारा अनुमोदित भिक्खुओं वचन के है। एक अनुसन्धिक सुत्त को एक धर्मस्कन्ध कहते है। उसी प्रकार अनेक अनुसन्धिकों की गणना इसी अनुसन्धि के अनुसार की जाती है । गाथाबद्ध, प्रश्न एवं उत्तर का एक धर्मस्कन्ध इस प्रकार विभाजन है । अभिधम्म में 'एक-एक' 'तिक-दुक' के विभाजनानुसार और एक-एक 'चित्तवार' विभाजनानुसार एक-एक धर्मस्कन्ध का विभाजन किया गया है। विनय में वस्तु, मातिका, पद-भाजन, अन्तरापत्ति, आपत्ति, अनापत्ति एवं तिकच्छेद इस प्रकार एक-एक भाग को धर्मस्कन्ध के रूप में विभाजन किया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण बुद्ध-वचन धर्मस्कन्ध के अनुसार चौरासी हजार प्रकार का है ।[59]

पूर्वोक्त है कि पिटकों के अनुसार सम्पूर्ण बुद्ध-वचन तीन प्रकार से विभाजित है। यहाँ पिटकों के अनुसार ही विस्तार से विवेचन किया जाएगा;यथा-पिटकवसेन तिविधं।

---

[55] तिवारी, महेश, "*सुमङ्गलविलासिनी*", पठम भागो, पृ.सं. 32

[56] वही,

[57] वही, पृ.सं. 33

[58] वही,

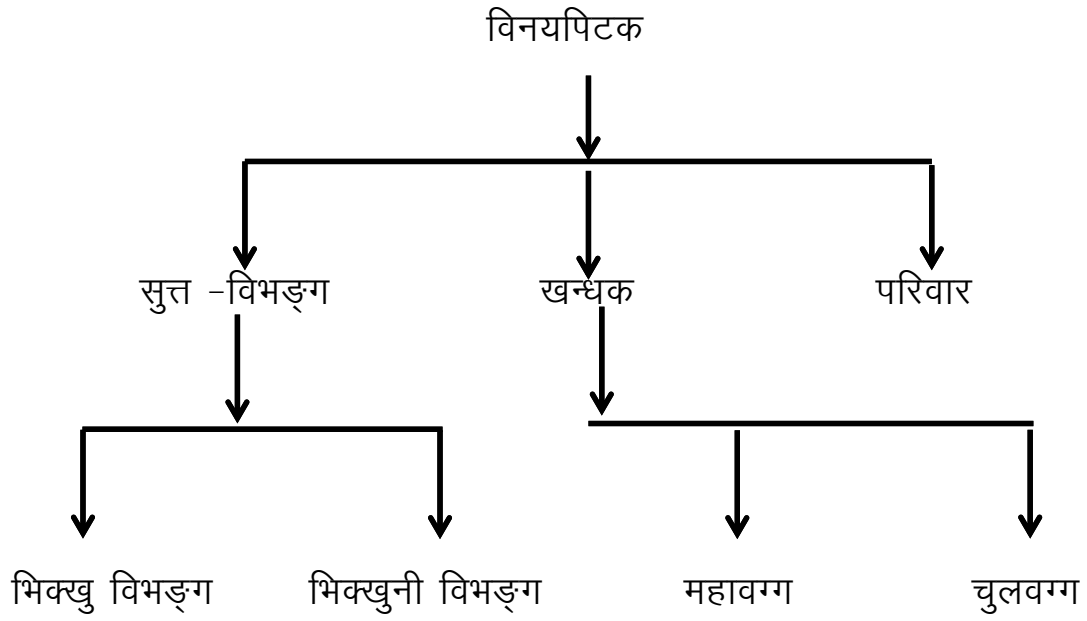
[59] शर्मा, बीरबल, "*समन्तपासादिका*", पृ.सं. 26

1.4 त्रिपिटक का संक्षिप्त परिचय

1.4.1 विनय पिटक

विनय पिटक को बुद्ध के संघ की आचार संहिता कहते हैं। विनय का अर्थ है- नियम। भगवान् बुद्ध ने संघ के सदस्यों (भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों) के आचरण को शुद्ध रखने के लिये जिन नियमों का विधान किया था, उन्हीं नियमों एवं उनकी व्याख्या का संकलन विनयपिटक में किया गया है। बुद्ध द्वारा संस्थापित संघ की स्थिति इन्हीं विनय सम्वन्धी नियमों के पालन पर निर्भर है, अतः त्रिपिटक में विनयपिटक को प्रमुख माना जाता है। विनयपिटक में भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए बनाये गये नियमों के अतिरिक्त बुद्ध के संघ के उद्भव एवं विकास का इतिहास भी संकलित है।

मुख्यतः विनयपिटक को तीन भाग में वर्गीकृत किया गया है- (1) सुत्तविभङ्ग (2) खन्धक और (3) परिवार।[60]



[60] बापट, पी.,वी., "*बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष*" , पृ.सं. 100

इसके अतिरिक्त विनयपिटक का वर्गीकरण अन्य प्रकार से इस प्रकार प्राप्त होता है, यथा- 1. पाराजिकपालि, 2. पाचित्तियपालि, 3. महावग्ग, 4. चुल्लवग्ग, 5. परिवार ।[61]

सुत्त विभङ्ग जिसे दो भागों में विभक्त किया है; यथा- प्रथम भाग भिक्खु विभङ्ग और द्वितीय भाग भिक्खुणी विभङ्ग । सुत्त विभङ्ग को महा विभङ्ग भी कहा जाता हैं । सुत्त विभङ्ग का शाब्दिक अर्थ सुत्तों का विस्तृत रूप से विभाजन या विश्लेषण । यहाँ सुत्त कहने से तात्पर्य विनय-नियमों से हैं । सुत्त विभङ्ग से तात्पर्य उभय विभङ्ग से है; भिक्खु विभङ्ग तथा भिक्खुणी विभङ्ग। भिक्खु विभङ्ग में भिक्खुओं के अनुशासन के नियम संगृहित हैं और भिक्खुणी विभङ्ग में भिक्खुणिओं के अनुशासन के नियम संगृहित हैं।

खन्धक- विनय पिटक का द्वितीय ग्रन्थ हैं। खन्धक से तात्पर्य 'विभाग अथवा परिच्छेद'[62] होता है। इसका विभाजन दो भागों में किया गया है; यथा- महावग्ग और चुल्लवग्ग। सर्व प्रथम महावग्ग के विषय का वर्णन करना तदनन्तर चुल्लवग्ग के विषयवस्तु का वर्णन करना समीचीन प्रतीत होता है।

1.4.2 सुत्त पिटक

सुत्तपिटक भगवान् बुद्ध के धर्मोपदेशों का प्रमाणिक संकलन है। भगवान् बुद्ध या उनके किसी शिष्य द्वारा भिन्न-भिन्न जीवन-स्तर के मनुष्यों तथा भिक्षुओं को जी उपदेश दिये थे, उन्हें इस पिटक के अन्तर्गत रखा गया है। 'यह पांच निकायों में विभाजित है- दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अङ्गुत्तरनिकाय एवं खुद्दकनिकाय।'[63] जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत है-

---

[61] उपाध्याय, भरतसिंह, *"पालि साहित्य का इतिहास"*, पृ.सं. 413

[62] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि-हिन्दी कोश"*, पृ.सं.107

[63] जैन कोमलचन्द्र, *"पालि साहित्य का इतिहास"*, पृ.सं. 17

1.4.2.1 दीघनिकाय-

इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें दीर्घ आकार वाले सुत्तों का संग्रह हैं। यह सुत्तपिटक का प्रथम भाग हैं। समन्तपासादिका, सुमङ्गलविलासिनी और अट्ठसालिनी के बाहिर निदान कथा में अट्ठकथाचार्य ने समान रूप से यह प्रश्न उपस्थित किया है कि इसे 'दीघनिकाय' ही क्यों कहा गया? "*कस्मपनेस दीघनिकायायो ति वुच्चति?*"[64] उत्तर स्वरुप कहा गया कि "*दीघप्पमाणानं, सुत्तानं समूहतो च निवासतो चा'ति।*"[65] अर्थात् दीर्घ आकार के सुत्तों का निवास होने के कारण ही दीघनिकाय कहा गया। इससे यह स्पष्ट है कि यहाँ निकाय से तात्पर्य 'समूह' या 'निवास' है। दीघनिकाय में 34 लम्बे सुत्तों का संग्रह है, जिन्हें तीन वग्गों में विभाजित किया है; यथा (अ) सीलक्खन्ध वग्ग, (ब) पथिक वग्ग, (स) महावग्ग।[66] इनका विवरण निम्नवत है-

(अ) सीलक्खन्ध वग्ग- इस वग्ग में 13 सुत्त हैं। जो नैतिक मूल्यों न केवल व्याख्या करता हैं अपितु नैतिकता के विभिन्न सोपानों की चर्चा भी करता है। सीलक्खन्ध वग्ग के सुत्तों की यह विशेषता है कि वे शील, समाधि और प्रज्ञा सम्बन्धी भगवान् के उपदेशों का विवरण देते हैं और उनमें बुद्धकालीन समाज के सामाजिक और धार्मिक जीवन का सम्पूर्ण चित्र मिलता है।[67] इसी कारण ही इसका नाम 'सीलक्खन्ध वग्ग' है। इस वग्ग का प्रथम सुत्त ब्रह्मजाल सुत्त[68] हैं। इस सुत्त में बासठ प्रकार के मिथ्यादृष्टियों के वर्णन के साथ भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध में विद्यमान आरम्भिक, मध्यम और महा शीलों का वर्णन है। दूसरा सामाञ्ञफल सुत्त[69] है। इसमें भगवान् बुद्ध के समकालिन छः तीर्थंकरों के मतों का वर्णन हैं साथ ही शील, इन्द्रिय संवर, समाधि प्रज्ञा और अभिज्ञाओं

---

[64] तिवारी, महेश, "*सुमङ्गलविलासिनी*", पठम भागो, पृ.सं. 31
[65] वही,
[66] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*दीघनिकायपालि*" (सीलक्खन्धवग्गो), आमुख, पृ. सं. 4
[67] वही, पृ.सं. 13
[68] वही, पृ.सं. 4
[69] वही, पृ.सं. 5

उपदेश है। इसी प्रकार सीलक्खन्ध वग्ग के शेष ग्यारह सुत्तों में भी शील, समाधि और प्रज्ञा का ही भली प्रकार से वर्णन किया है।

(ब) महावग्ग- इस श्रेणी के दस सुत्त बौद्ध धर्म के ऐतिहासिक और जीवनचरितात्मक पक्षों से सम्बन्धित होने के कारण त्रिपिटक में उनका सर्वाधिक महत्त्व हैं। इस वग्ग में दस 'सुत्तों' में से सात 'सुत्तों' के नाम के आगे 'महा' शब्द लगा है। इसलिये इस खण्ड को 'महावग्ग' की संज्ञा प्रदान की गई है। 'महापरिनिब्बान' नामक तीसरा 'सुत्त' बुद्ध के अन्तिम दिनों और समय का अत्यन्त मार्मिक एवं प्रेरणादायक विवरण उपस्थित करता है।[70] सर्वपरिचित महापरिनिब्बानसुत्त में भगवान् के उनके धातु-अवशेषों के विभाजन एवं वितरण का विवरण आया हैं। महापदानसुत्त में पूर्ववर्ती सात सम्यक सम्बुद्धों के जीवनवृत्तों का वर्णन है।[71] महानिदानसुत्त और महासतिपट्ठानसुत्त[72] इन दो सुत्तों का सैद्धान्तिक महत्त्व इसलिए हैं क्योंकि क्रमशः महानिदानसुत्त कार्य-कारण श्रृंखला की व्याख्या करता है और महासतिपट्ठानसुत्त जिसमें दृढ़ चित्त के व्यवहारिक चिन्तन की चार पद्धतियों का वर्णन है।

(क) पथिक वग्ग- इस वग्ग में ग्यारह सुत्तों का संग्रह हैं। जिसमें अधिक वस्त्रहीन (नग्न) योगियों की चर्चा है। पथिक वग्ग का प्रथम सुत्त पथिकसुत्त है। इस सुत्त के नाम के ही आधारपर इस वग्ग का नाम यह रखा गया है।[73] इस वग्ग में आगत अग्गञ्ञ सुत्त में वर्णव्यवस्था के खण्डन के साथ प्रलय के बाद सृष्टि और फिर मनुष्य जाति के विकास का वर्णन है। बौद्ध साहित्य जगत में सुप्रसिद्ध सिगालोवाद सुत्त भी इसी वग्ग आया हैं। सिगालोवाद सुत्त वह सुत्त है जिसमें गृहस्थों के जीवन सम्बन्धी महत्त्व पूर्ण पहलुओं प्रकाश डाला गया हैं। ससङ्गति परियाय सुत्त और दसुत्तर सुत्त में बौद्ध मन्तओं की सूची दी गयी है।

---

[70] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*दीघनिकायपालि,* (महावग्ग), आमुख, पृ.सं. 4

[71] वही,

[72] वही, पृ.सं. 5-7

[73] वही, (पथिकवग्ग), आमुख, पृ.सं. 4

इस वग्ग में आगत सङ्गति परियाय सुत्त से ज्ञातव्य हैं कि भगवान् बुद्ध के समकालिन तीर्थंकर निगण्ठनाथ ज्ञातृपुत्र का देहान्त पावा में बुद्ध महापरिनिर्वाण पूर्व ही हो गया था।

1.4.2.2 मज्झिम निकाय-

भगवान् बुद्ध द्वारा उपदेशित इन सुत्तों के संग्रह को मज्झिमनिकाय कहने का तात्पर्य यह हैं कि इसमे संग्रहित सुत्त मध्यम आकार वाले है। इसमें 152 सुत्त संग्रहित हैं।[74] जिन्हें तीन अध्यायों विभक्त किया गया हैं। इन अध्यायों को पण्णासक कहा जाता है। मूल-पण्णासक, मज्झिम-पण्णासक और उपरि-पण्णासक इसप्रकार इनके नाम अभिहित है। प्रथम मूल-पण्णासक में 50 सुत्तों का संग्रह है, द्वितीय मज्झिम-पण्णासक में 50 सुत्तों का संग्रह है और शेष सुत्त अन्तिम अर्थात् तृतीय पण्णासक जिसे उपरि-पण्णासक कहा गया हैं में 52 सुत्तों का संग्रह किया गया है। इसका क्रमशः प्रत्येक पण्णासक पाँच वग्गों मे विभक्त हैं, जिसके प्रत्येक वग्ग में दस सुत्त संग्रहित हैं। अपवाद स्वरूप तृतीय पण्णासक के चतुर्थ वग्ग में 12 सुत्तों का संग्रह है। इनमें अन्तर्निहित वग्गों के नाम अनेक प्रकार से हैं। किसी किसी वग्ग का नाम सुत्त के नामपर हैं उदारणार्थ मूलपरियायवग्ग, किसी किसी वग्ग का वर्णित विषय के अनुरूप है उदाहरणार्थ सलायतनवग्ग, किसी किसी वग्ग का अधिकतर सम्बोधित व्यक्तियों के श्रेणी नुसार है उदाहरणार्थ जिसमें परिव्राजक सम्बोधित किये गये है उस वग्ग का नाम परिब्बाजकवग्ग, राजा और राजकुमार के सम्बन्धित राजवग्ग, ब्राह्मण और गृहपति के नाम पर क्रमशः ब्राह्मणवग्ग और गहपतिवग्ग अभिहित हैं। भिक्खु धर्मरक्षित का अपने पालि साहित्य का इतिहास इस ग्रन्थ में कहना हैं कि ''मज्झिमनिकाय सुत्तपिटक का सर्वोच्च ग्रन्थ है। यदि सारा त्रिपिटक और बौद्ध-साहित्य नष्ट हो जाय, केवल मज्झिमनिकाय ही बचा रहे, तो भी इसकी

---

[74] तिवारी, महेश, *"सुमङ्गलविलासिनी"*, पठम भागो, पृ.सं. 31

सहायता से हमें भगवान् बुद्ध के महान् व्यक्तित्व, उनके दर्शन और अन्य शिक्षाओं के तत्व को समझने में कठिनाई न होगी।"[75]

1.4.2.3 संयुत्तनिकाय-

इसका नाम 'संयुत्तनिकाय' इसलिए है क्योंकि इसमें छोटे-बड़े सभी प्रकार के सुत्तों का संग्रह हैं। इसकी विशेषतः यह हैं कि बड़े सुत्तों की अपेक्षा छोट सुत्त ही संख्या मे अधिक हैं। "*सत्तसुत्तसहस्स-सत्तसतट्ठासट्ठिसुत्तसंगहो संयुत्तनिकायो।*"[76] अर्थात् 7762 सुत्तों का संग्रह ही संयुत्तानिकाय कहलाता है। विषयवस्तु के अनुसार नियमानुकूल इसका संयोजन किया गया हैं । यह आकार में दीघ और मज्झिम दोनों निकायों से बड़ा हैं। इसका वर्गीकरण बड़े-बड़े पाँच वग्गों में किया गया हैं, यथा- सगाथवग्ग, निदानवग्ग, खन्धवग्ग, सलायतनवग्ग और महावग्ग। इस निकाय में देवतासंयुत्त आदि मिलाकर कुल 56 संयुत्त हैं । इसमें आगत सुत्त प्रायः संक्षिप्त गद्यात्मक रूप के है। बुद्धकालीन भारतीय जनजीवन का इस निकाय में बड़ा सुन्दर चित्रण प्रस्तुत है।

1.4.2.4 अङ्गुत्तरनिकाय-

सुत्तपिटक का चतुर्थ और बड़ा निकाय अङ्गुत्तरनिकाय हैं। भगवान् के ज्ञान और धर्म का जो स्वरूप अन्य तीन निकायों से प्राप्त हैं, उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में अङ्गुत्तरनिकाय का भी ज्ञान हैं

''नवसुत्तसहस्सानि पञ्च सुत्तसतानि च।

सत्तपञ्ञाससुत्तानि होन्ति अङ्गुत्तरागमे।।"[77]

इसके वर्गीकरण को निपात कहा जाता हैं। यह ग्यारह निपातों में विभक्त हैं, यथा- एकक-निपात, दुक-निपात, तिक-निपात, चतुक्क-निपात, पञ्चक-निपात,

---

[75] भिक्खु धर्मरक्षित, "पालि साहित्य का इतिहास", पृ.सं. 52

[76] शर्मा, बीरबल, "*समन्तपासादिका*", पृ.सं. 25

[77] वही,

छक्क-निपात, सत्तक-निपात, अट्ठक-निपात, नवक-निपात, दसक-निपात और एकादसक निपात।

निपात		वग्ग
1.	एकक-निपात	21
2.	दुक-निपात	16
3.	तिक-निपात	16
4.	चतुक्क-निपात	26
5.	पञ्चक-निपात	26
6.	छक्क-निपात	12
7.	सत्तक-निपात	09
8.	अट्ठक-निपात	09
9.	नवक-निपात	09
10.	दसक-निपात	22
11.	एकादसक निपात	03
		.....
		169

इस प्रकार ग्यारह निपात कुल 169 वग्गों मे विभक्त है। परम्परागत विवरणानुसार अङ्गुत्तरनिकाय में कुल 9557 सुत्तों का संग्रह है। अङ्गुत्तरनिकाय के प्रत्येक निपात का वर्गीकरण संख्यात्मक हैं क्योंकि प्रत्येक निपात में ऐसी संख्याओं से सम्बद्ध उपदेशों का संग्रह है, जिसकी समता उक्त निपात की संख्या से है। इस प्रकार एकक निपात में उन उपदेशों का संग्रह हैं जिनका एक संख्या से सम्बन्ध हैं। इस प्रकार बढ़कर यह संख्या ग्यारह तक जाती है जिसे एकादस निपात कहा जाता हैं।

1.4.2.5 खुद्दकनिकाय-

सुत्त-पिटक का पाँचवा मुख्य भाग खुद्दकनिकाय है। खुद्दक-निकाय छोटे-छोटे (खुद्दक) स्वतन्त्र ग्रन्थो का संग्रह (निकाय) है। कुछ ग्रन्थ (जैसे जातक आदि) काफी विस्तृत भी है। खुद्दक-निकाय के विषय और शैली की सबसे बडी विशेषता उसकी विविधरूपता है। क्योकि कुछ ग्रन्थ रचनाएँ पद्यात्मक तो कुछ गद्य-पद्य मिश्रित रचनाएँ है। आचार्य बुद्धघोष अट्ठसालिनी की निदान-कथा में कहते हैं *"पण्णरसंप्पभेदो खुद्दक-निकायो।"* इसी प्रकार 'सद्धम्म-संग्गह' में कहा गया है, *"पण्णरसप्पभेदो'यं निकायो खुद्दको मतो।"*[78] आचार्य बुद्धघोष ने हमें सूचना दी है कि प्रथम सङ्गीतिके अवसर पर मज्झिम-निकाय का संगायन करने वाले (मज्झिम भाणक) भिक्षु उपर्युक्त 15 ग्रन्थो को सुत्त-पिटक के अन्तर्गत खुद्दक-निकाय में सम्मिलित मानते थे।[79]

I. खुद्दकपाठ - खुद्दकपाठ में नौ सुत्तों का संग्रह है। इनका संकलन धम्माध्ययन करने वाले प्रारम्भिक विद्यार्थीयों की शिक्षा एवं भिक्षुओ तथा गृहस्थों के दैनिक पाठ के लिए किया गया है। "इसका जैसा नाम है, वैसे ही इसमें बहुत थोड़े-से सुत्त संकलित है और प्रारम्भ में त्रिशरण, दस शिक्षापद आदि दिये गये हैं, इसलिए इस ग्रन्थ को हम 'बालपोथी' कह सकते हैं।"[80]

इस ग्रन्थ में निम्नवत सुत्तों का संग्रह है- 1. सरणत्तयं, 2. दससिक्खापदं, 3. द्वतिंसकारं, 4. कुमारपञ्ह, 5. महामङ्गलसुत्त, 6. रतनसुत्त, 7. तिरोकुड्डसुत्त, निधिकण्डसुत्त, 9. मेत्तसुत्त। इसमें आगत कुछ सुत्त अन्य ग्रन्थ में भी आये हैं जैसे रतन, महामङ्गल, मेत्तसुत्त सुत्तनिपात में भी हैं। तिरोकुड्डसुत्त भी पेतवत्थु में प्राप्त हैं।

---

[78] सिद्धार्थ, *"सद्धम्मसङ्गहो"*, पृ.सं. 14

[79] तिवारी, महेश, *"सुमङ्गलविलासिनी"*, पठम भागो, पृ.सं. 23

[80] भिक्खु धर्मरक्षित, *"पालि साहित्य का इतिहास"*, पृ. सं. 65

खुद्दक निकाय के निधिकण्ड सुत्त में सर्वोत्तम निधि की चर्चा की गयी है। जिसमें तथागत ने बतलाया कि दान, संयम, इन्द्रिय विजय, संक्षेप में पुण्य कर्मों का करना ही सर्वोत्तम निधि है।अन्य सब निधियाँ नष्ट हो जाने वाली है, किन्तु किया हुआ शुद्ध कर्म कभी नष्ट नहीं होता। 'निधि अनुगामिको' यह वही है जो मनुष्य के पीछे जाने वाली है।

II. **धम्मपद -** धम्मपद बौद्ध परम्परा में अद्वितीय ग्रन्थ माना जाता है। विषयवस्तु की दृष्टि से सम्पूर्ण धम्मपद में नीतिशास्त्र के सर्वोच्च मूल्यों की सुन्दर व्याख्या एवं प्रस्तुतिकरण किया गया है। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता और प्राचीनता के सन्दर्भ में स्वयं 'धर्मपद' की दो गाथाओं में धर्मपदों के अर्थ में 'धर्मपद' शब्द का प्रयोग मिलाता है। पुप्फवग्ग की गाथा में कहाँ गया है कि "कौन इस पृथ्वी तथा देवताओं के सहित यमलोक को जीतेगा? उपदिष्ट धम्मपद को कौन चुनेगा? 'शैक्ष्य' पुरुष इस पृथ्वी तथा देवताओं के सहित यमलोक को जीतेगा। शैक्ष्य पुरुष पुष्प के समान इस सुन्दर रूप से उपदिष्ट धम्मपद को चुनेगा।

भरतसिंह उपाध्याय के अनुसार "बुद्ध उपदेशों का धम्मपद से अच्छा संग्रह पालि-साहित्य में नहीं है। इसकी नैतिक दृष्टि जितनी गम्भीर है, उतनी ही वह प्रसादगुणपूर्ण है।"[81]

धम्मपद में कुल 423 गाथाएँ है जो 26 वग्गो में विभाजित है। "जैसे भगवद्गीता महाभारत में एक छोटी-सी पुस्तिका है, किन्तु है बड़े महत्त्व की , वैसे ही 'धम्मपद' त्रिपिटक का छोटा ग्रन्थ है किन्तु है बड़ा ही मुल्यवान् रत्न।"[82]

III. **उदान -** भगवान बुद्ध के मुख से समय समय पर निकले हुए प्रीति-वचनों का एक संग्रह है। उदान शब्द की व्युत्पत्ति उदानेति नामक क्रियापद से

---

[81] उपाध्याय, भरतसिंह, *"पालि साहित्य का इतिहास"*, पृ.सं. 280

[82] भिक्खु धर्मरक्षित, *"पालि साहित्य का इतिहास",* पृ.सं.69

हुई है, जिसका अभिप्राय 'उल्लासपूर्ण कथन करता है'[83] होता है। प्रसन्नता, हर्ष, आनन्द, ख़ुशी के क्षणों में सन्तों के श्रीमुख से अनायास ही प्रस्रवित होने वाले उद्‌गारों को उदान के रूप में परिभाषित करते हुए उअदन नामक ग्रन्थ के प्राक्कथन में भिक्खु जगदीश कश्यप का कहते हैं कि भावातिरेक से कभी-कभी सन्तों के मुख से जो प्रीति-वाक्य निकला करते हैं, उन्हें उदान कहते हैं।[84] उदानट्‌ठकथा में धम्मपालाचार्य ने लिखा हैं कि "उदानं'ति पीतिवेग समुट्‌ठापितो उदाहारो।"[85] अर्थात् प्रीति-वेग से समुत्थापित उद्‌गार ही उदान हैं। उदान 8 वग्गो विभाजित हुआ है जिसके प्रत्येक वग्ग में 10-10 सुत्त संग्रहित है। इसमें 95 उदान गाथाएँ आयी हुई हैं।

IV. **इतिवुत्तक** - खुद्‌दकनिकाय का चौथा ग्रन्थ 'इतिवुत्तक' है। ''वुत्त हेतं भगवता'ति आदिनयपवत्ता दसुत्तर सतं सुत्तन्ता इति वुत्तकं' ति वेदितब्बं"[86] अर्थात् इसके प्रत्येक सुत्त का आरम्भ "वुत्त हेतं भगवता"[87] से होता है। इसलिए पूरे ग्रन्थ का नाम इतिवुत्तक है। इसमे 4 वग्ग है जिसमे 112 सुत्तों का संकलन है। इतिवुत्तक के शैली के विषय में भिक्षु धर्मरक्षित का कथन है "यह गद्य-पद्य-मय ग्रन्थ बड़ा ही सुन्दर और हृदयग्राही है। इसकी शैली और विषयों का क्रम ऐसा है, जो याद करने वालों और भाणावार क्रम से पाठ करने वालों के लिए बड़ा उपयोगी है।"[88] भरतसिंह उपाध्याय का मत है कि 'इतिवुत्तक' के विषय में यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस गणनात्मक विधान ने उसके विषय-स्वरुप की स्वाभाविकता में कोई बाधा नहीं पहुँचायी है। उसका अलंकार-विहीन

---

[83] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि-हिन्दी कोश"*, पृ.सं. 64

[84] उपाध्याय, भरतसिंह, *"पालि साहित्य का इतिहास"*, पृ.सं. 292

[85] उदानट्‌ठकथा, पृ.सं. 2, Vipassana Research Institute, www.tipitaka.org

[86] प्रसाद, मिथिलेश्वर, *"इतिवुत्तक अट्‌ठकथा"*(परमत्थदीपनी), पृ.सं. 40

[87] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"इतिवुत्तकपालि"*, पृ.सं. 183

[88] भिक्खु धर्मरक्षित, *"इतिवुत्तक"*,(आमुख) पृ. सं. 6

सौन्दर्य हमें बुद्ध-वचनों को उनके उस नैसर्गिक रूप में, जिसमें वे उच्चारित किये गये थे, ठीक प्रकार देखने में सहायता देता है।[89]

V. **सुत्तनिपात -** बुद्धवचनों के काल की दृष्टि से सुत्तनिपात महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। सुत्तनिपात 5 वग्गो में विभक्त है और उसमे 70 सुत्त आए है। वत्थुगाथा और पारायण सुत्त को लेकर इनकी संख्या 72 हो जाती है। "अशोक के भाब्रू शिलालेख में जिन सात बुद्धोपदेशों के नाम है, उनमें से तीन सुत्तनिपात के है।"[90] "सुत्त-निपात भी खुद्दक-निकाय का धम्मपद के समान ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, यद्यपि हिन्दी में वह अभी इतना लोकप्रिय नहीं हुआ जितना धम्मपद। फिर भी मौलिक बौद्ध धर्म और बौद्ध-साहित्य की दृष्टि से इस ग्रन्थ-रत्न का अत्यन्त ऊँचा स्थान है।"[91] भरतसिंह उपाध्याय के अनुसार है कि "सुत्त-निपात की भाषा वैदिक भाषा के बहुत अधिक समीप है।"[92] "भाषा और विचारों में सभी जगह एक निसर्गगत स्वाभाविकता और सरलता मिलती है जो बौद्ध धर्म के विकास के प्रथम स्तर का पर्याप्त परिचय देती है। प्रभावशीलता भी इसीलिए उच्चकोटि की है। बुद्धधर्म के नैतिक रूप का सुन्दर चित्र हमने सुत्त-निपात में मिलाता है।"[93]

VI. **विमानवत्थु-** भरतसिंह उपाध्याय के अनुसार "विमानवत्थु का अर्थ है विमानों या देव-आवासों की कथाएँ।"[94] 'विमान-वत्थु' में 85 देव-आवासों का वर्णन है, जिन्हे 7 वग्गो में विभक्त किया गया है।

VII. **पेतवत्थु -** पेतवत्थु में प्रेतों की कहानियों व्दारा कर्मफल के सिद्धान्त का स्पष्टीकरण कर जनोपयोगी वर्णन प्रस्तुत किया है। 'पेतवत्थु' में 50 प्रेतों

---

[89] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 300
[90] भिक्खु धर्मरक्षित, "*सुत्तनिपात*",(ग्रन्थ-परिचय) पृ. सं. iv
[91] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 302-303
[92] वही,
[93] वही,
[94] वही, पृ.सं. 313

की कहानियाँ है, जिन्हें 4 भागों में विभक्त किया गया है, यथा- 1.पेतवत्थु, 2.उरग पेतवत्थु, 3.उब्बरी पेतवत्थु और 4.धातु-विवण्ण पेतवत्थु।[95] 'पेतवत्थु' में प्रेतों की कहानियों व्दारा यह दिखाया गया है कि किस-किस दुष्कर्म के कारण परलोक में क्या-क्या दुःख भोगने पडते हैं।

VIII. **थेरगाथा -** थेरगाथा में अर्हत् भिक्खुओं के स्वकथन है। थेरगाथा में जिन अर्हत भिक्खु- भिक्खुणियों के स्वकथन आए हैं, वे सभी भिक्खु भगवान् बुद्ध के समकालीन है। उन्होंने बुद्ध के पास शिक्षा प्राप्त की है और अपने जीवन के लक्ष्य को पूरा किया है। एक तरह से थेरगाथा भगवान् बुद्ध के आर्य मार्ग पर चलने वाले भिक्खुओं के स्वाभाविक उदान या सहजोद्गार है। इनमें में संग्रहित अर्हत् भिक्खुओं के उदानों का यदि गम्भीरता से अध्ययन किया जाए, तो तत्कालीन समाज के कई महत्त्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान हो जाता है । थेरगाथा में बौद्ध भिक्षुओं के जीवन संस्मरण है। थेरगाथा में 264 भिक्षुओं के उदगार है। यह ग्रन्थ 21 निपातों (वग्गों) में विभक्त है जिसमे 1279 गाथाएँ है।[96] थेरगाथाओं से ज्ञात होता है कि भिक्खुओं का पूर्व-जीवन किस प्रकार का था और भिक्खु बनने के पश्चात् का जीवन कैसा हो गया था। अर्थात् बुद्ध के दर्शन और धम्म को अपनाने के बाद उनके जीवन में जो बदलाव आया, उसका बहुत ही सुदर वर्णन उन्होंने इन गाथाओं में किया है। डॉ. विमलकीर्ति ने अपनी थेरगाथा के प्राक्कथन में कहा है "पालि-त्रिपिटक साहित्य में थेरीगाथा और थेरगाथाओं का अपना अलग ही महत्त्व है। ये दोनों पालि ग्रन्थ गाथाओं में है, अर्थात काव्यशैली में है और इन ग्रंथों की गाथाएं ताल और सुर पर गायी जा सकती है, उन गाथाओं में गजब की लयबद्धता है। इसलिए थेरगाथा और थेरीगाथा का काव्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र की दृष्टि से भी

[95] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 314-315
[96] वही, पृ.सं. 316

बहुत महत्त्व है। लेकिन थेरगाथा और थेरीगाथा का इस दृष्टि से भी महत्त्व है कि इनमें अर्हत भिक्खु और अहंत भिक्खुणियों के जीवनानुभव और सफल जीवन की उपलब्धियां भी गाथा शैली में शब्दबद्ध है। एक तरह से थेरगाथा और थेरीगाथाए भिक्खुओं और भिक्खुणियों के स्व-कथन है। इसलिए इन ग्रंथों को पालि-त्रिपिटक साहित्य में महत्त्व पूर्ण स्थान प्राप्त है।"[97]

IX. **थेरीगाथा-** थेरीगाथा में अर्हत् भिक्खुणियों के स्वकथन है। थेरीगाथा में जिन अर्हत् भिक्खुणियों के स्वकथन आए हैं, वे सभी भिक्खुणियाँ भगवान् बुद्ध के समकालीन है। थेरीगाथा बौद्ध भिक्खुणिओं के जीवन संस्मरण है। इसमें 73 भिक्खुणिओं के उदगार है। थेरीगाथा में 522 गाथाएँ है जो 16 निपातों में विभक्त है। थेरीगाथाओं से ज्ञात होता है कि बुद्धकालीन भिक्खुणिओं का पूर्व-जीवन किस प्रकार का था और भिक्खुणी बनने के पश्चात् का जीवन कैसा हो गया था। अर्थात् बुद्ध के दर्शन और धम्म को अपनाने के बाद उनके जीवन में जो बदलाव आया, उसका बहुत ही सुदर वर्णन उन्होंने इन गाथाओं में किया है। अपने गाथाओं में भिक्खुणियाँ स्वकथन करती है कि उन का स्त्री भाव उनकी साधना में बाधक नहीं हो सकता। *"इत्थिभावो नो किं कयिरा, चित्तम्हि सुसमाहितो। ञाणम्हि विज्जमानम्हि, सम्मा धम्मं विपस्सतो ।।"* [98]

X. **जातक-** जातक खुद्दक निकाय का दसवाँ ग्रन्थ है। बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व भगवान् बुद्ध बोधिसत्व थे। पालि में 'बोधिसत्त'[99] कहा जाता है। जिसका अर्थ वह सत्व जो बुद्धत्व प्राप्ति के लिए पारमिताए पूर्ण करता है। 'जातक' शब्द की व्युत्पत्ति पालि के 'जाति' शब्द से प्रतीत होती है।

---

[97] विमलकीर्ति, *"थेरगाथा"*, (प्राक्कथन), पृ.सं. 5

[98] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"थेरीगाथापालि"*, पृ.सं. 247

[99] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि-हिन्दी कोश"*, पृ.सं.237

'जाति'[100] अर्थात् जन्म हैं। "इसमें भगवान् बुद्ध की पूर्व जन्म की कथाएँ हैं, जब कि उन्होंने बोधिसत्व के रूप में बुद्धत्व की अभीप्सा से दान, शील, मैत्री आदि दस पारमिताओं का अभ्यास किया था। ये कथाएँ मूलतः पद्य है। चुल्लनिद्देस के अनुसार इन कथाओं की संख्या पाँच सौ है। आचार्य बुद्धघोष तथा उनके परवर्ती आचार्यों कस सम्मुख पाँच सौ पचास जातक विद्यमान थे। चीनी यात्री फाह्यान ने इनके पाँच सौ होने की चर्चा की है। पर सम्प्रति जो संस्करण उपलब्ध है, उनमें जातकों की संख्या पाँच सौ पायी जाती है।"[101] पण्डित मोहनलाल महतो ने अपने ग्रन्थ 'जातक-कालीन भारतीय संस्कृति' की भूमिका में प्रतिपादित किया है कि "जातकों में जो कथाएँ है, वे मानव की कथाएँ है। तत्कालीन मानव-समाज और मानव-स्वभाव का जैसा चित्रण जातकों में हम पाते है, वैसा अन्यत्र कम मिलता है।"[102] पालि तथा परवर्ती बौद्ध साहित्य में भी जातक को महत्त्व पूर्ण स्थान प्राप्त है। "बौद्ध संस्कृत-ग्रन्थ 'जातकमाला' में, जो 'बोधिसत्वावदानमाला' के नाम से भी प्रसिद्ध है और आर्यशूर की रचना बतायी जाती है, 34 कथाएँ मिलती है, जिनमें 28 जातक से ली गयी हैं।"[103] आर्य महासांघिकों के शाखाभूत लोकोत्तरवादियों कर प्रसिद्ध ग्रन्थ 'महावस्तु' में जो 200 ई.पूर्व से 400 ई. तक के बीच के काल में लिखी गयी, करीब 80 जातक कथाएँ मिलती है। इनमें कुछ पालि जातक से समान हैं और कुछ ऐसी भी जो पालि जातक में नहीं पायी जाती। 'राष्ट्रपाल-परिपृच्छा' नामक सुविति महायान-सूत्र में भी 50 जातक

---

[100] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*पालि-हिन्दी कोश*", पृ.सं.129

[101] तिवारी, महेश, "*निदानकथा*"(जातकट्ठकथामागता), भूमिका, पृ.सं. 21

[102] महतो, मोहनलाल, "*जातक-कालीन भारतीय संस्कृति*", (भूमिका), पृ.सं. 2

[103] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 350-351

कथाओं का उपदेश स्वयं बुद्ध ने दिया है।"[104] इस प्रकार जातक साहित्य का महत्त्व बतलाया गया है।

XI. **निद्देस -** निद्देस के दो भाग है महानिद्देस और चूलनिद्देस। कोमल चन्द्र जैन के अनुसार यह कण्ठस्थ रखने के समय की व्याख्या है। महानिद्देश में, सुत्तनिपात के अट्ठकवग्ग (जिसे सोण ने बुद्ध को जैतवन मे स्वर-सहित सुनाया था) की व्याख्या है। महानिद्देश में बहुत से देशों तथा बन्दरगाहों का उल्लेख है, जिनके साथ भारत का वाणिज्य सम्बन्ध था।[105] 'महानिद्देश' में हमें उन स्थानों, देशों और बन्दरगाहों की सूची मिलती है, जिनके साथ भारत का व्यापार पाँचवी-छठीं शताब्दी ईसवी पूर्व होता था। समुद्र, नदी और स्थल के कौन-कौन से मार्ग थे, इसका भी पूरा विवरण हमें यहाँ गुम्ब, तक्कोल, तक्कसिला, सुवण्णभूमि, तम्बपण्णि, सुप्पार (सुप्पारक-सोपारा) भरूकच्छ, सुरट्ठ और अलसन्द (अलैक्जंडरिया-सिकन्दरिया) आदि अनेक स्थानों और बन्दरगाहों के विवरण मिल जाते है।[106]

XII. **पटिसम्भिदामग्ग -** पटिसम्भिदामग्ग खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत बारह वा ग्रन्थ है। जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है, कि ''इस ग्रन्थ का विषय अर्हत् के प्रतिसंवत सम्बन्धी ज्ञान का विवेचन है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में तीन मुख्य भाग हैं। जिनमें से प्रत्येक में 10 परिच्छेद हैं। इस ग्रन्थ का सम्बन्ध शैली और विषय दोनों की दृष्टि से अभिधम्म पिटक से अधिक है।"[107] पटिसम्भिदा का अर्थ है प्रभेद। यह चार प्रकार का है- अत्थपटिसम्भिदा, धम्मपटिसम्भिदा, निरुत्तिपटिसम्भिदा और पटिभानपटिसम्भिदा।"[108]

---

[104] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 351-352
[105] सांकृत्यायन, राहुल, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 145
[106] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं.378
[107] वही, पृ.सं. 379
[108] जैन, कोमलचन्द्र, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 41

XIII. **अपदान -** अपदान में बौद्ध भिक्षुओं एवं भिक्षुणीयों के पुर्वजन्मों के कार्यों का वर्णन है। "अपदान (अवदान) चरित्र को कहते है। अपदान को दो भागों में से एक का नाम थेरापदान है, दूसरे का थेरी-अपदान। इसे थेरगाथा, थेरीगाथा का पूरा ग्रन्थ कह सकते है, क्योंकि इसमें उन्हीं थेर-थेरियों के चरित है।"[109] कोमलचन्द्र जैन के अनुसार "अपदान का अर्थ है- जीवनवृत्त। थेर अपदान में 547 भिक्षुओ तथा थेरी अपदान में 40 भिक्षुणीयों के पुर्वजन्म के महान कार्यों का वर्णन है। इनमें बुद्ध, प्रत्येक बुद्ध, प्रमुख शिष्यों एवं अनेक अर्हन्तों का जीवनवृत्त है, अतः इस अपदान कहा जाता है।"[110] अपदान का जातक से सम्बन्ध है। जातक में जबकि बोधिसत्व के अवदान, उनके महान् कार्य, लक्षणीय कार्य या उस सम्बन्धी कथाएँ वर्णित हैं, जो अपदान में बुद्ध के शिष्य-शिष्याओं, स्थविर और स्थविरियों के महान् कार्यों का वर्णन है। इस दृष्टि से आर्यशूर-कृत 'जातकमाला' का जो दूसरा नाम 'बोधिसत्वावदान माला' है, वह बड़ा लक्षणीय है, अर्थात् बोधिसत्व के अवदानों की माला। जातक बोधिसत्व के अवदान ही हैं। जातक और अपदान दोनों की ही कहानियों मे कर्म-फल की अमोघता दिखायी गयी है।[111]

XIV. **बुद्धवंस -** बुद्धवंस 28 परिच्छेदों का एक पद्यात्मक ग्रन्थ है, इसमें दीङ्पकर से लेकर शाक्यमुनि गौतम बुद्ध तक 24 बुद्धों का वर्णन है।"[112] कोमलचन्द्र जैन का मानना है की "गौतम बुद्ध को छोड़ कर शेष बुद्धों की जीवनियों का वरन पौराणिक ढंग से किया गया है।"[113] महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने बुद्धवंस के सम्बन्ध में प्रतिपादन है कि "एक बौद्ध

---

[109] सांकृत्यायन, राहुल, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 146
[110] जैन, कोमलचन्द्र, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 42
[111] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं 382
[112] सांकृत्यायन, राहुल, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ. सं. 146
[113] जैन, कोमलचन्द्र, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 42

परम्परा इसे स्पष्ट रूप से बुद्ध वचन नहीं मानती।"[114] बुद्धवंस के सम्बन्ध में भरतसिंह उपाध्याय ने बुद्धवंस की अट्ठकथा मधुरत्थविलासिनी का सन्दर्भ देकर कहा ही कि "पच्चीसवें बुद्ध-गौतम बुद्ध- के सम्बन्ध में इस ग्रन्थ में 25 गाथाएँ है, जिसका उच्चारण स्वयं भगवान् बुद्ध न्र बोधिप्राप्ति के बाद कपिलवस्तु में आने पेर किया था।"[115]

XV. **चरियापिटक** – यह खुद्दक निकाय का पन्द्रहवाँ ग्रंर्थ है। यह ग्रन्थ तीन वर्गों में विभक्त है- अकित्ति वग्ग, हत्थि वग्ग तथा युधञ्जवग्ग। इसमें क्रमशः बोधिसत्व में 35 चर्याओं का वर्णन है। कोमलचन्द्र जैन ने चरियापिटक के विषय में कहाँ है कि "यद्यपि बुद्ध-शासन में 10 पारमिताओं का उल्लेख मिलता है जिन्हें बोधि के लिए प्रयासरत बोधिसत्व प्राप्त करता है, किन्तु चरियापिटक में केवल सात पारमिताओं का ही उल्लेख मिलता है। चरियापिटक में उपलब्ध चरियाओं में से महागोविन्दचरिया को छोड़कर शेष सभी जातक में भी उपलब्ध है।"[116] महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "यह भी ग्रन्थ 'बुद्धवंस' की ही भांति का और सर्व-प्रमाणित नहीं है। यह छह परिच्छेदों में हैं, जिनमें 25 जीवनचर्याओं का उल्लेख है।"[117] भरतसिंह उपाध्याय के अनुसार सम्पूर्ण ग्रन्थ सात परिच्छेदों में हैं, जिनमें सात पारमिताओं के आधार पर कुल मिलकर 35 जीवनचर्याओं का वर्णन है। राहुल सांकृत्यायन की मान्यतानुसार "इसके प्रत्येक चर्या का वर्णन जातक की भाँति है और यह पद्यरूप में प्रस्तुत है।"[118]

---

[114] सांकृत्यायन, राहुल, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ. सं. 146
[115] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 382-383
[116] जैन, कोमलचन्द्र, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 42
[117] सांकृत्यायन, राहुल, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ. सं. 147
[118] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 384

1.4.3 अभिधम्मपिटक

तृतीय पिटक अभिधम्मपिटक है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। 'अभिधम्म' शब्द दो पदो से समन्वित है। यहाँ 'अभि' उपसर्ग है, जो विशेष का द्योतन करता है। 'धम्म' शब्द बहुवार्थक है- सदाचार, नियम, देसना इत्यादि अर्थों मे देखा जा सकता है।[119] यहाँ जिस विशेष अर्थ का द्योतन कराया गया है वह चार परमार्थ धर्म है- चित्त, चेतसिक, रूप और निर्वाण।

आचार्य बुद्धघोष ने धर्मातिरेक, धर्मविशेष अर्थ में अभिधम्म का प्रयोग माना है *"धम्मातिरेक-धम्मविसेसट्ठेन अभिधम्मो।"*[120] उन्होंने इसके लिए तीन विशेषण पदों का प्रयोग किया है- परमत्थदेसना, यथाधम्मसासन तथा नामरूपपरिच्छेदकथा।[121] इसे अधिपञ्ञासिक्खा[122] भी कहा गया है। अभिधम्मपिटक में सभी देसनायें चित्त, चेतसिक, रूप तथा निर्वाण इन चार परमार्थ धर्मों के निरूपण तथा प्रकाशन के लिए दी गयी है, इसलिए इसे परमत्थदेसना कहा गया है। अभिधम्म में आगत विषय धर्म के स्वरूप है, उसी का यथार्थ रूप से यहाँ कथन किया गया है, इसलिए इसे यथा 'धम्मसासन' रूपी विशेषण से अभिहित किया गया है। नामरूप परिच्छेद कहने का मुख्य आभिप्राय यह है कि इसमे नाम अर्थात् चित्त और चेतसिक तथा रूप का सुन्दर विन्यास है। अभिधम्म को परमत्थदेसना कहने का मुख्य अभिप्राय यह है कि इसमे भगवान् बुद्ध के उन उपदेशों का संकलन है, जो सीधे परमार्थ धर्मों को प्रकाशित करते हैं ।

---

[119] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि-हिन्दी कोश"*, पृ.सं.158
[120] बापट, पी. वी., *"अट्ठसालिनी"*,पृ. सं. 2
[121] शर्मा, बीरबल, *"समन्तपासादिका"*, पृ.सं. 21
[122] वही,

"धम्मसङ्गणि, विभङ्गो, धातुकथा, पुग्गलपञ्ञाति, कथावत्थु, यमकं, पट्ठानं ति इदं अभिधम्मपिटकं नाम।"[123] अर्थात् यथा- धम्मसंङ्गणि, विभंग, धातुकथा, पुग्गलपञ्ञाति, कथावत्थु, यमक और पट्ठान अभिधम्मपिटक में हैं ।

I. **धम्मसङ्गणि**

धम्मसङ्गणि अभिधम्मपिटक की प्रथम पुस्तक है। यह पुस्तक विषय प्रतिपादन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व पूर्ण हैं। जिन विषयों का प्रतिपादन इस ग्रन्थ मे किया गया है उन्ही विषयों का विश्लेषण विभिन्न पर्यायोंसे अभिधम्मपिटक के अन्थ ग्रन्थों मे हुआ हैं। ऐसा प्रतीत होता हैं कि विषय प्रतिपादन की दृष्टि से धम्मसङ्गणि अक्षबिन्दु हैं तथा अन्य ग्रन्थ उसी के चतुर्दिक भ्रमण करते हैं।

धम्मसङ्गणि के विषय क्या है? इसके नाम से ही प्रकट होता हैं कि यहाँ धम्म का सङ्गणना है। धम्म शब्द से यहाँ अभिधम्म के चार परमार्थ चित्त, चेतसिक, रूप तथा निर्वाण विहित है। सङ्गणना विस्तृतपूर्वक विन्यास को कहते है। फलतः धम्मसङ्गणि एक ऐसी पुस्तक का नाम है जिसमे अभिधम्म के चार परमार्थों का कथन, विश्लेषण तथा प्रश्नोत्तर द्वारा उनके स्वरूप का प्रकाशन किया गया है।

'तत्थ धम्मसङ्गणीपकरणे चतस्सो विभत्तियो-चित्तविभत्ति, रूपविभत्ति, निक्खेपरासि अत्थुद्धारोति'[124] यह ग्रन्थ चार अध्यायों में यथा-चित्तुप्पादकण्ड, रूपकण्ड, निक्खेपकण्ड, अत्थुद्धारकण्ड।

---

[123] शर्मा, बीरबल, *"समन्तपासादिका"*, पृ. सं. 18

[124] बापट, पी. वी., *"अट्ठसालिनी"*, पृ.सं. 6

II. **विभङ्ग**

विभङ्गप्पकरण में आये सभी धर्म विभाग करके दिखलाये है। धम्मसङ्गणि के बृहत् विश्लेषण को विभङ्ग मे वर्गबद्ध किया गया हैं; अतः यह उसका पूरक ग्रन्थ माना जाता हैं।

उपेतो बुद्धधम्मेहि, अट्ठाराहि नायको।
अट्ठारसन्नं खन्धादि- विभङ्गानं वसेन यं।।
विभङ्गं देसयी सत्था, तस्स संवण्णनाक्कमो।
इदानि यस्मा सम्पत्तो, तस्मा तस्सत्थवण्णनं।।[125]

धर्मों का विश्लेषण मात्र कर देना धम्मसङ्गणि का प्रधान विषय है किन्तु उनका स्कन्ध, आयतन एवं धातु के रूप में संश्लिष्ट वर्गीकरण करना ही विभङ्गप्पकरण का विषय है। इस ग्रन्थ में पाँच स्कन्ध, बारह आयतन, अठराह धातु, चार आर्य सत्य, बाइस इन्द्रिय, प्रतीत्य समुत्पाद, चार स्मृति प्रस्थान, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद, सात बोज्झंग, आर्य अष्टांगिक मार्ग, चार ध्यान, चार अप्रमाण्य, पाँच शिक्षापद, चार प्रतिसम्भिदा, अनेक ज्ञान, अनेक मतान्तर आदि बड़ी सुन्दरता के साथ विश्लेषण है।[126] इसके प्रत्येक विभङ्ग का नाम उसके विषयवस्तु के स्वरूप् को सूचीत करता है। प्रायः प्रत्येक विभङ्ग तीन अङ्गो में विभक्त है-1. सुतन्त भाजनिय, 2. अभिधम्म भाजनिय, 3. पञ्ह-पुच्छक।[127]

III. **धातुकथा**

अट्ठारसहि भेदेहि विभङ्ग मारभञ्जनो।
देसयित्वा महावीरो, यं तस्सेव अनन्तरं।।
अदेसयि धातुकथं, धातुभेदप्पकासिनो।

---

[125] मुखर्जी, एस्., *"अभिधम्मपिटके विभङ्गपकरणपालिया सम्मोहविनोदनी नाम अट्ठकथा"*, पृ.सं. 1
[126] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"विभङ्गपालि"*, भूमिका, X-XI
[127] वही,

तस्सत्थं दीपयिस्सामि, तं सुणाथ समाहिता।।[128]

विभङ्गप्पकरण मे आगत विषयवस्तु में से स्कन्ध, आयतन एवं धातु का ही विश्लेषण करना धातुकथा का प्रतिपाद्य है। यह अभिधम्म पिटक का तीसरा ग्रन्थ है। भिक्खु जगदीस कस्सप का यह मत है कि धातुकथा में न केवल धातुओं का अपितु स्कन्ध, आयतन एवं धातु इसप्रकार विषयों विश्लेषण किया गया है इसलिए इसका नाम 'स्कन्ध-आयतन-धातु कथा' होना चाहिए था। उनकी मान्यता यह है कि ''इस ग्रन्थ में इन तीनो का सम्बन्ध धर्मों के साथ किस प्रकार से है, इसे सम्यक् रूप से प्रदर्शित किया गया है।"[129]

विषय प्रतिपादन की दृष्टि से इनमें स्कन्ध, आयतन एवं धातुओं के अतिरिक्त सत्य, इन्द्रिय, प्रतीत्यसमुत्पाद, स्मृति प्रस्थान, सम्यक् प्रधान, चार ऋद्धिपाद, ध्यान, अप्रामाण्य (=ब्रह्मविहार), पाँच इन्द्रिय, पाँच बल, सात बोज्झङ्ग और आर्य अष्टांगिक मार्ग का विवेचन है।

IV. पुग्गल पञ्ञति

पुग्गलपञ्ञति अभिधम्म पिटक का चतुर्थ ग्रन्थ हैं। पुग्गल शब्द का अर्थ यहाँ पुरुष मानव, मनुज, मनुष्य आदि है मनुष्य नाम रूप का संघात है। नाम चित्त चेतसिक को कहते हैं तथा रुप से रुप -स्कन्ध अभिप्रेत है। प्रज्ञप्ति का अर्थ विवरण या व्याख्या हैं। अट्ठसालिनी के अनुसार तर्क वितर्क-तथा संकल्प के द्वारा विभिन्न प्रकार के ज्ञान को प्रज्ञप्ति कहा जाता है।[130] पुग्गलपञ्ञति की अट्ठकथा में इसका अर्थ उपदेश देना, स्पष्ट करना, व्याख्या करना बतलाया है। "पुग्गलपञ्ञति का अर्थ है विभिन्न- प्रकार के व्यक्तियों के उपाधि सम्बन्धि ज्ञान या उनकी पहचान। [131]"चित्त की दृष्टि से मनुष्य कैसा है इसका यह विश्लेषण है धम्मङ्गणि मैं जिन चौसठ प्रकार के चित्त, चैतसिक का कथन है उन के

---

[128] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पञ्चप्पकरण अट्ठकथा*", (पठम भागो), पृ.सं. 3

[129] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*धातुकथापालि*", भूमिका, X

[130] बापट, पी. वी., "*अट्ठसालिनी*", पृ.सं. 44

[131] शुक्ल, हरीशङ्कर, "*अभिधर्म बिन्दु*", पृ.सं. 131

माध्यम से मनुष्य में क्या परिवर्तन हो सकता है इस तथ्य का निर्देश करते हुए यहाँ तीन सौ उन्नतीस प्रकार के मनुष्यों का वर्णन देखा जा सकता है। ये तीन सौ उन्नतीस प्रकार के मनुष्य मनोदशा की दष्टि से एक दुसरे से भिन्न है। ऐसी भिन्नता चित्त तथा चैतसिक की पृष्ठभूमि में दर्शायी गयी है। इस प्रकार चित्त चैतसिक का व्यवहारिक रूप क्या हो सकता है, इसका विवरण यह देखा जा सकता है। इसलिए उसे अभिधम्म का प्रायोगिक रुप कहा जा सकता है। ग्रन्थ में छः मातिकाओं की स्थापना है। 1. खन्धानं खन्धपञ्ञति, 2. आयतनानं आयतनपञ्ञति, 3. धातूनं धातूपञ्ञति,4. सच्चानं सच्चपञ्ञति, 5. इन्द्रियानं इन्द्रियपञ्ञति एवं6 . पुग्गलानं पुग्गलपञ्ञति।[132] प्रथम पाँच मातिकाओं का यहाँ निर्देश मात्र है। छठी मातिका की ही विस्तृत व्याख्या ग्रन्थ मे प्रस्तुत की गयी है। ग्रन्थ दस परिच्छेदो में विभक्त है। इनमे व्यक्तियो का नाना प्रकार से वर्गीकरण किया गया है। प्रथम मे एक एक-पुरुषो का निर्देश है, द्वितीय में दो दो-प्रकार के, इसप्रकार क्रमशः दसवें में दस -दस प्रकार के व्यक्तियो का उल्लेख हैं। इन परिच्छेदो में व्यक्तियों के नैतिक आचरण, मानसिक अवधारणा तथा सांसारिक एवं आध्यात्मिक जीवन से सम्बद्ध कुशल एवं अकुशल हेतुओं पर प्रकाश डाला गया है। यदि सम्यक् रुप से देखा जाय तो चित्त का ही विश्लेषण कहा जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है, कि चित्त इन विविध रुपों में अभिव्यक्त होकर मनुष्यों के स्वभाव में परिवर्तन लाता है। मनुष्यों की विविधता स्पष्टतः शारीरिक नहीं मानसिक है। शरीर के वैविध्य का उतना महत्त्व नहीं है, जितना मन की विविधता का। इसी दृष्टि से मन किन किन-अवस्थाओं में परिवर्तित होकर क्या-क्यारुप ले सकता है - इसका दर्शन यहाँ किया जा सकता है।

[132] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पुग्गलपञ्ञत्तिपालि"*, पृ.सं. 3

V. कथावत्थु

अभिधम्मपिटक का यह ग्रन्थ बौद्ध धर्म के इतिहास जानने में नितान्त महत्त्व पूर्ण है । कथावत्थु शब्द दो पदो से समन्वित हैं कथा वत्थु+। कथा का अर्थ विवाद तथा वत्थु का अर्थ है विषय ।[133]

"महाकस्सपत्थेरो च यसत्थेरो च कारयुं।
यथा ते धम्मसङ्गीति,तिस्सत्थेरो पि तं तथा ।।
कथावत्थुप्पकरणं परवादप्पमद्दनं ।
आभासि तिस्सत्थेरो च, तस्मिं सङ्गीतिमण्डले ।।"[134]

अर्थात् जिस प्रकार महाकस्सपथेर तथा यसथेर ने धम्मसङ्गीति किया उसी प्रकार तिस्सथेर ने किया और इस सङ्गीति कक्ष-में तिस्सथेर ने परवाद का खण्डन करने के लिए कथावत्थु का प्रणयन किया।" सम्राट अशोक के समय तीसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व तक आते आते बौद्ध धर्म 18 भिन्न भिन्न-सम्प्रदायों या निकायों में विभक्त हो चुका था। अशोक ने लगभग 253 या 446 ईस्वी पूर्व मैं जब पाटलिपुत्र की सभा को बुलाया। उसके सभापति स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स ने इन्ही 18 सम्प्रदायों में से एक थेरवाद को मूल बुद्ध धर्म मानकर 17 के दार्शनिक सिद्धांतों का निराकरण किया और अपने साधनों को कथावत्थु प्रकरण नामक ग्रन्थ में रख दिया। जो उसी समय से 'कथावत्थु' अभिधम्मपिटक का एक अंग माना जाने लगा। कथावत्थु में केवल दार्शनिक सिद्धान्तो का खंडन है। [135]" कथावत्थु में विरोधी 17 सम्प्रदायों के सिद्धान्तो को प्रति प्रश्नात्मक ढंग से पहले पूर्व पक्ष के रूप में उपस्थित किया गया है, फिर स्थविरवादी दृष्टिकोण से उनका खण्डन किया गया है । सिद्धान्तो के पूर्वापर सम्बन्ध निर्वाचन किसी निश्चित नियम का पालन नहीं किया गया सिद्धान्तो को मानने वाले सम्प्रदायों

---

[133] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि-हिन्दी कोश"*, पृ.सं. 88
[134] तिवारी, महेश, *"सद्धम्मसंग्गहो"*, पृ.सं. 14
[135] उपाध्याय, भरतसिंह, *"पालि साहित्य का इतिहास"*, पृ.सं.518

क्या तो उसमें नामोल्लेख भी नहीं है, कुल मिलाकर कथावत्थु में विरोधी सम्प्रदायों के 216 सिद्धान्तो का खण्डन है जो 23 अध्यायों में विभक्त किए गए हैं ।

VI. **यमक**

यह अभिधम्मपिटक का छठा ग्रन्थ है ।' यमक'[136] शब्द का अर्थ' युग्म' या' जोड़ा' होता है । यहाँ विवेच्च धर्मों का वर्णन युग्म प्रश्नों के सहारे किया गया है । अर्थात एक साथ प्रश्नों के जोड़े रखकर परमार्थ धर्मों के स्वरुप पर प्रकाश डालने का यत्न है । इस विशेष प्रक्रिया के अनुकरण के कारण इस ग्रन्थ का नाम 'यमक' सार्थक प्रतीत होता है । पुनः भगवान् बुध्द की देशना का एकमात्र उद्देश्य प्राणिमात्र को संसार दुख-से त्राण दिलाना है । वह प्राणिमात्र केवल दो ही धर्म 'नाम' और 'रूप' का पुंजमात्र है । उसके व्यक्तित्व में इनके अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की उपलब्धि नहीं होती है । इसलिए इन्हीं दो धर्मों का निर्देश यहाँ 'यमक' शब्द से अभिप्रेत है । फलतः 'नाम' और 'रूप' का विश्लेषणात्मक विवरण इस ग्रन्थ मे प्रस्तुत है । पुनः व्युत्पत्ति प्रक्रिया-से भी 'यमक' शब्द का अर्थ देखा जा सकता है । 'यम' का अर्थ संसार यथा' क' का अर्थ नष्ट करना होता है - "*यमं कृणोति इति यमकं*"[137] अर्थात् जो प्रकरण संसार अर्थात् भव परम्परा-को विनष्ट करे, वह यमक है । 'यमक' का मुख्य विषय है अभिधम्म में प्रयुक्त शब्दावली की निश्चित व्याख्या करना प्रतिपाद्य है। अतः उसका अभिधम्म दर्शन-के लिए वही महत्त्व और उपयोग है, जो एक निश्चत परिभाषित शब्द कोष का किसी पूर्ण दर्शन प्रणाली के लिए प्रतिपाद्य है। इस प्रकार 'यमक' शब्द अनेक दृष्टियों से युक्त प्रतीत होता है । यह ग्रन्थ दस अध्यायों अर्थात् यमकों मे विभक्त है । यथा -मूलयमक-, खन्धयमक-, आयतन-

---

[136] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*पालि-हिन्दी कोश*", पृ.सं.264

[137] शुक्ल, हरीशङ्कर, "*अभिधर्म बिन्दु*", पृ.सं. 161

यमक, धातुयमक-, सच्चयमक-, संखारयमक-, अनुसययमक-, चित्तयमक-, धम्म-यमक, और इन्द्रिययमक।[138]-

VII. पट्ठान

यह अभिधम्मपिटक का सप्तम ग्रन्थ है ।" पट्ठान शब्द का अर्थ कई दृष्टियों से देखा जा सकता है । यहाँप' ' उपसर्ग से प्रकार एवं 'ठान' शब्द से प्रत्यय अभिप्रेत है । प्रत्यय शब्द कारण आधार यह सम्बन्ध का द्योतक है। इस प्रकार जिसमें नाना प्रकार के प्रत्ययों का संग्रह हो अथवा वर्णन हो उसे पट्ठान कहां जाता है । [139]"पट्ठान शब्द का अर्थ विभाजन करना है । मज्झिम निकाय के अनुसार *आतापी*" *सम्पजानो सतिमा* "अर्थात् प्रज्ञापन करना, प्रस्थापन करना, विवरण करना तथा विभक्त करना ही पट्ठान का अर्थ है ।[140] इस प्रकार जिस प्रकरण में कुशल अकुशल एवं अव्याकृत धर्म 24 प्रत्ययों द्वारा विस्तार कर जानने का यत्न किया गया है उसे पट्ठान कहा जाता है । पट्ठान शब्द गति एवं गमन का भी सूचक है ।[141] वास्तव में यह ग्रन्थ एक नए दृष्टिकोण को लेकर प्रवृत्त होता है यहां पट्ठान का अर्थ सम्बन्ध निरूपण करना है । मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण नाम और रूप के संयोग से होता है पर नाम चेतन है, और रूप जड़ । अतः नाम और रूप के सम्भावित सम्बन्धो का निरूपण इस ग्रन्थ में विभिन्न दृष्टिकोणों से किया गया है । संक्षेप में कहा जा सकता है चार परमार्थ धर्मों के पारस्परिक सम्बन्धो की व्याख्या प्रस्तुत करना ही पट्ठान प्रकरण का मुख्य उद्देश है ।

आकार की दृष्टि से यह एक विशालकाय ग्रन्थ है इसलिए इसे महा प्रकरण के संज्ञा दी गई है । "संपूर्ण ग्रन्थ मुख्यतः चार भागों में विभक्त है । यथा- अनुलोम पट्ठान, पच्चनीय पट्ठान, अनुलोम पच्चनीय पट्ठान,

---

[138] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं.548
[139] त्रिपाठी, रामशङ्कर, "*अभिधम्मत्थसङ्गहो*", दुतियो भागो, पृ.सं. 997
[140] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*मज्झिमनिकायपालि*", (मूलपण्णास), पृ.सं. 77
[141] तिवारी, महेश, "*पट्ठानट्ठकथा* ", पृ.सं. 69

पच्चनीयानुलोम पट्ठान। प्रत्येक पट्ठान में वर्णन की छः छः विधाएँ देखी जाती है । जिन्हें तिकपट्ठान, दुकपट्ठान, तिक दुक पट्ठान, दुक तिक पट्ठान, तिक तिक पट्ठान, दुक दुक पट्ठान ।"[142] इनके नामकरण की पृष्ठभूमि मैं एक प्रक्रिया है कार्य कारण के सम्बन्ध एवं चार परमार्थ धर्मों की व्याख्या धम्मसङ्गणि मैं आगत बाईस तिक मातिका एवं सौ दुक मातिका के सहारे की गई है।

1.5 पालि त्रिपिटक का महत्त्व

पालि त्रिपिटक बुद्धकालीन भारतवर्ष के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्थिति का महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक परिचायक है। पूर्वोक्त बिन्दुओं के आलोक में पालि त्रिपिटक का महत्त्व निम्नवत प्रस्तुत है-

1.5.1 ऐतिहासिक एवं भौगोलिक महत्त्व

पालि त्रिपिटक साहित्य में बुद्धकालीन भारतवर्ष का इतिहास यथातथ्य रूप से दिग्दर्शित है। भगवान् बुद्ध अपने चारिका काल में जिन-जिन स्थानों पर गये, उनका ऐतिहासिक वर्णन पालि त्रिपिटक में प्राप्त होता है। तत्कालीन भारतवर्ष का नाम जम्बुद्वीप था। जम्बुद्वीप की सीमा, विस्तार और आकार का इतिहास इसमें उपलब्ध है।[143] तत्कालीन लोक परम्पराएँ रूढ़ियाँ, उत्सव इत्यादि के इतिहास को जानने के लिए पालि त्रिपिटक उपयुक्त है। भारतीय संस्कृति के इतिहास लेखन में पालि त्रिपिटक साहित्य महत्त्व पूर्ण है। इसमें प्राचीन इतिहास के गौरव के साक्ष्य वृहद् रूप में प्राप्त है। पालि त्रिपिटक के अतिरिक्त परवर्ती पालि साहित्य में वंश साहित्य पालि त्रिपिटक और राजा के वंशावली के इतिहास को व्याख्यायित करता है। बुद्ध वचनों को त्रिपिटक के रूप में अन्तिम प्रारूप सम्राट अशोक के काल में प्राप्त हुआ था। इसी काल में सम्राट अशोक ने

---

[142] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पट्ठानपालि*", भूमिका, पृ.सं. X

[143] उपाध्याय, भरतसिंह, "*बुद्धकालीन भारतीय भूगोल*", पृ.सं. 72-73

भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों पर शिलालेख, स्तम्भलेख-, स्तम्भ और विभिन्न चैत्त्य एवं संघारामों का निर्माण कराया था। यह सभी पुरातात्त्विक प्रमाण है।[144] बुद्धकाल से परवर्ती होने के बावजूद इसका पालि त्रिपिटक और पालि पिटकेत्तर साहित्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। अभिलेख समसामयिक होने के कारण विश्वसनीय प्रमाण है और उनसे हमें सबसे अधिक सहायता मिली है। उनसे हमें राजाओं के नाम और कभी और है हुए प्राप्त भी विवरण आवश्यक अन्य तथा तिथियाँ उनकी कभी- इसमें इतिहास की अत्यन्त महत्त्व पूर्ण घटनाएँ अंकित है। पूर्वोक्त है कि सम्राट अशोक के भाब्रू शिलालेख में कहा है कि ''बुद्ध, धम्म और संघ में मेरी श्रद्धा है। भगवान् बुद्ध ने जो कुछ कहा है वह सब सुभाषित है। सद्धर्म को चिरस्थायी करने के लिए मैं यह अभिलेख लिखता हूँ।''[145] उक्त उद्धरण से भगवान् बुद्ध के प्रति अशोक की श्रद्धा का आलोकन होता है। बुद्धवचन से तात्पर्य पालि त्रिपिटक ही है। इस प्रकार पालि त्रिपिटक साहित्य ऐतिहासिक दृष्टि से अत्याधिक महत्त्व पूर्ण है।

पालि साहित्य की शैली से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध द्वारा बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व तथा पश्चात् अपने चारिका क्रम में जिन विहार पर स्थानों जिन- किया उसका प्रमाणिक उल्लेख प्रारम्भ में ही प्राप्त होता है।

"भगवा अन्तरा च राजगहं अन्तरा च नाळन्दा अद्धान-मग्ग-पटिपन्नो होति।"[146] भगवान् बुद्ध राजगृह और नालन्दा के बीच लम्बे रास्ते पर जाने की सूचना प्राप्त होती है। *"तेन समयेन बुद्धो भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे"*[147] उस समय भगवान् बुद्ध राजगृह के वेलुवन कलन्दक निवाप में विहार कर रहे थे। *"एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति मातुलायं।"*[148] एक

---

[144] मुखर्जी, राधाकुमुद, *"अशोक"*, पृ.सं. 66-67

[145] *"सम्राट अशोक के अभिलेख"*, पृ.सं. 3637

[146] भिक्खु जगदीसकस्सपो, सुत्तपिटके दीघनिकायपालि,(1.सीलक्खन्ध वग्गो) ब्रह्मजाल सुत्त, पृ.सं.

[147] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*, पृ.सं. 239

[148] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"दीघनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 631

समय भगवान् मगध देश के मातुला में साधना हेतु विराजमान थे। *"एकं समयं भगवा चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे।"*[149] एक समय भगवान् चम्पा नगरी स्थित गग्गरा पुष्करिणी के तट पर, विहार कर रहे थे। कूटदन्त सुत्त से खाणुमत ब्राह्मण-ग्राम का परिचय होता है। *"तेन समयेन बुद्धो भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागार सालायं।"*[150] उस समय भगवान् बुद्ध वैशाली के महावन में स्थित कूटागार शाला में विहार कर रहे थे। *"एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते।"*[151] एक समय भगवान् राजगृह के गृधकूट पर्वत पर साधना हेतु विराजमान थे। *"एकं समयं भगवा मल्लेसु विहरति अनुपियं नाम मल्लानं निगमो ।"*[152] एक समय भगवान् मल्ल देश में अनूपिया नामक मल्लों के निगम में साधना हेतु विराजमान थे। *"एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति वेधञ्ञा नाम सक्या तेसं अम्बवने पासादे।"*[153] एक समय भगवान् शाक्यों के प्रदेश वेधञ्ञा नामक शाक्यों के आम्रवन प्रासाद में साधना हेतु विराजमान थे। इस प्रकार विभिन्न स्थानों, नदियों एवं पर्वतों के भौगोलिक साक्ष्य पालि त्रिपिटक में सर्वत्र उपलब्ध है। इसलिए पालि त्रिपिटक साहित्य में आगत ग्रन्थों का भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है। पूर्वोक्त है कि भगवान् ने जिन-जिन स्थानों पर विहार किया वहाँ की भौगोलिक स्थिति का ज्ञान होता है।

1.5.2 सामाजिक एवं धार्मिक महत्त्व -

पालि त्रिपिटक से ध्यातव्य है कि सामाजिक क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी शुरूआत बुद्ध युग में हुई। तत्कालीन समय में भगवान् बुद्ध ने वर्णवाद के एक-एक पक्ष को इस आधार पर खण्डित करना आरम्भ किया कि व्यक्ति को उसके कर्म के आधार पर जानना चाहिये, जन्म और वंश परम्परा के आधार पर

---

[149] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"दीघनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 820
[150] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि",* पृ.सं. 323
[151] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"दीघनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 748
[152] वही, पृ.सं. 581
[153] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"दीघनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 683

नहीं।[154] वर्णवाद और अन्य सामाजिक आडम्बरों की कटु आलोचना करते हुये बुद्ध ने सामाजिक जीवन में भातृत्व और परस्पर सौहार्द के वातावरण को बढ़ाने के लिए जन-जन तक जाकर जनमत संग्रहित किया। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन अपनी कृति महामानव बुद्ध में लिखते है कि ''बुद्ध व्यक्ति से समाज को ऊपर मानते थे, और जहाँ तक व्यक्ति और समाज में से एक को चुनना हो, वहाँ समाज को ही प्रधानता देते थे।'' इसलिए उन्होंने तथागत को 'महान् जनवादी बुद्ध' संज्ञा से अभिहित किया है।[155]

तत्कालीन समाज की भित्ति ऊँच-नीच के भेदभाव वाली जाति व्यवस्था पर खड़ी थी। "चाण्डाल, वेन, निसाद, रथकार और पुक्कुस अत्यन्त हीन जातियों में थी। क्षत्रिय और ब्राह्मण उत्कृष्ट जातियाँ थी। वैश्य, कृषक, गोप आदि अन्य जातियों का वर्णन पालि त्रिपिटक में विभिन्न स्थानों पर आता है। जाति की तरह कर्मों में भी इस प्रकार भेद-भाव थे। सफाई का काम करना तथा पोगना-कूटना हीन कर्म समझे जाते थे। कृषि वाणिज्य, गौ रक्षा जैसे काम उत्कृष्ट माने जाते थे। फिर भी कर्मों के ऊँच-नीच होने के भाव सभी क्षेत्रों में एक जैसे नहीं थे। जो कर्म एक प्रान्त में उचित दृष्टि से देखा जाता था वहीं दूसरी जगह प्रसम्मानित समझा जाता था।"[156]

इसी प्रकार शिल्प के विषय में भी हीन-उत्कृष्ट के भेद-भाव उपस्थित थे। बाँस से चीजें तैयार करना, बरतन बनाना, कपड़ा बुनना, जूता बनाना, बाल बनाना जैसे शिल्प हीन समझे जाते थे। उत्कृष्ट समझे जाने वाले शिल्प थे लिखना-पढ़ना, हिसाब रखना, राज-दरबार में वस्तुओं का मूल्यांकन करना इत्यादि। कर्म की तरह, शिल्प के भी ऊँच-नीच होने के भेद-भाव सभी जगह एक जैसे न थे। व्यक्तियों के नाम में भी हीन और उत्कृष्ट होने की भावना थी। गौत्रों

---

[154] भिक्षु धर्मरक्षित, "*सुत्तनिपात*", पृ.सं. 26

[155] सांकृत्यायन, राहुल, "*महामानव बुद्ध*", पृ.सं. 81-82

[156] सिंह, मदन मोहन, "*बुद्धकालीन समाज और धर्म*", पृ.सं. 11-30

में भी ऊँच-नीच होने की भी भावना थी। यहाँ तक की रोगों में भी सम्मानित और असम्मानित होने की भावना उपस्थित थी।

सामाजिक मान्यताओं के पारम्परिक परिवेश से अलग हटकर एक नये जीवन-दर्शन की रूपरेखा निश्चित करने के अपने प्रयास में बुद्ध को अनेक विरोधों का सामना भी करना पड़ा, जिसका समाधान उन्होंने व्यावहारिक धरातल पर करने का प्रयास किया। पालि त्रिपिटक में सामाजिक जीवन सम्बन्धी बुद्ध की मान्यतायें एक नये रूप में हमारे सामने आती है जिनमें परिवर्तन की नयी धारा और अभिनव चिन्तन के वेग एक अनुपात में दिखायी देते है।

पालि त्रिपिटक में बौद्ध धम्म और संघ के स्वरूप के विवेचन के साथ-साथ भगवान् बुद्ध के समकालीन विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की विस्तृत चर्चा की गई है। तत्कालीन समय में वे बुद्ध के प्रतिस्पर्धी बनकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे। आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने ग्रन्थ बौद्ध-धर्म दर्शन में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों एवं उन मतों के प्रस्थापक आचार्यों को 'बुद्ध के समसामयिक' के रूप में प्रतिपादित किया है।[157] त्रिपिटक साहित्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध के अभ्युदय के पूर्व भारतवर्ष में विविध सांस्कृतिक मान्यताएँ प्रचलित थी। जिनका तत्कालीन भारतीय जनमानस पर गहरा प्रभाव था। भगवान् बुद्ध की धर्म विषयक प्रस्तावनाएँ तत्कालीन मान्यताओं से भिन्न थी। वे धर्म की उन्हीं मान्यताओं को स्वीकार करते थे जिनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में मानवीय कल्याण से जुड़ा हुआ है। तथागत किसी धर्म-मान्यता विशेष के प्रशंसक या आलोचक नहीं थे और न उनमें किन्हीं धार्मिक सिद्धान्तों को लेकर कोई दुराग्रह या कटुभावना नहीं थी। जिस धार्मिक क्रिया को सम्पन्न करने में हिंसाचार, मिथ्याचार या पाखण्ड की अनुभूति होती हो उससे मानवता

[157] आचार्य, नरेन्द्रदेव, *"बौद्ध-धर्म दर्शन"*, पृ.सं. 3

को न नयी दिशा मिल सकती है और न विकास की कोई प्रेरणा हो सकती है, इसके विपरीत इससे हानि और मानवीय चरित्र का हनन ही होता है।

अतः बौद्ध दृष्टि में धम्म की उपादेयता तभी है जब उससे हिंसाचार या अन्य तरह के दोष समाज में नहीं फैले। 'धर्म के आचरण से जब आपसी प्रेम और बन्धुत्व की भावना समाज में फैलती है तो इससे पूरी मानवता का कल्याण होता है और यही बौद्ध धम्म का वास्तविक उद्देश्य है। धम्म में पाखंड का स्थान नहीं होना चाहिये क्योंकि इसी से इसके शाश्वत मूल्यों का क्षय होता है। यहाँ धम्म से तात्पर्य नैतिक आचरण-व्यवहार से है। बुद्ध उपदिष्ट धम्म में धम्म का स्वरूप बहुत स्पष्ट होता है साथ ही उसमें किसी भी प्रकार की जटिलताओं का कोई स्थान नहीं दिखाई पड़ता।'[158]

अपने समकालीन ब्राह्मण, श्रमण, आजीवक, निर्ग्रन्थ आदि सम्प्रदायों में प्रचलित विश्वासों के प्रति बुद्ध की एक नपी तुली दृष्टि है और आलोचना उन्हीं पक्षों को लेकर की गयी है जो सही अर्थों में इसके योग्य थे। जिस यज्ञ में असंख्य पशुओं की बलि होती हो और जहाँ पुरोहितों के मिथ्याचार या पाखण्ड का नग्न नर्तन होता हो यह धार्मिक कर्मकाण्ड का विहित रूप नहीं है। ऐसा इसलिए कि इन कर्मकाण्डों के मूल में ही हिंसा और पर उत्पीड़न का भाव निहित है जो मानव को प्रेम और बन्धुत्व की भावना से हटाकर हिंसक प्रवृत्तियों से भर देने वाला होता है। वैर से वैर का कभी शमन नहीं होता है। अवैर से ही वैर का शमन होता है, यही शाश्वत नियम है।[159] यह बुद्ध के धार्मिक आदर्श का मूलमन्त्र है।

1.5.3 राजनीतिक एवं आर्थिक महत्त्व

पालि त्रिपिटक साहित्य में तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं की पर्याप्त सुचना प्राप्त होती है। "धर्म की तरह तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं ने भी

---

[158] उपाध्याय, जगन्नाथ, "*भगवान् बुद्ध, बौद्ध धर्म और उनका दर्शन*", पृ.सं. 83

[159] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*धम्मपद*", पृ.सं. 2

जनता के भौतिक जीवन के रूपान्तरण ने प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया।"[160] त्रिपिटक साहित्य के साक्ष्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि छठी शताब्दी ई.पू. भारतवर्ष में सोलह महाजनपद थे। वे है; गन्धार, कम्बोज, अस्सक, वत्स, अवन्ती, सूरसेन, चेदी,मल्ल, कुरु, पाञ्चाल, मत्स्य, वज्जि, अङ्ग, कासी, कोसल और मगध।[161] तेविज्ज सुत्त से ज्ञातव्य है कि कोसलराज प्रसेनजित् (पसेनदि) कोसल और काशी दोनों देशों का स्वामी था और इन दोनों देशों की आय का उपभोग करता था। महापदान सुत्त से कुछ प्राचीन नगरियों के उल्लेख है, जो बुद्ध-पूर्व युग में भारत की राजधानी रहीं थी, यथा- बन्धुमती, अरुणावती, अनोमा, खेमवती, सोभवती और वाराणसी।[162]

भगवान् बुद्ध के जीवन काल में जो चार राज्य भारतवर्ष में विद्यमान थे, उनके नाम थे मगध, कोसल, वंस और अवन्ती।[163] उस समय सम्पूर्ण देश चार शक्तिशाली राज्यों, दस छोटे स्वशासित गण-तन्त्रों और बुद्ध के कुछ समय पूर्व से चले आये सोलह महाजनपदों के रूप में विभक्त था। इन गणतन्त्रों और जनपदों में कई उन चार शक्तिशाली जनपदों में विलीन हो चुके थे। छोटे-छोटे गणतन्त्रात्मक राज्य राज्य मिटकर पास के सत्तात्मक राज्यों में सम्मिलित हो गये। अंग और काशी जनपद भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में क्रमशः मगध और कोसल में सम्मिलित हो गये थे। उत्तर पाञ्चाल और कुरु का काफी भाग कोसल राज्य में जा चुका था और इसी प्रकार दक्षिण पाञ्चाल और चेदि जनपद का कुछ भाग वंस राज्य में सम्मिलित था। सूरसेन जनपद अवन्ती के प्रभाव में था। भग्ग जैसा स्वतन्त्र गणतन्त्र वत्स राज्य के प्रभाव में चला गया था और कपिलवस्तु के शाक्य एवं केसपुत्त के कालाम कोसल राज्य के अधीन थे। महापरिनिब्बान सुत्त से ध्यातव्य होता है कि वज्जिसंघ को मगध नरेश

---

[160] झा. डी. एन., "*प्राचीन भारत एक रुपरेखा*", पृ.सं. 48

[161] भिक्षु जगदीश एवं भिक्षु धर्मरक्षित, "*संयुत्त-निकाय*", पहला भाग, भूमिका, पृ.सं. 2-6

[162] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*दीघनिकायपालि*", (महावग्गो), पृ.सं. 5-6

[163] उपाध्याय, भरतसिंह, "बुद्धकालीन भारतीय भूगोल", पृ.सं. 167

अजातशत्रु विलीन किया था। इस प्रकार पालि साहित्य में बुद्धकालीन राज्यों, गणतन्त्रों और जनपदों का विवरण प्राप्त होता है। जिससे की राजनीतिक दृष्टि से पालि त्रिपिटक साहित्य का महत्त्व अधोरेखित होता है।

पालि त्रिपिटक में बुद्धकालीन जनता के आर्थिक स्थिति का दिग्दर्शन होता है। त्रिपिटक में बुद्ध-काल के ग्रामीण जीवन व नगरीय जीवन की झलकियाँ दिखलायी पड़ती है। तत्कालीन भारतवर्ष में कृषि-पशुपालन, व्यापार-उद्योग, विभिन्न व्यवसाय, मुद्रा एवं विनिमय और क्रय-विक्रय इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है। इस समय कृषि सम्बन्धी उत्पादन का प्रभाव वाणिज्य पर किस प्रकार पड़ा इसका ज्ञान होता है। त्रिपिटक में आगत अनेक प्रसंगों और व्याख्या से ज्ञात होता है कि जीवनोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन इस समय विशाल स्तर पर होने लगा। इसलिए विभिन्न व्यवसायों से सम्बद्ध वर्गों के भिन्न-भिन्न संघ बन गये।

जातक-कालीन भारतीय संस्कृति में पण्डित मोहनलाल महतो का कथन है कि "विश् एक ऐसा वर्ग था, जो खेती, पशुपालन, दस्तकारी आदि व्यवसाय करता था। यही वर्ग विश्-समुदाय बन गया, जो आगे चलकर वैश्य कहा जाने लगा।"[164] पालि त्रिपिटक साहित्य में कृषि एवं पशुपालन करते हुए कहीं ब्राह्मणों के भी उल्लेख प्राप्त है। मोतीचन्द्र के अनुसार "पालि साहित्य में भिन्न-भिन्न नगरों से श्रावस्ती की दूरी दी हुई है, जिससे उसका व्यापारिक महत्त्व प्रकट होता है।"[165] त्रिपिटक में व्यापार करने वाले वणिको को श्रेष्ठी कहा गया है। वह विभिन्न ग्राम, निगम एवं जनपदों में जा कर अपना व्यापार करते थे। ये वणिक जल और स्थल मार्ग से सार्थवाह (समूह) बनाकर व्यापार करते थे।

"शिल्पकारी का बुद्धकालीन समाज के जीवन में महत्त्वपूर्ण और आदरणीय स्थान था। एक ओर शिल्पकारी कृषि द्वारा उत्पादित कच्चे माल पर

---

[164] महतो, पण्डित मोहनलाल, "*जातक-कालीन भारतीय संस्कृति*", पृ.सं. 117

[165] मोतीचन्द्र, "सार्थवाह" (प्राचीन भारत की पथ-पद्धति), पृ.सं.18

आधारित थी, तो दूसरी ओर कृषकों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर वह तत्कालीन ग्रामीण जीवन को आत्मभरित बनाने वाली थी।"[166] बुद्धकालीन समाज के आर्थिक जीवन में कृषि, पशुपालन तथा तत्सम्बन्धित व्यापार एवं व्यवसायों की उन्नत स्थिति तत्कालीन भारतवर्ष के समृद्धता की परिचायक है। कृषि के विकास ने शिल्प एवं शिल्पकारी, उद्योग एवं विभिन्न लघुद्योगों प्रोत्साहित किया था।इस प्रकार पालि त्रिपिटक साहित्य से तत्कालीन समाज की आर्थिक व्यवस्था पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है।

[166] उपाध्याय, भरतसिंह, "बुद्धकालीन भारतीय भूगोल", पृ.सं. 461

द्वितीय अध्याय
विनय पिटक में आगत बुद्धकालीन आर्थिक व्यवस्था का अवलोकन

बौद्ध संघ की स्थापना और नियमबद्ध सांघिक जीवन एक नवजागरण का प्रतिक था। भगवान् बुद्ध के आगमन से जिन नये विचारों का उदय हुआ था, उनका संघ के माध्यम से प्रचार-प्रसार तथा व्यावहारिक जीवन में प्रयोग किया। सामान्य-जन के जीवन पर उनके संघ का प्रभूत प्रभाव पड़ गया था। तथागत ने धम्म को जीवनविधा बतलाकर उसे तीन चरणों में व्याख्यायित किया। वे तीन चरण है; शील, समाधि एवं प्रज्ञा। यह एक-दूसरे के परिपूरक है। इनका पालन आनुक्रमिक रूप से किया जाता है। शारीरिक, वाचासिक एवं मानसिक शुचिता के लिए भगवान् का संघ अविरत कार्य करता रहा।

बुद्ध से पूर्व का आध्यात्मिक चिन्तन समाज परक की तुलना में व्यक्ति परक था। शास्ता ने धम्म का मार्ग सभी के लिए खोल दिया। समाज के किसी भी स्तर का व्यक्ति हो, वह संघ का सदस्य बन सकता था। प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति का कोई मापदण्ड नहीं था। इसलिए बौद्ध संघ में बड़े बड़े महाराजा, व्यापारी, धनिक एवं समाज में जो अन्त्यज माने गए निर्धन व्यक्ति भी सम्मिलित थे। तथागत के अनुसार आध्यात्मिक उन्नति और निर्वाण के साक्षात्कार का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है। चाहे वह शुद्र हो या ब्राह्मण, गृहिणी हो या गणिका, डाकू हो या सद्गृहस्थ। धर्म पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं अपितु समस्त समाज का अधिकार है। "उन्होंने वर्णहीन एवं वर्गविहीन समाज के स्थापना के लिए आन्दोलन छेड़ा। जिसका मुख्य मन्तव्य वर्ण एवं जाति व्यवस्था का तथा कर्मकाण्डों का विरोध एवं समाज में एक जाति (मानव जाति) का सर्जन करना

था। इसके सन्दर्भ में संघ की भी उन्होंने स्थापन की।"[167] तथागत द्वारा उपदिष्ट साधना से सम्यक् ज्ञान, जो चित्त को विशोधित करता है तथा जिसे समाज का प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। पूर्वोक्त है कि सद्धर्म को सम्प्रेषित करने के लिए तथागत ने जन भाषा को प्रयुक्त किया। भगवान् बुद्ध का भिक्षु संघ केवल आध्यात्मिक लोगों का संगठन नहीं था, अपितु जन समाज का एक अंग था। नैतिकता जो की समाज-जीवन के उत्तम संचलन के लिए आवश्यक है। संघ लक्ष्य वैयक्तिक साधना के साथ-साथ जन-समाज को उस नैतिक मार्ग पर प्रोत्साहित करना था। उनके संघ का प्रभाव समाज के सभी स्तरों में था। राजा से लेकर समाज के कृषक वर्ग के घरों तक बुद्ध का संघ जाता था। समाज में सर्वप्रथम संगठित धर्म प्रचार का श्रेय भगवान् बुद्ध द्वारा प्रवर्तित "भिक्षु संघ" को ही दिया जा सकता है। सम्बोधि प्राप्ति के पश्चात् किस प्रकार संघ का निर्माण हुआ। इसका यथातथ्य विश्लेषण निम्नवत किया है-

2.1 संघ का स्वरूप एवं विकास

अविद्या अन्धकार का नाश कर सिद्धार्थ गौतम सम्यक् सम्बुद्ध बने। वे सर्वज्ञता को प्राप्त कर चुके थे। उनकी दृष्टि से संसार का कोई भी विषय अज्ञेय नहीं था। करुणा से ओतप्रोत उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्ध ने अपने दिव्यचक्षु से संसार के समस्त सत्त्वों को दुःख सन्तप्त देखा। इस अवलोकन से उनकी मूलभूत समस्या का पूर्णतः समाधान हो गया। संसार में व्याप्त दुःख, दुःख का कारण, उसका निवारण एवं उसके निवारण का मार्ग इस मूलभूत प्रश्न के समाधान के लिए संसार में भगवान् का प्रादुर्भाव होता है। सम्यक् सम्बोधि प्राप्ति के पश्चात् सम्यक् सम्बुद्ध ने इस कल्याणकारी धम्म का उपदेश जन-जन में प्रसारित करने का पूर्णतः विचार किया। वे बोधिमण्ड से उठकर उरुवेला से इसिपतन मिगदाव (वाराणसी) की ओर बढ़े । वहाँ उन्होंने इस मुक्तिदायी

[167] सिंह, परमानन्द, *"बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज"*, पृ.सं. 99

कल्याणकारी धम्म का सर्व प्रथम आख्यान पञ्चवग्गीय भिक्षुओं के समक्ष प्रस्तुत किया। पालि त्रिपिटक साहित्य में इसे 'धम्मचक्कपवत्तन'[168] कहा जाता है।

उन प्रथम सर्व पञ्चवग्गीय भिक्षुओं ने ही भगवान् से धम्म को सुना। क्रमानुगत कौडिण्य और तत्पश्चात् एक एक कर चारों ने उस अशेष विराग अमृतपद निर्वाण को साक्षात् कर लिया। इन पाँच भिक्षुओं के पश्चात् यश नामक कुलपुत्र ने इस धम्म को ग्रहण कर अर्हत् पद को प्राप्त कर लिया। उसके साथ उसके अन्य चार साथी भी इस कल्याणकारी धम्म के उपदेश सुन कर अर्हत् हो गए । इस प्रकार यह श्रृंखला निरन्तर बढ़ती रही। तदुपरान्त कुछ दिनों के बाद वाराणसी के पचास युवकों द्वारा भगवान् की देशना को सुना। उस कल्याणकारी धम्म के उपदेश से उनका भी मन बेघर हो प्रवज्जित होने के लिए प्रवृत्त हुआ। अत्यन्त कम समयावधि में ही उन सभी ने अर्हत् पद को प्राप्त कर लिया। इस प्रकार लोक में भगवान् बुद्ध सहित अर्हतों की संख्या एकसठ हो गयी,यही से संघ का प्रारम्भ हुआ। उस समय संघ में सम्मिलित भिक्षुओं से भगवान् ने आदेशित करते हुए कहा कि *"चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय। लोकानुकम्पाय, अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं।"*[169] अर्थात् हे! भिक्षुओं बहुजन के सुख एवं बहुजन के हित के लिए लोक में चारिका करो। साथ ही देवता तथा मनुष्यों पर अनुकम्पा की वृष्टि करो। इस लोक में आदि, मध्य एवं पर्यवसान में कल्याणकारी धम्म का प्रचार करे। वह धम्म स्वयं में परिपूर्ण तथा परिशुद्ध है। इस उत्तम कल्याणदायी, जीवन के परिशुद्ध पथ को प्रकाशित करो।

इस प्रकार की देशना से उन अर्हत् भिक्षुओं में धम्म प्रचार की उदात्त प्रेरणा प्रस्फुटित हो गयी। उन अर्हतों में तत्कालीन विभिन्न ग्राम-निगम एवं जनपदों में जाकर भगवान् की अमृतपद दायिनी धम्म देशना का प्रचार-प्रसार

---

[168] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"महावग्गपालि"*, पृ.सं. 13

[169] वही, पृ.सं. 23

किया। धम्म की इन सभी बातों को जन-जन ले जाने का उत्तम कार्य यहीं से प्रारम्भ हुआ था। धम्म की इन बातों को सुनकर जनता ने विचार किया और इस मार्ग को जीवन का उचित मार्गदर्शन समझा। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों की भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धा वृद्धिंगत होने लगी। उस समय बड़ी संख्या में लोग उनके अनुयायी बनाने लगे। महावग्ग पालि से ज्ञातव्य है कि भगवान् बुद्ध के वचन सुनकर रट्ठपाल नामक व्यक्ति धम्म को अधिक गहनता से समझने के लिए भगवान् से याचना करता है। उस समय भगवान् उसे कहते है कि बिना प्रव्रजित हुए यह धम्म अज्ञेय है। इसलिए वह कुलपुत्र घर से बेघर हो प्रव्रजित होता है। इस प्रकार अनेकानेक मनुष्य तथागत के पास आकर प्रवज्या व उपसम्पदा की याचना करने लगे। "*लभेय्याहं भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बजं, लभेय्य उपसम्पदन्ति।*"[170] उनके प्रत्युत्तर में भगवान् के मुख से यह वचन "*एहि भिक्खुति भगवा अवोच- स्वाक्खातो धम्मो चर ब्रह्मचरियं सम्मादुक्खस्स अन्तकिरियायाति।*"[171] अर्थात् भगवान् बुद्ध ने कहा भिक्षु! आओ धम्म सुविख्यात है, सम्यक् रूप से दुक्ख के अन्त के लिए ब्रह्मचर्य वास करो। प्रारम्भ में भगवान् के इन वचनों से ही उन आगत पुरुषों की उपसम्पदा हो जाती थी। वे घर से बेघर हो प्रव्रजित होकर उन भगवान् से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त कर भिक्षु जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ करते थे। इस प्रकार आरम्भ में प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा की विधि हमें दिखलाई पड़ती है।

पूर्वोक्त है कि भगवान् ने उन प्रव्रजितों को बहुजन के हित एवं सुख की कामना से ही जनमध्य विचरण करने का आदेश दिया। उसी अनुरूप वे प्रव्रजित भिक्षु जनमध्य विचरण करते हुए धर्म का उपदेश करने लगे। उनके द्वारा प्राप्त शान्ति रस एवं चर्या को देखकर व धर्मोपदेश से लोग आकृष्ट होने लगते थे।

---

[170] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*महावग्गपालि*", पृ.सं. 15

[171] वही,

इस प्रसंग में तथागत के प्रथम श्रावक पञ्चवग्गियों में से अस्सजि (अश्वजित) को देखने मात्र से ही सारिपुत्र आकर्षित हो गए थे। प्रारम्भ में इस प्रकार जब वे भिक्षु धर्म का उपदेश देते। उस समय कुछ लोगों के मानस में यह भाव जागृत होता कि उन्हें भी घर से बेघर हो निर्वाण के लिए प्रयास करना चाहिए। तब वह भिक्षु उन प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा की याचना करने वाले पुरुषों को भगवान् के समीप लाते थे। तत्पश्चात् उस समय तथागत उन्हें प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्रदान करते थे। समयानुसार जैसे-जैसे उन प्रव्रजितों का चारिका क्रम एवं क्षेत्र बढ़ता गया वैसे वैसे प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा के अभिलाषी मनुष्यों को दूर-दूर से भगवान् के समीप लाना कठिन, दुरूह हो जाता था। तत्कालीन समय की यातायात को देखने से यह ज्ञात होता है कि उस समय मार्ग भी चोरों और लुटेरों से ग्रसित तथा गर्द वन एवं नदियों को लांघ-लांघ जाने वाले थे। इतनी कष्टतापूर्वक उन मनुष्यों को भगवान् के समीप लाना अत्यन्त दुष्कर तथा दुरूह कार्य था। तथागत ने इस प्रकार कि दुविधा एवं कष्ट से अवगत होने पर अविलम्ब इस पर विचार किया। प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा के अभिलाषी मनुष्यों को विभिन्न ग्राम-निगम एवं जनपदों से आने में कठिनाई जान पड़ती है। इस प्रकार उसी समय भगवान् प्रथम उपसम्पदा का विधान किया- *"अनुजानेय्यं, भिक्खवे, तुम्हे व दानि तासु तासु दिसासु, तेसु तेसु जनपदेसु पब्बाजेथ उपसम्पदेथा'ति।"*[172] अर्थात् भिक्षुओं मैं आदेश देता हूँ कि तुम्ही अब उन-उन दिशाओं में, उन-उन जनपदों में मनुष्यों को प्रव्रज्या तथा उपसम्पदित करो। इस प्रकार यहाँ ध्यातव्य है कि भगवान् ने कभी भी धर्म का अधिकार अपने आप तक सीमित नहीं रखा। अपितु प्रव्रज्या व उपसम्पदित करने का अधिकार भगवान् से उपसम्पदित उन भिक्षुओं को प्रदत्त किया। भगवान् के इस आदेश के पश्चात् प्रश्न उपस्थित हुआ कि उन नवागन्तुक मनुष्यों को किस विधि से प्रव्रज्या व

[172] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"महावग्गपालि"*, पृ.सं. 24

उपसम्पदा प्रदान कि जाए। इस प्रश्न के समाधान में भी भगवान् ने अविलम्ब कहा कि प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा की कामना करनेवाले मनुष्य को अपनावेश त्यागकर मुण्डन कर काषाय वस्त्र धारण कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् उसे संघ में आकार काषाय वस्त्र के उत्तरासंघ को इस प्रकार धारण करे की एक कन्धा उस वस्त्र से आवृत्त हो तथा एक कन्धा खुला रहे। तब उसे घुटनों के बल बैठकर अञ्जलीबद्ध होकर विनीत भाव से- *"बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि।"* तीन बार त्रिशरण को उच्चारित कर दोहराना चाहिए। इस प्रकार करने से उस पुरुष की प्रव्रज्या व उपसम्पदा होती है। इस प्रकार की विधि को त्रिशरणपूर्वक प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त करना कहा जाता है।

"अनुजानामि भिक्खवे इमेहि तीहि सरणागमनेहि पब्बजे उपसम्पदेति।"[173]

इस प्रकार भगवान् के द्वारा अनुसासन पाने के पश्चात् त्रिशरणगमन पूर्वक प्रव्रज्या व उपसम्पदा प्रारम्भ हुई। भगवान् के आदेश के फलस्वरूप प्रव्रज्या के अभिलाषी मनुष्यों को भगवान् के निकट आने की आवश्यकता नहीं होती थी। तत्कालीन समय के विभिन्न दिशाओं में स्थित ग्राम, नगर, जनपद एवं निगमों में रहने वाले भिक्षुओं द्वारा ही उन प्रव्रज्या के अभिलाषी मनुष्यों की प्रव्रज्या व उपसम्पदा हो जाती थी। जिस प्रकार पूर्व में यह कार्य वन, जल एवं पथगामी मार्ग के भय के कारण दुरूह था, वह सरल हो गया। जिस कारण अब उन प्रव्रज्या के अभिलाषी मनुष्यों को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता था। इसी कारण दिन-प्रतिदिन प्रव्रजितों की संख्या में वृद्धि होने लगी। बहुसंख्यक लोग विभिन्न कुल-गोत्र से प्रव्रजित होने लगे। प्रव्रज्या के पश्चात् निश्चय ही अति शीघ्र उन्हें उपसम्पदा भी प्राप्त होती थी। संघ की प्रारम्भिक अवस्था में प्रव्रजित होने के उपरान्त उन नवागन्तुकों के लिए न तो करणीय कृत्यों का विधान था, न ही

---

[173] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"महावग्गपालि"*, पृ.सं. 24

रहने के लिए आवास का ही प्रावधान था। उनके लिए पहनने-ओढ़ने, धर्म कथन करने, चलने-फिरने और ध्यान भावना इत्यादि के लिए किसी नियम का विधान नहीं था। इस कारण वे प्रव्रजित भिक्षु प्रव्रज्या के उपरान्त यत्र-तत्र घूमते हुए दिखलाई पड़ते। उनके रहने का कोई आवास निश्चय न होने के कारण कोई तरु कोटर में रहने लगा तो कोई खुले आकाश में सोने लगा, कोई अव्यवस्थित अस्त-व्यस्त ढंग से वस्त्र धारण कर यत्र- तत्र विचरण करने लगा। कोई अशोभनीय ढंग से खाद्यान्न व पानी की याचना करने लगा। इस प्रकार के रहन-सहन व भोजनादि याचना के विरुद्ध जनमध्य ऐसी चर्चाएँ होने लगी कि- "ये कैस श्रमण हैं, जो आचार्यविहीन अनुशासन विहीन असंगतिपूर्ण वस्त्र धारण किए हुए, किसी भी नियम के परिपालन में अनुशासित न होकर भोजनादि के लिए जहां-तहां याचना करते हुए भ्रमण करते है। वे मनुष्यों को भोजन करता देख उनके सामने अन्न कि याचना करते हुए पात्र रख देते, उनके खाने के ऊपर भी अपने पात्र को रख देते, पेय पदार्थों की याचना करते हुए जहां कहीं भी अपने पात्र को बढ़ा देते। यथेष्ट ओदन तथा सूप के मिलने पर भी अधिक परिणाम में माँग-माँग कर खाते तथा भोजन के सम्मुख उच्चध्वनि में महारव घोर स्वर उत्पन्न करते है।"[174]

उनके ऐसे व्यवहार से लोग अधिक अप्रसन्न हो गए एवं इन दुर्व्यवहारों की चर्चा सर्वत्र होने लगी। यह चर्चा भगवान् बुद्ध तक भी पहुँची तथा इस पर उन्होंने गम्भीरता से विचार किया। भगवान् ने विचार किया कि भिक्षुओं के ऐसे व्यवहार न तो उनके लिए अनुरूप है, न लोगों के लिए ही। इसलिए विहित यह है कि प्रव्रज्या के उपरान्त उन्हें कुछ मूलभूत शिक्षा दि जाए। विनयपिटक के विषयवस्तु में संघ के अनुशासन के निर्देश निहित है।

[174] पाण्डेय, विजय लक्ष्मी, "बौद्ध संघ का स्वरुप एवं विकास", पृ.सं. 5

भगवान् ने समाज, देश, शासन एवं तत्कालीन परिस्थितियों को समक्ष रख विनय धर्मों को प्रज्ञप्त किया है। भगवान् के धम्म का मूल अभिधेय तो निर्वाण की प्राप्ति है किन्तु संघ का जीवन समाज पर ही निर्भर करता है। वह समाज देश एवं शासन से एक घनिष्टता रखता है। डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार ने अपने ग्रन्थ प्राचीन भारत में 'राजस्व की उत्पत्ति' के सम्बन्ध में लिखते है कि "अराजकता से पीड़ित मनुष्यों ने सर्वप्रथम मनु को अपना राजा निर्वाचित किया और कृषि की उत्पत्ति का छठा तथा वाणिज्य का दसवाँ भाग राज्य-देय निर्धारित किया। इस से पालित राजाओं ने प्रजा की सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया।"[175] पुनः आगे वह लिखते है कि इस सिद्धान्त का कुछ अधिक शुद्धरूप बौद्ध साहित्य में पाया जाता है, जिसके अनुसार जनता ने पौराणिक मनु को नहीं, वरन् "सपने में से ही सर्वसुन्दर, कान्तियुक्त और शक्तिशाली व्यक्ति को अपने धान्य का कुछ भाग देने की शर्त पर राजा निर्वाचित किया।"[176] बौद्ध संघ का संविधान बड़ा लोकतांत्रिक था। इससे बौद्धों को यह सिद्धांत किंचित् अतियों के साथ भी अधिक रुचता था। तभी एक बौद्ध भिक्षु एक अभिमानी राजा को इन शब्दों में सम्बोधित करता पाया जाता है- "तुम्हारे गर्व का मूल्य ही क्या है राजा ! तुम तो गण (प्रजा) के दास मात्र हो और छठाँ भाग मजदूरी के रूप में पाते हो ।"[177] जनता के राजस्व देने की सूचना इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाती है। इस अध्याय का मूल रूप से उद्देश्य भी विनयपिटक की विषयवस्तु में आगत आर्थिक व्यवस्था की व्याख्या करना है।

2.1.1 विनय की परिभाषा एवं अर्थ

विनय के अर्थ को विविध रूप से परिभाषित और स्पष्ट किया है। विनय = वि+नय, वि से तात्पर्य विनम्रता, नय ले जानेवाला। विनय अर्थात् विनम्रता की

---

[175] मजूमदार, रमेशचन्द्र, *"प्राचीन भारत"*, पृ.सं. 117

[176] वही,

[177] वही, पृ.सं. 117-118

ओर ले जानेवाला है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन "विनय (Discipline) नियम को कहते है।" 'समन्तपासादिका' की बाहिरनिदानकथा और 'अट्ठसालिनी' की निदानकथा में कहा गया है कि काया और वचन के विनयन करने के कारण ही विनय को विनय कहा गया है। "*विनयनतो चेव कायवाचानं अयं विनयो विनयो ति अक्खातो।*"[178]

इस प्रकार मूल रूप में विनय काया और वाणी का संयम है। इससे विनय का बाहरी रूप स्पष्ट होता है। "संयम भगवान के सब उपदेशों का सार है, इस संयम के लिए ही विनय है। 'विनयो संवरत्थाय' और यही सच्ची संपत्ती है, शील सम्पति।"

2.1.2 विनय पिटक के विषय में विविध विद्वानों के मत

विनय पिटक पर भारतीय तथा विदेशी विद्वानों द्वारा विविध मत प्रकट किये गये है। तथा उनका अर्थ और स्पष्टीकरण दिया है। वे मत निम्नवत है-

भरतसिंह उपाध्याय :- इन्होंने 'विनयपिटक' को बौद्ध भिक्षु संघ का 'संविधान' कहा है। [179]

C.S. Upasak :- के अनुसार "Vinay Pitak is a collection of rules regulating the outward conduct of the Bhikkhus and the Bhikkunis."[180]

U. Ko. lay : "The Vinaya Pitak is made up of rules of discipline laid down for regulating the conduct of the Buddha's disciples who have been admitted into the order as Bhikkhus (monks) and Bhikkhunis (Nuns). These rules embody authorative injections of the Buddha on modes of conduct and restraints on both physical and verbal action. They deal with

---

[178] शर्मा, बीरबल, "*समन्तपासादिका*", पृ.सं. 18

[179] उपाध्याय, भरतसिंह, "*पालि साहित्य का इतिहास*", पृ.सं. 384

[180] Upasak, C.S., *"Dictionary of early Buddhist monastic terms"* (Based on Pali Literature), Perface, pg. I

transgression of discipline and with various categories of restraints and admonitions in accordance with the nature of offence."[181]

P.V. Bapat :- इन्होंने विनयपिटक को Books of Discipline कहा "the rules of conduct for the monks and nuns are definite and are given in the Book of Discipline."[182]

उपरोक्त विधानों से समान निष्कर्ष निकलता है, कि विनय-पिटक यह भिक्षु-भिक्षुणीयों के आचार-व्यवहार सम्बन्धित बुद्ध द्वारा बताये गये अधिकारिक आदेशों का संग्रह है। जिसे विनय कहा गया है। विनयपिटक अर्थात् काया-वाचा के दोषों का निरोध कर विशुध्द चित्तयुक्त होने के लिए, शील, सदाचार, अनुशासन, विनम्रता, आत्मसंयम पर मार्गदर्शन के नियमों का संकलन है।

इन विधानों में विनयपिटक को संकुचित अर्थ से प्रतिपादित किया गया है। इस से अधिक विनयपिटक में संग्रहित विषयों की व्यापकता विस्तृत है। भरतसिंह उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित विनयपिटक की व्यापकता और उसका महत्त्व एक ही शब्द से प्रमाणित होता है, वह संज्ञा है "संविधान" । भिक्षु-संघ का संविधान । भिक्षु, संघ और संविधान इन तीनों संज्ञाओं का परस्पर सम्बन्ध उतना ही महत्त्व पूर्ण है जितना राज्य-संघ और संविधान का आंतर-सम्बन्ध । भिक्षु संघ का संविधान अर्थात् भिक्षुओं को एकसंघ या संगठित रहने का विधान। यह बुद्धशासन से सम्बन्धित है। इस भिक्षुसंघ पर ही बुद्धशासन का चिरस्थायित्व निर्भर होता है अन्यथा लोप। उसी तरह राज्यों के संघों का संविधान अर्थात् राज्यों के संघठित रहने का विधान यह राजनीतिक लोकतांत्रिक शासन पद्धती से सम्बधित है। अखण्ड राष्ट्र का प्रतिक है। इस संविधान के बिना लोकतांत्रिक शासन संभव नही। इन धार्मिक तथा राजनीतिक शासनपद्धती का संबध विनयपिटक में अन्तर्भुत है। "बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणीयों के आचार और निर्देश के

[181] Lay, U. Ko., *"Essence of Tipitaka"*, pg. 3
[182] Bapat, P.V., *"2500 Years of Buddhism"*, pg.33

लिए जो अनुशासन के नियम है, वे विनयपिटक में एकत्रित किए गए। बौद्ध भिक्षु संघ को लोकतंत्र का आधार था।"[183] महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मत से, "विनय (Discipline) कहते है नियम को। चूंकि इस पिटक में भिक्खु भिक्खुनियों के आचार- सम्बन्धी नियम तथा उनके इतिहास और व्याख्याओं को जमा किया गया है, इसलिए इसका नाम विनयपिटक यथार्थ है।"[184]

2.1.3 त्रिपिटक में विनय का स्थान एवं उसका महत्त्व

"भिक्षु संघ ने अत्यंत प्राचीन काल से विनय-पिटक को सुत्तपिटक से भी अधिक ऊँचा स्थान दिया है। क्योंकि विनय-पिटक को ही उसने बुद्ध-शासन की आयु माना है। उसका विश्वास रहा है कि जब तक विनय-पिटक अपने मौलिक विशुध्द रूप में रहेगा तभी तक बुद्ध-शासन भी जीवित और विनय सम्बंधी नियमों के अभ्यास से लुप्त हो जाने पर बुद्ध-शासन भी लुप्त हो जाएगा। विशेषतः सिंहल और स्याम (थायलंड) के भिक्षु संघ में अभी यह विश्वास दृढ है और वे विनय, सुत्त, अभिधम्म, यह क्रम महत्त्व की दृष्टी से त्रिपिटक को कहते है।

प्रथम सङ्गीतिमें भी विनय का संगायन पहले किया था। समन्तपासादिका को बाहिरनिदानकथा में कहा गया है कि प्रथम धर्म-सङ्गीतिके प्रारंभ में उसके सभापति महाकाश्यप् ने भिक्षुओं से पूछा "आयुष्मानो ! हम किसका पहले संगायन करे; धम्म का या विनय का? "आवुसो! कि पठमं सङ्गयामा ति धम्मं वा विनयं वा ति?"[185] तब भिक्षुओं ने उन्हें उत्तर दिया, 'भन्ते महाकश्यप ! विनय ही बुद्ध-शासन की आयु है, विनय के ठहरने पर ही शासन ठहरता है। इसलिए पहले विनय का ही संगायन करें।' "भन्ते महाकस्सप ! विनयो नाम बुद्धसासनस्स आयु ! विनये ठिते सासनं ठितं होति । तस्मा पठमं विनयं सङ्गयामा'ति।" यह

---

[183] बापट, पी.वी., "*बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष*", पृ.सं. 99
[184] सांकृत्यायन, राहुल, "*विनयपिटक*", पृ.सं. 32
[185] शर्मा, बीरबल, "*समन्तपासादिका*", पृ. सं. 13

लक्षणीय है कि बुद्धघोषाचार्य ने 'समन्तपासिदिका' की बाहिरनिदानकथा, सुमङ्गल-विलासिनी की निदानकथा और 'अट्ठसालिनी' की निदानकथा में पहले विनय का संगायन किया गया था और उसके बाद धम्म का अर्थात् सुत्तपिटक का। इस प्रकार आदि काल से ही त्रिपिटक के अन्तर्गत विनय-पिटक का महत्त्व सुप्रकट है।" त्रिपिटक के निर्देश में सर्वप्रथम विनय-पिटक को लिया है, उसके बाद सुत्त-पिटक को और अन्त में अभिधम्म को।"

2.2 कतिपय विनय नियमों के प्रज्ञापन में तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था का प्रभाव

भिक्षुसंघ की स्थापना के बाद भिक्षु भिक्षुणीयों की तेजी से वृद्धि हो गयी। संघ का लाभ सत्कार बढ़ने पर उसमें कुछ कमियाँ आने लगी। संघ के व्यवहार के लिए कुछ बाह्य नियमों से नियंत्रण करना आवश्यक हो गया था। धम्म की स्थापना के कुछ काल तक भिक्षु संघ विशुध्द रूप में प्रतिष्ठित हुआ था। भगवान् बुध्द को अपने शिष्यों पर पूरा विश्वास था। इसिलिए तथागत कहते है कि *"सेय्यथापि, भिक्खवे, महासमुद्दो, हितधम्मो वेलं नातिवत्तति, एवमेव खो भिक्खवे, यं मया सावकानं सिक्खापद पञ्ञतं तं मम सावका जीवित हेतु पि नातिक्कमन्ति। ये पि भिक्खवे मया सावकानं सिक्खापदं पञ्ञतं म तं मम सावका जीवित हेतु पि नातिक्कमन्ति, अयं भिक्खवे, इसस्मिं धम्मविनये दुनियो अच्छरियो अब्भुतो, धम्मो में दिस्वा दिस्वा भिक्खू यस्मिं धम्मविनये अभिरमानो।*[186]" अर्थात् भिक्षुओं जैसे महासमुद्र स्थिर रहता है, कभी अपने तट को नहीं लाँघता, उसी प्रकार मैं अपने श्रावकों को जिस शिक्षापद की देशना करता हूँ, मेरे श्रावक प्राण संकट आने पर भी, उसका उल्लंघन नहीं करते, शिक्षापद यह अनुल्लंघन ही हमारे धम्मविनय का दूसरा अद्भूत आश्चर्य धम्म है। पाराजिक पालि के आमुख में भिक्खु जगदीश कश्यप ने लिखा है कि "इसका कारण क्या कारण है पूर्व बुद्धों में से कुछ का 'सद्धर्म' एक लम्बी अवधि तक चला, जब कि उनमें से कुछ

[186] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*चुल्लवग्गपालि*", पृ.सं. 356

का 'सद्धर्म' अल्प समय में ही लुप्त हो गया। बुद्ध ने बतलाया कि उन पूर्व बुद्धों का सद्धर्म दीर्घजीवी रहा है; जिन्होंने संघ को संगठित और व्यवस्थित करने में परिश्रम किया तथा उनके मार्गदर्शन और अनुशासन लिये 'पातिमोक्ख' का विधान किया। अतः शीघ्र ही 'सारिपुत्त' ने उनसे सद्धर्म की चिरस्थिति के लिए 'पातिमोक्ख' के देशनार्थ प्रार्थना की। बुद्ध ने कहा 'पातिमोक्ख' नियम ऐसी वस्तु नहीं है, जिसकी सम्पूर्ण देशना एक ही समय कर दी जाय। उन्होंने बताया कि वे क्रमशः समय और अवसर के अनुकूल नियमों का विधान करेंगे।"[187]

समन्तपासादिका (प्रथम पाराजिक) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि *"भगवा किर पठमबोधियं वीसति वस्साति भिक्खू चित्त आराधिसिंसु" ति*। अर्थात् भगवान् के बोधि प्राप्ति के बाद वीस वर्षों तक भिक्षु शास्ता के चित्त को आराधिक करते थे। यह एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण निर्देश है ओर इसमें स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि भगवान् की बोधि प्राप्ति के बीस वर्षों में भिक्षुसंघ अपनी स्वाभाविक विमलता में रहा और भिक्षुओं ने प्राणों से तथागत की शिक्षा का पालन किया। बोधि प्राप्ति के बीस वर्ष के बाद ही संघ को अतिशय लाभ सत्कार की प्राप्ति हुई क्योंकि गृहस्थी चीवरकों को प्रथम बार स्वीकृत किया गया था। अयोग्य व्यक्ति लोभ लाभ सत्कार में पडने के कारण बार बार विनयों का उल्लंघन करते थे इस कारण भगवान् बुध्द को विनय नियम प्रज्ञप्त करने की आवश्यकता पड़ी।

विनयपिटक के महावग्गपालि के चीवरक्खन्धक से ज्ञातव्य है कि "राजगृह में विहार कर चारिका करते हुए भगवान् बुद्ध ने वैशाली की ओर पुनः प्रस्थान किया। मार्ग में उन्होंने देखा कि बहुत सारे भिक्षु अत्याधिक चीवरों को सर पर रखकर चल रहे थे। इस प्रसंग को देखकर तथागत ने विचार किया यदि यह भिक्षु इस समय अत्याधिक संग्रह कर रहे है तो भविष्य में ये क्या

[187] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*,(आमुख), पृ.सं. 4

करेंगे? शास्ता ने वैशाली पहूचकर इस बात की पुष्टि कि ग्रीष्म काल के रात्रि में सर्दी का प्रभाव न होने के लिए कितने चीवर प्रयुक्त करना श्रेयस्कर होगा।"[188]

"शारीरिक कष्ट से बचाव हेतु संग्राहक वृत्ति सामान्य कृति है किन्तु गृहत्यागी श्रमणों में संग्रहकारी मनोवृत्ति का होना अयोग्य है। शारीरिक पीडन से बचने के लिए अत्याधिक चीवरों की लालसा उपासकों के समक्ष भिक्षुओं को लजानेवाली है। भगवान् बुद्ध सदैव भिक्षु संघ से अपेक्षा करते थे कि भिक्षु अपने आचरण से अप्रसन्नों को प्रसन्न करें तथा जो प्रसन्न है उनकी श्रद्धा को विकसित करें। संघ की व्यवस्था का सुयोग्य संचालन एवं शारीरिक कष्ट से बचाव हेतु भगवान् ने त्रिचीवरो का विधान किया।"[189]

वेरंञ्जक ब्राह्मण द्वारा निमन्त्रित करने पर भगवान् ने वेरंञ्जा में भिक्खु संघ सहित वर्षावास के निमन्त्रण को स्वीकार किया। "उस समय वेरंजा दुर्भिक्ष-युक्त दो ईतियों (अकाल और महामारी) से युक्त श्वेत हड्डियों वाली, सूखी खेती वाली थी। (वहाँ) भिक्खा करके गुजर करना सुकर न था। उस समय उत्तरापथ के घोड़ों के सौदागर पाँच सौ घोड़ों के साथ वेरंजा में वर्षावास (करते थे)। घोड़ों के डेरों में उन्होंने भिक्खुओं को प्रस्थ भर चावल बांध रखा था।[190]" भिक्खु पूर्वाह समय (चीवर) पहनकर पात्र-चीवर ले वेरंजा में पिण्ड - चार के लिए प्रवेश कर, पिण्ड न पा, घोड़ों के डेरों (अश्वमंडलिका) में भिक्खाचार कर प्रस्थ-प्रस्थ चावल (= पुलक) पा, आराम में लाकर, ओखल में कूट-कूट कर खाते थे। आयुष्मान् आनन्द प्रस्थभर पुलक को सील पर पीसकर, भगवान् को देते, भगवान् उसे भोजन करते थे।[191]

---

[188] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*महावग्गपालि*", पृ.सं.304
[189] वही, पृ.सं.305
[190] सांस्कृत्यायन, राहुल, "*बुद्धचर्य्या*", पृ.सं.181
[191] वही,

भगवान् ने ओखल का शब्द सुना। जानते हुए भी तथागत पूछते हैं। (पूछने का) काल जान पूछते (हैं), (न पूछने का) काल जान नहीं पूछते। अर्थ-युक्त को पूछते हैं, अनर्थ युक्त को नहीं। अनर्थ सहित में तथागतों का सेतु-घात (मर्यादा-खंडन) है। दो कारणों से बुद्ध भिक्खुओं को पूछते हैं, (1) धर्म देशना करने के लिए या (2) श्रावकों को शिक्षा-पद (भिक्खुनियम) विधान करने के लिए। तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को कहा- आनन्द। क्या यह ओखल का शब्द है? आयुष्मान् आनंद ने यह (सब) बात भगवान् को कह दी। साधु! साधु! आनन्द! तुम सत्पुरुषों ने (लोको) को जीत लिया। आने वाली जनता (तो) पुलाव (शालि-मांस-ओदन) चाहेगी।[192] प्रस्तुत प्रसंग से ध्यातव्य है कि भगवान् अकाल और महामारी को जानते है। उनका भिक्खु संघ जो राष्ट्र के पिण्ड पर निर्भर है, उन्हें लोगों की पीड़ा को जानकर संयमित रहने के लिए साधुवाद देते है।

2.2.1 तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था का प्रभाव और पाराजिक धम्म

आर्थिक दृष्टिकोण से सांसारिक जीवन की पूर्ति एवं उसके प्रति झुकाव का होना स्वाभाविक है। भगवान् का उपदेश निर्वाण की और उन्नयन करता है, अतः वह निवृत्ति परक है। जो लोग संघ में प्रविष्ट हो जाते है, उनके लिए निर्वाण प्राप्ति ही मुख्य धेय्य होता है, इसलिए संघ में सभासद होने की पहली शर्त गृहत्याग करना है। गृहत्याग से यहाँ तात्पर्य सभी प्रकार के सांसारिक जीवन के प्रति आसक्ति और झुकाव का मर्दन करना। जो लोग गृहस्थी हैं उनका सांसारिक जीवन के प्रति आसक्त होना स्वाभाविक है। गृहस्थों के लिए जीवन चरितार्थ चलने हेतु विभिन्न जीविकाओं का अवलम्बन करना सामान्य घटना है, किन्तु भिक्खु-भिक्खुणियों के लिए राष्ट्रपिण्ड पर निर्भरता ही जीविका है। सामान्य गृहस्थ और भिक्खु-भिक्खुणियों की चर्या में यही मूलभूत भेद है। भिक्खु-भिक्खुणियों सांसारिक जीवन के प्रति आसक्ति और झुकाव न हो इसलिए

[192] सांस्कृत्यायन, राहुल, *"बुद्धचर्य्या"*, पृ.सं.181

नियमों का प्रज्ञापन और उपदेश तथागत द्वारा निर्दिष्ट है। जिसका सह सम्बन्ध आर्थिक व्यवस्था से भी है।

2.2.1.1 प्रथम पाराजिक (मैथुन)

प्रथम पाराजिक की व्याख्या 'सुदिन्न वत्थु' के नाम से वैशाली के समीपस्थ कलन्द ग्राम के श्रेष्ठी का पुत्र सुदिन्न के सन्दर्भ से पाराजिक पालि में की गयी है। भगवान् बुद्ध के बीसवें वर्षावास के उपरान्त सुदिन्न नामक भिक्षु ने अपने सम्बन्धियों के कहने से अपनी कुल-सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त कराने के लिये पुत्र उत्पन्न करने हेतु अपने पूर्व-पत्नी के साथ सहवास किया। जिससे उसके पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया। "बीजक पुत्र होने से उसका नाम बीजक पड़ा।"[193] त्रिपिटक से ज्ञातव्य है सुदिन्न को बीजक पिता तथा उसकी भार्या को बीजक माता के रूप में अभिहित किया जाने लगा। जिस कारण इसकी सर्वत्र चर्चा होने लगीकि यह कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण है, जो भोग-भोगकर कुलवृद्धि करते है। यह स्वयं को गृहत्यागी कैसे कह सकते है? मूलतः यह व्याख्या प्रथम पाराजिक के सम्बन्ध में आयी है। जिसका सीधा-सीधा सम्बन्ध भौतिक और आधात्मिक जीवन से है। किसी भी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति का जनसंख्या के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होता है। देश के समक्ष कुछ सीमित संसाधन और सुविधाएँ होती है। उन्हीं सीमित संसाधन और सुविधाओं का उपभोग वहाँ की जनता कर सकती है। वहाँ के मनुष्यों की जैसे-जैसे जनसंख्या वृद्धि होती है, वैसे-वैसे उन उपलब्ध संसाधन और सुविधाओं के सम्बन्धित वस्तुओं की कमी हो जाती है। इसलिए किसी भी राष्ट्र को एक अवस्था पर पहुँचकर जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण करना आवश्यक होता है। सुदिन्न वत्थु से ज्ञातव्य है कि सुदिन्न की माता ने निराश्रित भाव से साश्रुनयन करबद्ध निवेदन करते हुए कहा- हे पुत्र! सन्तानविहिन होने से कुल की असीम धन-सम्पदा को लिच्छविगण अधिग्रहण

[193] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*, पृ.सं. 22

करेंगे। तुम पुनः गृही जीवन में प्रविष्ट न हो किन्तु कुल के हित के लिए एक बीजक (बीज स्वरूप) पुत्र दे दो। अपनी माता के इस वार्तालाप से द्रवित हो, सुदिन्न ने माता के विनती को स्वीकार कर लिया।[194]

भगवान् ने इस घटना को गम्भीरता पूर्वक लेकर नियम बनाया *"यो पन भिक्खूनं सिक्खासाजीवसमापन्नो सिक्खं अपच्चक्खाय दुब्बल्यं अनाविकत्वा मेथुनं धम्मं पटिसेवेय्य, अन्तमसो तिरच्छानगताय पि पारजिको होति असंवासो।"*[195] पाराजिक नियमों में यह नियम बना वैसे ही भिक्षुओं का किसी भी प्रकार के वैवाहिक अथवा भौतिक कामभोगी जीवन के साथ सम्बन्ध नहीं रहा। मूलतः शास्ता ने अपने धर्म का प्रकाशन ब्रह्मचर्य को प्रकाशित करने के लिए ही किया है।

संघ के निर्माण के साथ बहुसंख्यक लोग गृहत्याग कर प्रव्रजित हुए। इस क्रम में एक बड़ी संख्या में प्रव्रजित होने के कारन बढाती जनसंख्या स्वतः नियन्त्रित हो गयी। जनसंख्या नियन्त्रण होने से आर्थिक-व्यवस्था में संतुलन आता है। इस प्रकार भगवान् द्वरा प्रतिपादित यह विनय आर्थिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से राष्ट्र हित से ओतप्रोत प्रतीत होता है। बुद्ध द्वारा स्थापित संघ में व्यक्ति पर किसी प्रकार का दबाव न होकर आत्म-संयमन का संकल्प कर व्यक्ति विनय धारण करता है।

2.2.1.2 द्वितीय पाराजिक (चोरी)

राजगृह में विचरण करते भगवान् बुद्ध ने अपनी चारिका का प्रस्थान दक्षिणागिरी की ओर किया। मार्ग में मगध के पंक्तिबद्ध खेतों को देख भगवान् ने आनन्द से कहाँ- आनन्द ! भिक्षुओं को भी मगध के पंक्तिबद्ध खेतों के भांति चीवरों को बनवाना चाहिए। तत्पश्चात तथागत ने वर्षाकाल जानकर राजगृह के गृद्धकूट पर वर्षावास में विहार करने का निश्चय किया। यह भगवान् बीसवाँ

---

[194] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*, पृ.सं. 22

[195] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"पातिमोक्खसुत्त"*, पृ.सं. 4

वर्षावास था। उस वर्षाकाल में अनेक भिक्षु ऋषिगिरी पर्वत के समीप वाले प्रदेश में तृण कुटियों का निर्माण कर निवास करते थे।

वर्षावास समाप्त होने के पश्चात् सभी भिक्षु तृण कुटियों को नष्ट कर चारिका के लिए विभिन्न स्थानों पर चले गये। कुम्भकार जाति से संघ में प्रविष्ट धनिय नाम का भिक्षु का एक भिक्षु था। वह अपनी तृण कुटी नष्ट न करते हुए उसी स्थान पर विहार करने लगा। एक दिन पिण्डपात के लिए समीपस्थ ग्राम में जाने के कारण लकड़ी बीनने वाले गरीब लड़की ने धनिय भिक्षु की कुटी को नष्ट कर तृण एवं लकड़ी का हरण कर लिया।[196]

पिण्डपात से अपने स्थान पर लौट आने के पश्चात् धनिय ने अपनी कुटी को नहीं पाया। पुनः तृण संग्रह कर कुटी का निर्माण करके वह उसी स्थान पर विहार करने लगा। कुछ दिनों के पश्चात् पुनः पिण्डपात से लौट आने पर धनिय भिक्षु ने देखा कि लकड़हरिनों ने उसकी तृण कुटी को नष्ट कर तृण एवं लकड़ियों का हरण कर लिया। इस कारण धनिय कुम्भकार ने स्थायी कुटी का निर्माण किया।[197]

एक समय भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं के साथ गृद्धकूट पर्वत से उतरते हुए समीपस्थ प्रदेश में सुदृढ़ कुटी को देखा। लाल मिट्टी से लीप-पोतकर बनाई गयी अत्यन्त रमणीय सुदृढ़ कुटी को देख कर भगवान् को कष्ट हुआ। भगवान् ने भिक्षुओं को आदेशित करते हुए उस कुटी को नष्ट कर दिया।[198] धनिय भिक्षु को अपनी कुटी के प्रति आसक्ति हो गयी थी। उसने अब काष्ठ का उपयोग कर कुटी का निर्माण विचार किया की। काष्ठ से कुटी निर्माण हेतु आवश्यक काष्ठ के लिए धनिय भिक्षु मगध नरेश बिम्बिसार के काष्ठ गोदाम गया। वहाँ जाकर काष्ठ गोदाम के रक्षक से काष्ठ माँगने लगा। उसने गोदाम रक्षक को यह

---

[196] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*, पृ.सं.51

[197] वही,

[198] वही,

बतलाया कि राजा के द्वारा उन्हें काष्ठ प्रदत्त है। धनिय भिक्षु के इस कथन को सत्य स्वीकार कर उसने उसे काष्ठ ले जाने की अनुमति प्रदत्त की। धनिय भिक्षु ने अच्छे मजबूत काष्ठ को लाकर कुटी का निर्माण कराया। [199]"

मगध राज का मंत्री वर्षाकार एक दिन गोदाम का निरीक्षण करने गया। जब उसने गोदाम का निरिक्षण किया तो देखा की गोदाम अच्छे मजबूत काष्ठ नहीं है। तो उसने रक्षक से उस विषय में जानने का यत्न किया। गोदाम रक्षक ने वर्षाकार को अवगत करते हुए कहा कि उसने वह अच्छे मजबूत काष्ठ धनिय भिक्षु को दे दिए हैं। यह सुनकर वह आश्चर्यचकित हुआ। उसने विचार कियाकि राजकार्य के लिए रखे गये अच्छे मजबूत काष्ठ को राजा ने बिना उसकी अनुमति के भिक्षु को कैसे दे दिये। उसने राजा बिम्बिसार के पास जाकर यथायोग्य पूछताछ की। राजा ने भिक्षु को काष्ठ देने की बात का माना किया, तो काष्ठ गोदाम रक्षक को बुलवाया गया और उसके कहने पर धनिय भिक्षु को भी राज दरबार में लाया गया। जब राजा ने धनिय से पूछा कि उसे राजा से काष्ठ किस समय प्राप्त किये, तो धनिय ने उत्तर दिया, "महाराज! आपके राजतिलक के समय आपने कहा था कि मैं श्रमण ब्राह्मणों को तृण और काष्ठ दूंगा, ताकि वे उनका उपयोग कर सकें।" राजा ने इस पर कहा कि उसे अच्छी तरह से स्मरण है कि यह उसने जंगल के तृण और काष्ठ के लिए कहा गया था। फिर राजा ने भिक्षु को चेतावनी दी कि वह "भिक्षु होने के कारण बच गया है, लेकिन भविष्य में ऐसा न करे।"[200]

राजगृह में सर्वत्र बौद्ध भिक्षुओं की आलोचना होने लगी कि वे असत्य भाषण करते है और गृहस्थों की तरह घर बनाते हैं।[201] इस तरह कि सूचना भगवान् बुद्ध के पास पहुँची, तो उन्होंने भिक्षुओं को एकत्रित किया और धनिय

---

[199] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाराजिकपालि*", पृ.सं.51

[200] वही, पृ.सं. 53-54

[201] वही,

को धिक्कारते हुए संघ से बाहर कर दिया। तत्पश्चात् भगवान् बुद्ध ने चोरी के सम्बन्ध में 'द्वितीय पाराजिका धम्म' का प्रज्ञापन किया। द्वितीय पाराजिका धम्म के अनुसार यदि कोई भिक्षु बिना अनुमति के कम से कम पाँच मासे की वस्तु या उसके समकक्ष मूल्य की वस्तु लेता है या ठगी करता है, तो उसे संघ से निष्कासित कर दिया जाएगा।[202]

महावग्गपालि के महाखन्धक से ज्ञातव्य है कि *"उपसम्पन्नेन भिक्खुना अदिन्नं थेय्यसङ्खातं न आदातब्बं आन्तमसो तिणसलाकं उपादाय। यो भिक्खु पादं वा पादरहं वा अतिरेकपादं वा अदिन्नं थेय्यसङ्खातं आदियति, अस्समणो होति असक्यपुत्तियो। सेय्यथापि नाम पण्डुपलासो बन्धना पमुत्तो अभब्बो हरितत्ताय एवमेव भिक्खु पादं वा पादरहं वा अतिरेकपादं वा अदिन्नं थेय्यसङ्खातं आदियति अस्समणो होति असक्यपुत्तियो। तं ते यावजीवं अकरणीयं।"*[203] अर्थात् उपसम्पन्न भिक्षु को न दी हुई वस्तु को जिसे चोरी की ही कहाँ जायेगा, नहीं लेनी चाहिए। जो भिक्षु पाद (पाँच मासा) या पाद के बराबर या उससे कुछ ही अधिक वस्तु को भी जिसे चोरी की ही समझा जायेगा, यदि विधा स्वामी के दिये लेता है, जो वह शाक्यपुत्रीय श्रमण नहीं रह जायेगा।

यहाँ चोरी की बात स्पष्ट हुई है। तत्कालीन समय में चोरी किस मूल्य की वस्तु को कहाँ जाता था इसकी भी पुष्टि की गयी है। यहाँ बुद्ध कालीन मुद्रा का उल्लेख आर्थिक दृष्टि से महत्त्व पूर्ण है। *"पादं वा पादरहं वा अतिरेकपादं वा अदिन्नं"*[204] अर्थात् "पाद या पाद के बराबर या उससे कुछ ही अधिक वस्तु को भी" यहाँ पाद से तात्पर्य तत्कालीन मुद्रा से है।

विनयपिटक की अट्ठकथा समन्तपासादिका के धनियवत्थु वण्णना से ध्यातव्य है कि *"अथ खो भगवा ते भिक्खुं एतदवोच ति सामञ्ञेव लोकवोहारं पि*

---

[202] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*, पृ.सं. 55

[203] शास्त्री,स्वामी द्वारिकादास, *"महावग्गपालि"*, पृ.स.153-154

[204] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*, पृ.सं. 57

जानाति[205]" अर्थात् भगवान् ने उन भिक्षुओं से कहा श्रामाण्य के साथ लोक-व्यवहार को भी जानना चाहिए। न केवल आध्यात्मिक विकास का ही तथागत ने विचार किया अपितु लोक-व्यवहार का भी विचार किया है। भगवान् का उपदेश आत्मोन्नति ही नहीं बल्कि समाज एवं राष्ट्र उन्नति का भी विचार है।

पुनः आचार्य बुद्धघोष ने अपनी व्याख्या में स्पष्ट किया है कि "*एवं सन्ते पि सचे अञ्ञेहि लोकवोहारञ्ञूहि सद्धिं असंसन्देत्वा पादमत्तेन पाराजिकं पञ्ञापेञ्ञ, तेनस्स सियुं वत्तारो सीलसंवरो नाम एकभिक्खुस्स पि अप्पमेय्यो असङ्खेयो महापठवी-समुद्द-आकासानि विय नासेसि'ति।*"[206] "*लोकवोहारञ्ञूहि पन सद्धिं संसन्देत्वा पञ्ञत्ते सो उपवादो न होति।*"[207] इन सभी विवरणों से ज्ञात होता है कि यहाँ भगवान् बुद्ध के विचारों में लोक-व्यवहार का विचार किया गया है।

2.2.1.3 तृतीय पाराजिक (वध मनुष्य)

भगवान् बुद्ध वैशाली की कूटागार शाला में साधनाहेतु विराजमान थे।[208] उस समय भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को शरीर की अशुचिता एवं नश्वरता का उपदेश दिया। उन्होंने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा कि वे शरीर की अशुचिता के विषय में अशुभभावना एवं अनाकर्षकता को मन में विकसित करें।[209] इस उपदेश के पश्चात् भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि भिक्षुओं! मैं अर्ध मास के लिए एकान्तवास में जाना चाहता हूँ। मेरे पास कोई भी व्यक्ति न आए। वहीं व्यक्ति आ सकता है, जो मेरे लिए भिक्षा-भोजन लेकर आए। भगवान् के एकान्तवास ग्रहण करने की बात को सभी भिक्षुओं ने साधुवाद दिया।

---

[205] शर्मा, बीरबल, "*समन्तपासादिका*", पृ.सं. 290
[206] वही, पृ.सं. 291
[207] वही, पृ.सं. 292
[208] सांस्कृत्यायन, राहुल, "*बुद्धचर्य्या*", पृ.सं. 375
[209] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाराजिकपालि*", पृ.सं. 84

भगवान् के एकान्तवास ग्रहण करने के कालावधि में सद्धर्म एवं संघ की सद्धर्म की अपरिवर्तनीय हानि की। भिक्षु विचार करने लगे भगवान् ने हमें शरीर की अशुचिता के एवं नश्वरता का उपदेश दिया है और अशुभभावना एवं अनाकर्षकता को मन में विकसित करने को कहा। यह उपदेश कर स्वयं भगवान् भी इसी भावना का अभ्यास करने एकान्तवास में गये है।

परिणामस्वरूप, वे अपने शरीर से तिरस्कार और घृणा करने लगे। जिस प्रकार किसी एक युवक अथवा युवती - जो अलंकरणों को धारण करने की रूचि रखते है, जिनके केश धुले हुए हों - अगर उसके गले में सांप, कुत्ते या किसी मनुष्य का शव लटका दिया जाए तो वह शर्मिंदा, अपमानित और घृणा महसूस करेगा, ठीक उसी तरह उन भिक्षुओं को भी अपने शरीर से तिरस्कार और घृणा हो रही थी। अनेक भिक्षुओं ने आत्महत्या कर ली।

भिक्षु संघ के पास ही 'मिगलण्डिक समणकुत्तक[210]' नाम का एक व्यक्ति रहा करता था, जो स्वभाव से निर्दयी और लोभी था। कुछ भिक्षु मिगलंडिक के पास जाकर कहने लगे "कृपया हमें मार दें। आपको हमारा पात्र एवं चीवर मिल जायेगा।" एक पात्र एवं चीवर के लोभ में मिगलंडिक ने कई भिक्षुओं को मार डाला। फिर वह अपना रक्तरंजित शस्त्र लेकर धोने के लिए वग्गुमुदा नदी पर गया। उसे धोते समय, वह चिंतित और पश्चातापी हो गया, यह सोचते हुए कि, "मैंने क्या किया है? मैंने अच्छे भिक्षुओं को मारकर बहुत पाप किया है।" तब पापी मार ने आकर उसे कहा "अच्छा किया, श्रेष्ठ मनुष्य, तुम सच में भाग्यशाली हो। तुमने उन लोगों की मदद करके बहुत पुण्य कमाया है जो अभी तक पार नहीं कर पाए हैं।" मिगलंडिका ने सोचा, "तो ऐसा लगता है कि मैं भाग्यशाली हूँ, कि मैंने बहुत पुण्य कमाया है।" जिन भिक्षुओं में अभी भी सांसारिक आसक्ति थी, वे भयभीत और डरे हुए हो गए, उनके रोंगटे खड़े हो

[210] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाराजिकपालि*", पृ.सं. 85

गए। केवल वे ही अप्रभावित थे जो सांसारिक आसक्ति से मुक्त थे। फिर, एक ही दिन में, मिगलंडिक ने एक भिक्षु, दो भिक्षु, तीन, चार, पांच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, यहां तक कि साठ भिक्षुओं को मार डाला। आधे महीने के अंत में, जब भगवान् बुद्ध एकांतवास से बाहर आए, तो उन्होंने आनंद से कहा, "आनंद, भिक्षुओं का संघ इतना कम क्यों हो गयी है?" आनंद ने उन्हें सविस्तार बताया की क्या हुआ था।[211]

तत्पश्चात भगवान् बुद्ध ने भिक्षु संघ को एकत्रित किया और भिक्षुओं से पूछा "क्या यह सत्य है, भिक्षुओं, कि ऐसे भिक्षु हैं जिन्होंने अपने प्राण त्याग दिए, जिन्होंने एक-दूसरे को मार डाला है, और जिन्होंने मिगलंडिक से कहा है, "कृपया हमें मार दें। आपको हमारा पात्र एवं चीवर मिलेगा?" हाँ भगवान् यह सत्य है। भगवान् बुद्ध ने बचे हुए भिक्षुओं को एकत्र किया और 'मनुष्य हत्या की पाराजिका' का विधान किया। "जो पुरुष जानकर मनुष्य-शरीर को प्राण से मारे, या शस्त्र से मारे, या मरने की तारीफ करे, मरने के लिए प्रेरित करे-अरे आदमी! तुझे क्या इस पापी दुर्जीवन से, जीने से मरना अच्छा है। इस प्रकार चित्त-विचार से, इस प्रकार के चित्त संकल्प से अनेक प्रकार से जो मरने की तारीफ करे, या मरने के लिए प्रेरित करे। यह भी पाराजित हो है,अ-संवास होता है।[212]" यहाँ ध्यातव्य है कि मनुष्य लोभ-वश इच्छाओं वाला होकर हत्या के लिए किसी को प्रेरित करता है। दुसरें के कहने पर हत्या करने वाला इसलिए करता है की इससे उसे कुछ मिल जायेगा। किसी भी प्रकार से मनुष्य हत्या वर्जित है। आर्थिक दृष्टिकोण से इसका सहसम्बन्ध यह था कि सत्ता, सम्पत्ति, अधिकार और प्रसिद्धि के लिए व्यक्ति अन्ध हो कर अपने स्वजनों की हत्या अथवा हत्या का प्रयत्न कर सकता है।

---

[211] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*, पृ.सं. 85

[212] सांस्कृत्यायन, राहुल, *"बुद्धचर्य्या"*, पृ.सं. 377

2.2.1.4 चतुर्थ पाराजिक (दिखावा का शक्ति दिव्य)

एक समय भगवान् वैशाली कुशगार साल में विहार कर रहे थे। उस समय कई भिक्षु जो आपस में मित्र थे वग्गमुदा[213] (वागमती) के तट पर वर्षावास करने गये। उस समय वज्जि सबुह के पास अकाल पड़ा था। फसल पर किड़ो का भाव होकर फसल भूसा बन गई थी। इस परिस्थिति में भिक्षाटन करके वर्षावास कैसे किया जायेगा। कुछ भिक्षुओं ने कहाँ हम गृहस्थों की मदद करते है। कुछ ने कहाँ कैसे करने की कोई आवश्यकता नहीं। हम गृहस्थों में जाकर एक-दूसरे के विषय में आलौकिक शक्ति होने का कहेंगे। जिससे हम भिक्षाटन में भिक्षा प्राप्त करेंगे। उन भिक्षुओं ने वैसे ही किया। लोगों ने विचार किया हम बहुत ही भाग्यशाली है कि हमारे यहाँ वर्षावास के लिये ऐसे सदाचारी भिक्षुगण आये है। वे संयम ही खाते, माँ-बाप, पत्नी, बच्चे,दास, नौकरों और कर्मचारियों को मित्र ज्ञातियों को भी भोजन नहीं करवाते। गृहस्थ लोग अपने-अपने दास तथा परिवार को भी न मिलने वाला भोजन भिक्षुओं को देने लगे। थोड़े ही दिनों में ऐसे भिक्षु तगड़े तथा रूपवान हो गए, उनके मुखड़े पर लाली दौड़ने लगी।

वर्षावास समाप्त होने पर भिक्षु भगवान् के दर्शनार्थ वैशाली गये। उसी क्षेत्र में वर्षावास बिताने वाले अन्य भिक्षु दुर्बल, सुख और पीले दिख रहे थे। उनकी पूरी नसे दिख रही थी। वग्गमुदा नदी के तटवाले भिक्षुओं का रंग अच्छा चमकदार चेहरे साफ त्वचा और तेज इन्द्रिय दिख रहे थे। कृशकाय भिक्षुओं ने निन्दा आरम्भ की और भिक्षुओं के उन दो वर्गों के विषय में तथागत को बतलाया। दोनों स्थितियों के कारण जानने परबुद्ध ने उन गृहस्थों के घर जाकर नौकरी करने वाले एक वर्ग के भिक्षुओं को धिक्कारा तथा उन भिक्षुओं का भी धिक्कार किया जो गृहस्थों के यहाँ एक दूसरे के 'उत्तर मनुष्य' धर्म की कैसे प्रशंसा किया करते थे। उस समय शास्ता ने "जो भिक्षु दिव्यशक्ति (ध्यान,

---

[213] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाराजिकपालि*", पृ.सं. 109

विमोक्ष, समधी आदि) के विषय में न जनता हुआ भी अपने अन्दर (त्रिविध विद्या) और दर्शन की अद्‌भुत शक्तियो का अभिनय करते हुए यह कहे- "मैं त्रिकाल (भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान) की घटनाएँ जानता हूँ।" दिव्य शक्तियों के विषय में न जानते हुए यह कहना की जानता हूँ, या न देखते हुए भी यह कहना की देखता हूँ इस प्रकार 'उत्तर मनुष्य धर्म' के सम्बन्ध में निःसार और प्रलाप करे पाराजिक दोष माना जायेगा।"[214] इस प्रसंग से स्पष्टरूप से निर्देश मिलाता है कि भिक्षुओं का जीवन सामान्य गृही उपासको पर निर्भर होता है। किसी स्थान पर अकाल अथवा महामारी की स्थिति आने पर भिक्षुओं ने उन गृहस्थों पर बोझ नहीं बनना चाहिए। विपरीत स्थिति में वे गृहस्थ स्वयं ही आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त होते है। वे अपना और अपने परिवार का ही भरण-पोषण करने में असमर्थ होते है। इसलिए उदर भरण के लिए तथा जीविका चलाने हेतु भिक्षुओं ने कभी भी 'उत्तर मनुष्य धर्म' के सम्बन्ध में उपासकों को नहीं बतलाना चाहिए।

2.2.2 सङ्घादिसेस और तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था का प्रभाव

विनय नियमों का दूसरा महत्त्व पूर्ण भाग है- 'सङ्घादिसेसकण्ड'।[215] यह 'सङ्घादिसेस' नामक तेरह अपराधों की व्याख्या करता है, जिनके दण्ड-स्वरूप सङ्घ की वैधानिक समिति द्वारा पारित प्रस्ताव के आधार पर एक निश्चित अवधि के लिये अपराधी को 'परिवास-व्रत' का पालन करना पड़ता है।[216] जिसका विस्तृत विवेचन 'चुल्लवग्ग' के 'परिवास-क्खन्धक' में उपलब्ध है। व्रत पूर्ण हो जाने पर पुनः विधिवत सङ्घ की बैठक बुलाई जाती है, जिसमें दण्ड- मुक्त करने का प्रस्ताव पारित किया जाता है। इन अपराधों के विचारार्थ प्रारम्भ (आदि) और अन्त (सेस) में दोनों ही समय सङ्घ की अनुमति ली जाती है। अतः इसका नाम 'सङ्घादिसेस' उपयुक्त ही है।

---

[214] शास्त्री,स्वामी द्वारिकादास, *"पातिमोक्खसुत्त"*, पृ.सं. 5-6

[215] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*(आमुख),पृ.सं. 5

[216] वही,

इस वर्ग के तेरह अपराधों की सूची इस प्रकार है- जान बूझकर वीर्य-त्याग करना, राग-चित्त से स्त्री का कायसंसर्ग, स्त्री के साथ अश्लील बातें करना, बुरे उद्देश्य से स्त्री को बुलाना, मध्यस्थ का कार्य करना, कुटिया-निर्माण में प्रमाण का अतिक्रमण करना, विहार-निर्माण में प्रमाण का अतिक्रमण करना,भिक्षु के विरुद्ध गलत दोषारोपण करना, सङ्घ-भेद करना, सङ्घ-भेद करने वालों का साथ देना, परिवारों को दूषित करना। दूसरों के सुझावों का जानबूझ कर अनादर करना।[217]

'सङ्घादिसेस' नामक तेरह अपराधों का सम्बन्ध भिक्खु जीवन के आध्यात्मिक उन्नयन के लिए हैं। प्रस्तुत अध्याय की दृष्टी से इन्हें दो भागों में विभाजित कर सकते हैं; यथा- ब्रह्मचर्य के परिपालन और परिग्रहण के आलोक में। यहाँ परिग्रहण से तात्पर्य आवश्यकता से अधिक का उपयोग और संग्रहण से है। इन 'सङ्घादिसेस' अपराधों में मुख्यतः तीन नियमों की चर्चा आर्थिक दृष्टी से महत्त्व पूर्ण है, वह नियम है - कुटिया-निर्माण में प्रमाण का अतिक्रमण करना, विहार-निर्माण में प्रमाण का अतिक्रमण करना और कूलों को दूषित करना।

2.2.2.1 कुटिया-निर्माण में प्रमाण का अतिक्रमण करना

एक समय भगवान् वेळूवन के कलन्दक निवाप में विहार कर रहे थे। उस समय आळवी भिक्षु भिक्षाटन करके कुटी का निर्माण कर रहे थे। उहोने वह कुटियाँ स्वयं के लिए निर्माण की थी। जिसका ना कोई अन्य प्रयोजक था,ना कोई अन्य स्वामी ही और वह अनुपयुक्त रूप से अत्यधिक विस्तृत बनाई गयी थी। अनुपयुक्त रूप से अप्रमाण होने के बावजूद भी वह पूर्ण नहीं हुई थी। भिक्षु विनती करते रहे और लोगों से माँगते रहे, "कृपया एक आदमी, एक नौकर, एक बैल, एक गाड़ी, एक छुरी, एक कुल्हाड़ी, एक कुल्हाड़ी, एक कुदाल, एक

[217] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाराजिकपालि*"(आमुख),पृ.सं. 5-6

छेनी दे दो; लताएँ, बाँस, नरकट, घास, मिट्टी दो।"[218] इस प्रकार अत्यधिक वस्तुओं को माँगने पर लोगों ने उत्पीड़ित महसूस किया। इतना कि जब उन्होंने एक भिक्षु तक को देखा तो वे चिंतित और भयभीत हो जाते। वे मुड़ जाते, अलग रास्ता अपना लेते, भाग जाते और अपने दरवाज़े बंद कर लेते। यहाँ तक कि जब लोगों ने गायों को देखा तो वे यह सोचकर भाग गए कि वे भिक्षु हैं।

उस समय भिक्खु महाकस्सप राजगृह में वर्षावास बीताने के पश्चात् आळवी के लिए निकल गये। जब वे आळवी पहुंचे तो उन्होंने अग्गाळवा में विश्राम किया। एक दिन भिक्खु महाकस्सप ने चीवर पहन पात्र लेकर भिक्षा के लिए आळवी में प्रवेश किया। जब लोगों ने उन्हें भिक्षचार करते देखा तो वे चिंतित और भयभीत हो गये। उन्हें देखकर वे लोग मुड गये, उन्होंने दूसरा रास्ता अपनाया, भाग गये और अपने दरवाज़े बंद कर लिया। भिक्षचार में प्राप्त भोजन करने के उपरान्त भिक्खु महाकस्सप विहार में वापस लौटे और भिक्षुओं से कहा "आळवी में बहुत सारी भिक्षा प्राप्त हुआ करती थी और भिक्षा प्राप्त करना आसन था।"[219] उन्होंने उन भिक्षुओं पूछा कि पहले तो यथायोग्य रूप से भिक्षा प्राप्त होती थी, लेकिन अब इसमें कमी आ गयी और इसे प्राप्त करना कठिन हो गया है। ऐसा क्यों? प्रत्युत्तर में उन भिक्षुओं ने भिक्खु महाकस्सप को पूरा घटनाक्रम बताया। इसी के तुरन्त बाद भगवान् भी अपना वर्षावास समाप्त होने के पश्चात् राजगृह से आळवी की ओर चारिका में निकल पड़े। भगवान् ने भी अग्गाळवा में विश्राम किया। उस समय महाकस्सप जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये और आळवी में हुए घटनाक्रम को भगवान् को बताया।

भगवान् ने संघ को एकत्रित किया, आळवी के भिक्खुओं को प्रश्न किया कि भिक्खुओं क्या यह सत्य है भिक्खुओं यह हो रहा है? उन भिक्खुओं ने

---

[218] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाराजिकपालि*", पृ.सं. 215

[219] वही, पृ.सं. 216

प्रतित्युर में कहा कि यह सत्य है। *"गिहीनं,भिक्खवे दुस्सहरानि भोगानि सम्भतानि दुरक्खियानि।"*[220] भगवान् ने उन भिक्खुओं फटकारा मुर्ख लोगों आप लोग ऐसे कैसे कार्य कर सकते हैं । इससे लोगों के श्रद्धा पर परिणाम होगा, फटकारने के बाद उन्होंने भिक्खुओं को उपदेश दिया।

जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कुटी बनाते समय प्रमाण और गृहस्थ उपासकों की श्रद्धा पर परिणाम न हो इसका ध्यान रखा गया है। जीवन की भौतिक आवश्यकताओं के लिए सामान्य लोगो को अत्याधिक कष्ट करने पड़ते है।

2.2.2.2 विहारकारक शिक्षापद

एक समय भगवान् बुद्ध कौशाम्बी के घोषिताराम विहार में विहार कर रहे थे । एक गृहस्थ भिक्षु छन्न का उपासक था।[221] उस उपासक ने छन्न को कहा भन्ते यदि आपको आवास बनाने के लिए जमीन मिल जाये तो मैं आपके लिए आवास बनाऊँगा। जब भिक्षु छन्न को आवास के लिए जमीन प्राप्त हुई, तो वह उस जमीन की सफाई कर रहे थे। उस जमीन की सफाई करते समय उन्होंने एक वृक्ष को काट दिया। वह वृक्ष ग्राम, निगम, जनपद और राज्य द्वारा 'वृक्ष देवता' के रूप में पूज्यनीय था। इस घटना को देखकर लोगों ने शिकायत की और भिक्षु छन्न की आलोचना करते हुये कहा ''शाक्यपुत्रीय श्रमण कैसे वृक्ष देवता को काट सकते है? यह वृक्ष देवता मानित है ग्राम, निगम, जनपद और राज्य द्वारा पूज्यनीय है।''[222] वे एक इन्द्रिय को कैसे नुकसान पहुँचा सकते है? इस घटना को सुनकर भिक्षुओं ने छन्न की आलोचना की। अल्पेच्छ भिक्षुओं ने डांटा फटकारा और यह बात भगवान् को बतलाई भगवान् ने तुरन्त संघ को एकत्रित किया और छन्न से उक्त घटना के विषय में पूछा 'क्या यह सत्य है कि

---

[220] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि",* पृ.सं. 220

[221] वही, पृ.सं. 232

[222] वही, पृ.सं. 233

तुमने ऐसा किया है? प्रत्युत्तर में छन्न ने कहा भगवान् यह सत्य है। शास्ता ने उसे डांटा, फटकारा, मूर्ख मनुष्य तुम ऐसा कैसे कर सकते है? लोग वृक्षों को चेतन मानते है इससे लोगों की श्रद्धा पर क्या असर पडेगा। इस प्रसंग से स्पष्ट होता है विहार के निर्माण स्थल में किसी भी प्रकार के जीव हिंसा का भय न हो। साथ ही साथ जनभावना की अवहेलना भी न हो इसका ध्यान रखने के लिए भगवान् ने इस विनय को प्रज्ञप्त किया।

महल्लकं पन भिक्खुना विहारं कारयमानेन सस्सामिंक अत्तुद्दसं भिक्खू अभिनेतब्बा वत्थुदेसनाय। तेहि भिक्खूहि वत्थु देसेतब्बं- अनारम्भं सपरिक्कमनं। सारम्भे चे भिक्खु वत्थुस्मिं अपरिक्कमने महल्लकं विहारं कारेय्य, भिक्खू वा अनभिनेय वत्थुदेसनाय, सङ्घादिसेसो।।[223]

किसी के मालिकाना (स्वामित्व) वाले स्थान पर अपने लिये बड़ा विहार वनवाना चाहने वाले भिक्षु को विहार के निर्माण-स्थल के निश्चय के लिये स्थविर भिक्षुओं को बुलाना चाहिये। वे स्थविर भिक्षु उसे ऐसा स्थल बतावें, जहाँ प्राणिहिंसा का डर न हो और वहाँ तक पहुँचना सरल हो। यदि वह भिक्षु स्थविर भिक्षुओं का परामर्श न मान कर जीवहिंसा वाले या दुर्गम स्थल पर बड़ा विहार बनवाये या सम्मति के लिये स्थविर भिक्षुओं को न बुलाये- यह उसका सङ्घादिसेस' अपराध है।

तत्कालीन जनता वृक्षों को देवता मानती थी। यह पर्यावरणीय दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। आर्थिक स्थितियों में पर्यावरणीय सन्तुलन प्रभावशाली घटक होता है। चाहे पशु-पक्षी हो या वन-जंगल हो सभी का हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ता है। इसी बात को समझते हुये इस नियम का प्रज्ञापन किया गया है।

---

[223] शास्त्री,स्वामी द्वारिकादास, *"पातिमोक्खसुत्त"*, पृ.सं. 8

2.2.2.3 कुलदूसक शिक्षापद

एक समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय अश्वजीत नामक भिक्षु किटागिरी में विहार कर रहे थे।[224] वह कई तरह से दुरव्यवहार कर रहे थे। उन्होंने विहार के परिश्रर में विभिन्न प्रकार के पुष्प का रोपन किया। अनेक प्रकार के पुष्प उत्पन्न होने पर उन्हें तोड़ा, उन्हें एक-साथ बाँधकर पुष्पगुच्छ बनाया। फूलों की तरह-तरह की मालाएँ बनाई। जोकि शारीरिक सज्जा जैसे सिर, गला, कान आदि को आभूषित करने योग्य हो। इस प्रकार की मालाएँ न केवल उन्होंने स्वयं बनाई अपितु अन्य भिक्षुओं से भी बनवायी। फिर यह मालाएँ उन्होंने अच्छे परिवार की महिलाओं, बेटियों और दासियों के पास भेजा।

उनका दुर्व्यवहार इतना बढ़ने लगा कि वे इन महिलाओं के साथ एक थाली में खाना खा रहे थे, एक ही बर्तन में पानी पी रहे थे। एक ही आसन पर बैठ रहे थे, एक ही शंय्या पर शयन कर रहे थे। उन महिलाओं ने असमय खाना खाया, शराब पी, माला इत्र और सौन्दर्य प्रसाधनों को धारण किया। उन्होंने नृत्य किया, गाना गाया, वाद्ययंत्र भी बजाया। जब महिलाये यह सब कर रही थी तब वे भी ऐसा कर रहे थे। उन्होंने विभिन्न प्रकार के खेल खेले। एक मंच पर अपना बाहरी वस्त्र फैलाया और नाच रही लड़कियों से कहा *"इध, भगिनि, नच्चसू ति"*[225] अर्थात् ''यहाँ नाचों बहन" इस प्रकार अनुमोदन दिया। इस प्रकार के भिन्न-भिन्न दुर्व्यवहार उन्होंने किये। काशी से वर्षावास समाप्त कर एक भिक्षु किटागिरी पहुँचे। दूसरे दिन प्रातः पात्र चीवर पहनकर वे भिक्षाटन के लिए निकल पड़े। वह अत्यन्त संयमी विनयशील थे। विभिन्न प्रकार के मनोरंजन करने वाले अश्वजीत के व्यवहार के अधीन लोगों ने उन्हें किसी प्रकार की भिक्षा नहीं दी। एक उपासक ने यह देखा उनके समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया और

---

[224] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि",* पृ.सं. 269

[225] वही, पृ.सं. 270

अपने घर ले गया और भोजन कराया। तत्पश्चात् उस उपासक ने भिक्षु से पूछा कि आदरणीय आप कहाँ जा रहे है? उन्होंने कहा मैं भगवान् के दर्शनार्थ श्रावस्ती जा रहा हूँ। तब उस उपासक ने कहा कि किटागिरी विहार भ्रष्ट हो गया है और अश्वजीत के सभी दुर्व्यवहारों को बतलाया। यह बात भगवान् तक पहुँची भगवान् ने डांटा, फटकारा भिक्षुओं वे मूर्ख इस तरह से दुर्व्यवहार कैसे कर सकता है? इससे लोगों की श्रद्धा पर क्या असर पडेगा? इसके पश्चात् भगवान् ने सारिपुत्र और मोग्गलायन को उपदेशित करते हुये कहा व अश्वजीत आपका शिष्य है आप उसे जाकर किटागिरी से निष्कासित करे।[226] प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा भन्ते हम उसे निष्कासित करने की प्रक्रिया कैसे कर सकते है? वे मनमोजी और कठोर है। तब भगवान् ने ओदश दिया भिक्षु संघ को लेकर जाओं! तदानुरूप वे किटागिरी गये उस भिक्षु को उस पर लगाये गये आरोपों को स्मरण दिलाया संघ ने अपनी प्रक्रिया को पूर्ण किया। अन्त में भगवान् ने इस नियम का प्रज्ञापन किया। इस प्रसंग से भिक्षुओं का सांसारिक जीवन के प्रति झुकाव प्रदर्शित होता है जिसकी आर्यविनय में निन्दा की गई है सांसारिक काम-भोगों के प्रति झुकाव उपासको के सन्दर्भ में सामान घटना हो सकती है। परन्तु यदि यही क्रम भिक्षुओं को अपने पाश में आबद्ध करने लगे तो यह विचारणीय बात हो सकती है। चूँकि हमारा शोध आर्थिक व्यवस्था और उसका प्रभाव के विवेचन से जुड़ा हुआ है, इसलिए हम उनके सांसारिक जीवन के प्रति झुकाव को इस नियम के अन्तर्गत देख सकते है।

2.2.3 निस्सग्गिय पाचित्तिय धम्म,पचित्तिय धम्म एवं पाटिदेसनिय धम्म

निसग्गिय धम्म, पचित्तिय धम्म एवं पाटिदेसनिय धम्म इनके अन्तर्गत ऐसे अपराध आते है जिन्हें घटित होने पर भिक्षु को प्रायश्चित् करने के बाद अपराध मुक्त कर दिया जाता है। इन नियमों में अधिकतर नियम ऐसे है जो उस समय

[226] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि",* पृ.सं. 273

के देश-काल आदि से सम्बन्धित है, किन्तु ऐसे भी कम नहीं जिनका उपयोग सार्वत्रिक न हो। भिक्षु संघ को मुख्यतः चार निश्रय होते है; यथा- चीवर, पिण्डपात, शयनासन और औषधि।[227] इनका उपयोग करते हुए भिक्षु-भिक्षुणियों को संयमित रहना चाहिए।

यथापि भमरो पुप्फं, वण्ण-गन्ध अहेठयं।

पलेति रसमादाय, एवं गामे मुनीचरे।।[228]

अर्थात् जिस प्रकार फूल के वर्ण या गन्ध को बिना हानि पहुँचाये भ्रमर रस को लेकर चल देता है, उसी प्रकार मुनि गाँव में विचरण करे।

इस गाथा के अर्थ नुसार चार निश्रयों का संयम उपयोग करते हुए भिक्षु-भिक्षुणियों अपने चित्त को विमल बनाना चाहिए। जिससे उनका कल्याण हो और श्रद्धावानों की श्रद्धा पर आघात न हो। *"आवुसो, अप्पसन्नानं चेव अप्पसादाय पसन्नानं वा भिय्योभावाय; अथ ख्वेतं, आवुसो, अप्पसन्नानं चेव अप्पसादाय पसन्नानं च एकच्चानं अञ्ञथत्ताया" ति।*[229] अर्थात् अप्रसन्न को प्रसन्न करने के लिए प्रसन्न व्यक्तिओं की श्रद्धा बलवती करने के लिए, हे आयुष्यमानों अप्रसन्न को प्रसन्न करने के लिए प्रसन्न व्यक्तिओं की श्रद्धा बलवती करने के एकार्थ के लिए भिक्षु जीवन है।

भिक्षु-भिक्षुणियों का जीवन सर्वथा उपासक-उपासिकाओं पर ही निर्भर होता है। पूर्वोक्त चार निश्रयों की आवश्यकतानुसार पूर्ति श्रद्धालु उपासक-उपासिकाएँ करते थे। श्रद्धावानों के श्रद्धा की अभिवृद्धि के कारण संघ बढ़ता गया। संघ की सेवा के लिए श्रद्धावानों की श्रद्धा से सुविधाएँ बढ़ती गयी। लोगों की यह मान्यता थी कि "शाक्यपुत्रीय श्रमण संयमित एवं अल्पेच्छ है।" किन्तु जैसे जैसे सुविधाएँ बढ़ गयी विकारयुक्त भिक्षुओं का आचरण धुमील होता गया। तथागत द्वारा

---

[227] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"महावग्गपालि"*, पृ.सं. 100

[228] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"धम्मपद"*, पृ.सं. 13

[229] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाचित्तियपालि"*, पृ.सं. 22

उपदिष्ट धर्मानुसार संघ का जीवन माध्यम मार्ग के सिद्धान्तों पर आधारित था किन्तु उनमें विकृति आ गयी। इन्द्रिय सुख की और कुछ भिक्षुओं की अभिरति बढ़ने लगी। भगवान् ने जिस प्रकार के जीवन को ग्राम्य, हीन एवं अनर्थकारी बतलाया था, उस जीवन की ओर संघ अग्रेषित न हो और श्रद्धावानों की श्रद्धा अटूट रहे इसलिए शास्ता ने यह नियम प्रज्ञप्त किये। इन नियमों पर तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति की निर्भरता और प्रभाव कैसे रहा इसका विभिन्न प्रसगों के द्वारा विवेचन करना यहाँ लक्ष्य है।

सर्वप्रथम चीवर के सम्बन्ध में निस्सग्गीय पचित्तिय से ध्यातव्य है कि एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय शाक्यकुलीन भिक्षु उपनन्द अध्यापन में कुशल थे। किसी अवसर पर एक व्यापारी पुत्र भिक्षु उपनन्द के पास गया, उपनन्द को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। भिक्षु उपनन्द ने उस धनी व्यापारी के पुत्र को उपदेश दिया। भिक्षु के उपदेश से प्रेरित व प्रसन्न होकर भिक्षु से कहा 'आदरणीय आप मुझे बताये आपको क्या चाहिए? मैं आपको वस्त्र, भोजन, आवास और औषधि का दान दे सकता हूँ। उपनन्द ने कहा यदि आप मुझे कुछ देना चाहते है तो आपने धारण किये हुये वस्त्र में से एक वस्त्र दीजिए।'[230]

आदरणीय एक सज्जन के लिये केवल एक वस्त्र आवृत्त करके घूमना लज्जास्पद है। कृपया मेरे घर से आने तक प्रतीक्षा करे। मैं आपको यह वस्त्र अथवा इससे भी उत्कृष्ट वस्त्र दान दूगां। फिर भी उपनन्द ने दूसरी और तीसरी बार धारण किये वस्त्र याचना की। प्रत्युत्तर में व्यापारी पुत्र से वहीं उत्तर मिला तब उपनन्द ने कहा यदि आप देना नहीं चाहते तो मुझे आमंत्रण करने का क्या अर्थ है? भिक्षु के ऐसा कहने पर व्यापारी पुत्र ने अपना एक वस्त्र देकर वह एक ही वस्त्र में वहां से चला गया। जब वह व्यापारी पुत्र घर लौट रहा था तो लोगों

[230] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "पाराजिकपालि", पृ.सं. 305

ने उससे पूछा कि वह एक ही वस्त्र में क्यों घूम रहा है? तो उसने क्रमानुगत उसके साथ घटित घटना को बतलाया। यह सुनकर लोगों ने आलोचना की इन शाक्यपुत्रीय श्रमणों की बड़ी इच्छाएं है। वे सन्तुष्ट नहीं है। उन्हें उचित प्रस्ताव भी देना आसान नहीं है।[231]

पुनः उपनन्द के ही सम्बन्ध में एक प्रसंग है कि एक राजकीय अधिकारी उनका दायक था। एक अवसर पर उस अधिकारी ने चीवर दान करने के उद्‌देश्य से एक दूत के द्वारा चीवर खरीदने के लिये निधि को भेजा। उसने कहा इस निधि से चीवर खरीदो और भिक्खु उपनन्द शाक्य को दे दो। दूत उस अधिकारी के निर्देशानुसार उपनन्द के पास गया और उनसे बोला भन्ते! आपके लिये एक चीवर का निधि लाया हूँ। कृपया इसे स्वीकार कीजिए। उपनन्द ने कहा हम वस्त्र निधि नहीं लेते किन्तु उचित समय पर स्वीकार्य चीवर को ग्रहण करते है। उपनन्द के ऐसे कहने पर दूत ने कहा कोई है जो आपके लिये सेवा प्रदान करता है। उसी समय एक समान्य उपासक किसी कार्य से विहार आया था। भिक्षु उपनन्द ने उस दूत से कहा यह उपासक भिक्षुओं के लिये सेवाएं प्रदान करता है। दूत ने उस उपासक को निधि देकर निर्देश दिया और उपनन्द से कहा भन्ते! मैने उस उपासक को चीवर का निधि और निर्देश दे दिया है। कृपया उचित समय उस उपासक के पास जाकर आप चीवर ग्रहण करे। कुछ समय के पश्चात् राजकीय अधिकारी ने उपनन्द को सन्देश भेजा कि उसके द्वारा दान दिये गये चीवर का वे उपयोग करे। दूसरी और तीसरी बार भी उस अधिकारी ने यहीं सन्देश भिजवाया।[232]

उस समय गृहस्थ संघ ने एक प्रस्ताव पारित किया था कि गृहस्थ संघ की सभा में जो व्यक्ति विलम्ब से आयेगा, उसे पचास मुद्राओं का दण्ड देना पड़ेगा। उस समय उन गृहस्थों ने संघ की बैठक का नियोजन किया। उसी दिन

---

[231] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*, पृ.सं. 305

[232] वही, पृ.सं. 317

भिक्षु उपनन्द चीवर के लिये उस उपासक पास के गये और उससे कहने लगे मुझे चीवर दे दो। उस उपासक ने भिक्षु उपनन्द से कहा भन्ते! कृपया एक दिन प्रतीक्षा करे। आज गृहस्थ संघ की बैठक है। यदि मैं उस सभा में देर से चला गया तो प्रस्ताव के अनुसार मुझे पचास मुद्राएं दण्ड़ देना पड़ेगा। यह बतलाने के बावजूद भिक्षु ने उस उपासक का एक न सुना और दबाव बनाकर चीवर दिलवाने को बाध्य किया। परिणामस्वरूप उस उपासक को गृहस्थ संघ की बैठक में जाने के लिये विलम्ब हो गया। सभा में जाने के पश्चात् अन्य गृहस्थों ने पूछा महोदय, आपको सभा में आने में विलम्ब कैसे हुआ? आपने विलम्ब से आने के कारण अपनी पचास मुद्राएं खो दी है। तत्पश्चात् उन गृहस्थों से चर्चा करते हुये उस उपासक ने उसके विलम्ब होने का कारण बतलाया। उन सभी गृहस्थों ने आलोचना की इन शाक्यपुत्रीय श्रमणों की बड़ी इच्छाएं है। वे सन्तुष्ट नहीं है। उन्हें सेवा प्रदान करना कोई आसान बात नहीं है। सामान्य उपासक द्वारा एक दिन प्रतीक्षा कहने पर वे उसे मानते नहीं है।[233]

पुनः शाक्य उपनन्द के सम्बन्ध में प्रसंग है कि कोई उपासक चीवर देना चाहता था। उपनन्द को इसकी पूर्व कल्पना होने पर उस उपासक के पास जाकर वे कहने लगे मुझे फलां-फलां चीवर दीजिए। क्योंकि जो मैं उपयोग नहीं करूगां उसे देने का क्या मतलब होगा? इस प्रकार कहने पर उस व्यक्ति ने आलोचना की।[234]

भगवान् ने भिक्षुओं से कहा जिनके चीवर चोरी हो गये हो या खो गये हो तो वह उपासक से वस्त्र के लिये कह सकते है। इस बात को जानकर छःवर्गीय भिक्षु गृहस्थों के पास गये और उनके चीवर चोरी होने का कारण बतलाकर उनसे बहुत सारे वस्त्र मांगने लगे। इसके तुरन्त बाद गृहस्थों की सार्वजनिक सभा में एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति से कहा कि शाक्यपुत्रीय श्रमण आये है

---

[233] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*, पृ.सं. 317

[234] वही,पृ.सं. 311

जिनके चीवर चोरी हो गये है। तो मैंने उन्हें वस्त्र दे दिया। तब उस सभा मे उपस्थित अनेक उपासकों ने कहा हमारे पास भी शाक्यपुत्रीय श्रमण आये थे और हमने भी उन्हें चीवर दे दिये। उन लोगों ने भिक्षुओं की आलोचना की शाक्यपुत्रीय श्रमण बिना संयम के अनेक वस्त्र कैसे मांग सकते है? क्या वे कपड़े का व्यापार करने जा रहे है या दुकान खोलने जा रहे है।[235]

पुनः छवर्गीय भिक्षुओं बुनकरों से एक बार चीवर बनवाने के लिए सूत माँगा। बुनकरों से एक बार उनके पास बनवाने वाले कपडे के पश्चात् बचा सूत दे दिया। छवर्गीय भिक्षु बार बार बुनकरों से सूत माँगने लगे और बुनकरों के पास जाकर चीवर बनवाने लगे । तब उन बुनकरों ने उन भिक्षुओं की आलोचना की "शाक्यपुत्रीय श्रमण कैसे धागा मांग सकते थे और फिर बुनकरों से उनके लिए वस्त्र बुनवा सकते थे?"[236] निस्सग्गिय पचित्तिय धम्म से ध्यातव्य है भिक्षु को उद्‌देश्य कर कोई अज्ञातक गृहस्थ पुरूष या स्त्री जुलाहों को चीवर बुनने की आज्ञा दे, उस समय वह भिक्षु चीवर बुनने से पूर्व ही जुलाहों के पास जाकर कहे- "अमुक चीवर मेरे लिये बुनवाया जा रहा है। इसको कुछ लम्बा चौड़ा बुनो। इसे घना, अच्छी तरह तना, खूब अच्छी तरह बुना, अच्छी तरह मला हुआ और अच्छी तरह छाँटा हुआ बनाआ। इसके लिये तुम्हें कुछ अतिरिक्त मजदूरी के रूप में मैं दे दूँगा।"[237]

पात्र के सम्बन्ध में एक समय भगवान् श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय छःवर्गीय भिक्षु कई भिक्षापात्र जमा कर रहे थे। भिक्षापात्र जमा करते हुये घूम रहे भिक्षुओं को गृहस्थों ने देखा तो उन्होंने आलोचना की शाक्यपुत्रीय श्रमण इतने सारे भिक्षापात्र कैसे जमा कर

---

[235] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाराजिकपालि"*, पृ.सं. 308-309

[236] वही,पृ.सं. 362-363

[237] वही,पृ.सं. 364-365

सकते है? क्या वे भिक्षापात्र का व्यापारी के रूप में व्यापार शुरू कर रहे है या दुकान लगा रहे है।[238]

एक समय भगवान् शाक्य देश के कपिलवस्तु में न्यग्रोधाराम में विहार कर रहे थे। उस समय एक कुम्हार ने भिक्षुओं को आमंत्रित करते हुये कहा यदि आप में से किसी को पात्र की आवश्यकता हो तो मैं उन्हें पात्र प्रदान करूंगा। कुछ भिक्षुओं में संयम की भावना नहीं थी, उन्होंने कुम्हार के पास जाकर कई भिक्षापात्र मांगे। जिनके पास छोटे पात्र थे उन्होंने बड़े मांगे और जिनके पास बड़े पात्र थे उन्होंने छोटे पात्र मांगे। कुम्हार भिक्षुओं के लिये पात्र बनाने में इतना व्यस्त हो गया था कि वह स्वयं की जीविका के लिये सामान बनाने में असमर्थ था। पात्र बनाने के कार्य से वह अपना जीविकोपार्जन नहीं कर सका। परिणामस्वरूप उसके पत्नी और बच्चों को कष्ट सहना पड़ा। लोगों ने आलोचना की कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमणों में संयम की भावना नहीं है, वे कुम्हार को कई भिक्षापात्र कैसे मांग सकते है? यह कुम्हार स्वयं की जीविका चलाने के लिये सामान बना नहीं पाया और पात्र बनाने में ही व्यस्त रह गया। जीविकोपार्जन में असमर्थ यह कुम्हार और उसकी पत्नी एवं बच्चे पीड़ित है।[239]

कौषेय मिश्रित कम्बल बनाने की उद्देश्य से छवर्गीय भिक्षु रेशम बनाने वाले के पास जाकर कहने लगे "कृपया रेशम के कीड़ों के ढेर को उबालें और हमें रेशम दें। हम रेशम युक्त कम्बल बनाना चाहते हैं।" रेशम निर्माताओं ने शिकायत की और उनकी आलोचना की, "शाक्यपुत्रीय श्रमण कैसे आ सकते हैं और हमसे ऐसी बातें कह सकते हैं? यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमें अपनी आजीविका के कारण, अपनी पत्नियों और बच्चों के कारण कई छोटे जीवों को

[238] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाराजिकपालि*", पृ.सं. 345
[239] वही, पृ.सं. 348-350

मारना पड़ता है।"[240] इस कारण भगवान् ने "जो भिक्षु कौषेय (रेशम) मिश्रित आसन बनवाये 'निस्सग्गिय पचित्तिय' है"[241] यह नियम प्रज्ञप्त किया।

एक समय श्रावस्ती में भगवान् अनाथपिण्डक के जेतवनाराम में विहार कर रहे थे। उस समय प्रतिवर्ष नवीन कम्बल बनवाते थे। वे उपासकों के पास जाकर याचना करते रहे और कहते रहे, "कृपया ऊन दे दीजिए!" हमें ऊन चाहिए!" इस तरह माँगने पर लोगों ने शिकायत की और उनकी आलोचना की, "शाक्यपुत्रीय श्रमण प्रतिवर्ष नवीन कंबल कैसे बनवा सकते हैं, भिक्षा मांगते है और पूछते है 'कृपया ऊन दें!' हमें ऊन चाहिए!' हम हर पांच या छह साल में केवल अपने लिए कंबल बनाते हैं, भले ही हमारे बच्चे उन पर शौच और पेशाब करते हैं और उन्हें चूहे खा जाते हैं ।"[242] इस प्रकार को सुन शास्ता ने भिक्षु को नया आसन बनवा कर छह वर्ष तक उपयोग में लाना चाहिये। यदि वह छह वर्ष से कम उस का उपयोग कर, उसे हटाकर या न हटाकर भिक्षु-सम्मति के बिना ही नया आसन बनवाये-'निस्सग्गिय पाचित्तिय' है।[243] इस नियम का प्रज्ञापन किया।

विहार के सम्बन्ध में पचित्तिय धम्म से ज्ञातव्य है कि एक समय भगवान् घोषिताराम में विहार कर रहे थे। उस समय एक सरकारी अधिकारी छन्न का दायक था। जो उनके लिए आवास बना रहा था। जब आवास पूर्ण हो गया तब छन्न ने इसकी छत बनवाई और लिपाई-पुताई करवाई। अतिरिक्त भार के कारण वह आवास ढह गया।पुनः उस आवस की मरम्मत के लिए बांस और लकड़ियाँ एकत्रित करते समय छन्न ने एक ब्राह्मण के खेत को बर्बाद कर दिया। उस ब्राह्मण ने आलोचना की शाक्यपुत्रीय श्रमण कैसे मेरे जौ के खेत को बर्बाद कर

---

[240] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाराजिकपालि*", पृ.सं. 321-322
[241] शास्त्री,स्वामी द्वारिकादास," *पातिमोक्खसुत्त* ", पृ.सं.19
[242] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाराजिकपालि*", पृ.सं. 326
[243] वही, पृ.सं. 328

सकते है। तब इस प्रकार की शिकायत को सुनकर भगवान् ने यह नियम बनवाया।[244]

आलवी में भगवान् विहार कर रहे थे। वहाँ की दो घटनाओं से ज्ञातव्य है कि उस समय आलवी के भिक्षु भवन का निर्माण कर रहे थे। तब उन्होंने धरती खोदकर खुदवाई की। लोगों ने आलोचना की यह शाक्यपुत्रीय श्रमण कैसे है, जो एक इन्द्रियों को हनी पहुचातें है। तब "जो कोई जमीन खोदे, खुदवाये-उसे पचित्तिय होगा।[245]

आलवी में ही दूसरी घटना है, किसी एक भिक्षु ने भवन निर्माण की योजना बनाई। भवन निर्माण के लिए वह वृक्ष कटाने जा रहा था। तब उस वृक्ष पर रहने वाले वृक्ष देवता ने कहाँ भन्ते! इस वृक्ष को मत काटो। फिर भी वह भिक्षु नहीं माना उससे उसुस वृक्ष देवता के पुत्र के बाह में चोंट आ गयी। उस वृक्ष देवता को बहुत घुस्सा आया सोचा इस भिक्षु को मार डालें। किन्तु फिर भी उसने मन में विचार किया की यह बात भगवान् को बताये, तदनुसार उसने शास्ता को बतलाया। तत्पश्चात् नियम बना कि हरे "वृक्ष को कटना" 'भूतग्राम (पांच प्रकार की वृक्ष-जातियाँ) का कटना कटवाना पचित्तिय अपराध है।[246] "*यो पन भिक्खु जानं सप्पाणकं उदकं तीणं वा मत्तिकं वा सिञ्चेय्य सिञ्चापेय्य वा, पचित्तियं।*"[247] अर्थात् जो भिक्षु जानबूझकर कीड़े पड़े हुए गन्दे पानी घास या मिट्टी का मैदान सींचे या सींचवाये पचित्तिय है। नियमों के प्रज्ञापन में पर्यावरणीय और शाश्वत विकास के बीज दिखलाई पड़ते है।

पाचित्तियपालि से ज्ञातव्य है एक श्रद्धालु निर्धन मजदूर का उल्लेख मिलता है। उसने अपने मालिक से पैसे मांग कर भिक्षु संघ के साथ बुद्ध को भोजन के लिये आमंत्रित किया। भिक्षुओं ने कदाचित् इस विचार से कि 'यह

---

[244] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाचित्तियपालि*", पृ.सं.71
[245] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*पातिमोक्खसुत्त*", पृ.सं. 25
[246] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाचित्तियपालि*" , पृ.सं.54-55
[247] शास्त्री,स्वामी द्वारिकादास, "*पातिमोक्खसुत्त* ", पृ.सं. 27

दरिद्र क्या भोजन देगा' पहले ही कुछ खा पी लिया, और उसके यहां तैयार किया हुआ बहुत सामान बच गया। वेचारे मजदूर को इससे बड़ा कष्ट पहुँचा। बुद्ध ने शिक्षा दी कि निमंत्रण में आने के पहले ही कुछ खा लेना अनुचित है।[248]

तीसरे पाटिदेसनीय की कथा में एक दरिद्र श्रद्धालु उपासक का उल्लेख आता है जो स्वयं कठिन परिस्थितियों में रहकर भी भिक्षुओं को दान देने में बड़ा उत्साह रखता था। बुद्ध ने आज्ञा दी कि ऐसे कुल को 'सेक्ख कुल' की सम्मति दे दी जानी चाहिये और संघ को इसका निषेध कर देना चाहिये कि कोई भिक्षु भिक्षार्थ उस कुल में न जाय।[249]

भोजन के सम्बन्ध में भी एक समय भगवान् राजगृह के वेनूवन कलन्दक निवास में विहार कर रहे थे। उस समय देवदत्त और उनके शिष्यों को अपने कृत्यों के कारण न तो कोई भौतिक दान देता न सम्मान देता। इस कारण उन्हें भोजन के लिए उपासकों को बारंबार बोलना पड़ता। लोगों ने आलोचना की यह शाक्यपुत्रीय श्रमण लोगो को बार-बार कैसे कह सकते कि उन्हें भोजन पर वे आमन्त्रित करें।[250]

एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवन विहार में विहार कर रहे थे। श्रावस्ती में समीप ही एक सार्वजनिक अतिथी गृह था। जहाँ सभी श्रमण-अजिवको और अन्यान्य लोगों के लिए भोजन बन रहा था। छवर्गीय भिक्षु श्रावस्ती के पात्र-चीवर ले भिक्षाटन हेतु गये भिक्षा न मिलने पर उन्होंने सार्वजनिक अतिथीगृह में भोजन किया। उन्होंने फिर दो-तीन दिन वैसे ही किया। तत्पश्चात् उन्होंने विचार किया विहार जाने का क्या अर्थ है? कल फिर यही आना होगा। इसलिए वह वहीं रुक गये। वह वहीं भिक्षा खाते रहे जबकि अन्य

---

[248] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*पाचित्तियपालि*", पृ.सं.108-109

[249] वही, पृ.सं. 237

[250] वही, पृ.सं. 103

धर्मों के श्रमण, आजीवक चले गये थे। उन भिक्षुओं के इस प्रकार वर्तन की लोगों ने आलोचना की।[251]

इस प्रकार इन नियमों के प्रज्ञापन में तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक स्थिति की महत्तपूर्ण भूमिका दिखलाई पड़ती है। भिक्षुओं के चार निश्रयों के प्रति आसक्ति और उससे भौतिक सुविधाओं के प्रति झुकाव का भी ज्ञान होता है।

2.3 विहारों की आर्थिक व्यवस्था एवं उसका प्रबन्धन

बुद्धपूर्व काल से परिव्राजकों के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त होती है। भगवान् के आविर्भाव के पश्चात् वे जब धम्म के प्रचार के हेतु विभिन्न ग्राम-निगम, जनपदों में जाते थे, उस समय परिव्राजक कहे जाने वाले लोग अन्यत्र इधर-उधर भटकते थे। परिव्राजकों की यह दशा बुद्धपूर्व काल से थी। पालि में परिब्बाजक का उल्लेख प्राप्त होता है। परिब्बाजक से तात्पर्य घूमने-फिरने वाला साधू।[252] भगवान् बुद्ध ने एक संगठित भिक्षु संघ का निर्माण कर श्रमण परम्परा में विद्यमान इस घुमन्तू स्थिति को एक नया आयाम प्रदान किया। संघ के लिए विनयों की प्रज्ञप्ति और विहारों के निर्माण से भ्रमण जीवन को नियमबद्ध करने का मौलिक कार्य तथागत ने किया।

चुल्लवग्ग के सेनासनक्खन्धक से ज्ञातव्य हैं कि *"भिक्खू तहं-तहं विहरन्ति अरञ्ञे, रुक्खमूले, पब्बते, कन्दरायं, गिरीगुहायं, सुसाने, वनपत्थे, अज्झोकासे, पलालपुंजे।"*[253] अर्थात् प्रारम्भ में भिक्षु यत्र-तत्र जंगलों में वृक्षों के नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, वनपथ, खुले मैदान और पुआलपुंज इत्यादि के नीचे ठहरते थे। उनके लिए प्रारम्भ में किसी कृत्रिम विहार का निर्देश नहीं था। राजगृह के एक श्रेष्ठी ने भिक्षुओं को उपर्युक्त स्थानों में ठहरते देखकर उनके लिए आवास निर्माण कराने हेतु भिक्षुओं से स्वीकृति माँगी। भिक्षुओं ने श्रेष्ठी की

---

[251] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पाचित्तियपालि"*, पृ.सं. 100-101

[252] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि हिन्दी कोश"*, पृ.सं. 208

[253] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"चुल्लवग्गपालि"*, पृ. सं. 239

प्रार्थना को भगवान् के समक्ष प्रस्तुत किया। तथागत ने उन भिक्षुओं की बातों को सुन पाँच प्रकार के आवास-स्थलों में भिक्षुओं की ठहरने की अनुमति प्रदान की। अतीतानागत चतुर्दिश भिक्षु संघ के प्रतिष्ठा हेतु तथागत द्वारा निर्दिष्ट पाँच प्रकार के आवास-स्थल होते हैं यथा- विहार, अड्ढयोग प्रासाद, हम्मिय और गुहा।

राजगृह के श्रेष्ठी ने धर्म के प्रचार-प्रसार में दानशीलता एवं निष्ठा को प्रकट करते हुए विहार बनवाये। जिन्हें अतीतानागत चतुर्दिश भिक्षु संघ के लिए प्रतिष्ठित किया गया।[254] सामान्यतः जहाँ भिक्षु निवास करते हैं, उसे विहार करते है। विहार शब्द के विभिन्न अर्थ हैं; यथा- Buddhist Dictionary (Manual of Buddhist Terms and Doctrines) के कर्ता Nyanatiloka के अनुसार विहार का अर्थ 'Abode'[255] अर्थात् निवास स्थान हैं। टी. डब्लु. रीज डेविड्स ने विहार शब्द का अर्थ समय बिताना, एक स्थान पर रुकना, जीवित लोगों के ठहरने का स्थान बताया है। पालि-हिन्दी कोश के रचनकार भदन्त आनन्द कौसल्यायन के अनुसार विहार का तात्पर्य "भिक्षुओं के रहने की जगह अथवा बौद्ध प्रतिमा गृह[256]" है। विहार पूर्णरूपेण भिक्षु आवास थे। भिक्षुओं को जिन-जिन बातों की आवश्यकता होती थी, उनका समावेश विनयपिटक में स्वयं तथागत सम्यक् सम्बुद्ध द्वारा किया गया है। पालि त्रिपिटक साहित्य में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर कह सकते हैं की बौद्ध भिक्षुओं के मुख्यतः दो निवास स्थल थे; यथा- आवास और निवास।

2.3.1 विहार निर्माण व्यवस्था

तथागत ने भिक्षुओं को विहारों में विहार करने की अनुमति दे थी। कुछ भिक्षु आवास बनाते थे या विहार बनवाते थे। लेकिन विहार बनवाते समय विभिन्न

---

[254] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*चुल्लवग्गपालि*", पृ. सं. 240

[255] Nyanatiloka, Buddhist Dictionary (Manual of Buddhist Terms and Doctrines), p. 191

[256] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*पालि हिन्दी कोश*", पृ.सं. 305

चीजों का ध्यान रहना आवश्यता थी। पूवोक्त है कि भगवान् ने विहार बनवाते समय किन-किन चीजों का ध्यान देना चाहिए इसका निर्देशन विनय प्रज्ञापन में दिया था। त्रिपिटक के विनिन्न स्थानों पर विहार दान के उल्लेख प्राप्त है। तद्नुसार विहारों के निर्माण की व्यवस्था में मुख्यतः तीन वर्ग दृष्टिगत हैं: यथा- राजा एवं प्रशासक, व्यापारी और उनकी श्रेणियाँ, उपासक एवं उपसिकाएँ।

2.3.1.1 राजा एवं प्रशासक

विभिन्न ग्राम, नगर एवं जनपदों में तथागत के आदेश का पालन करते हुए भिक्षु संघ धर्म का प्रचार-प्रसार करता रहा । पूर्वोक्त हैं की प्रारम्भ में भिक्षु संघ के लिए आवास और निवास का कोई नियम नहीं था। जैसे जैसे भगवान् के एवं भिक्षुओं के चरिकाओं से लोग प्रभावित होने लगे वैसे वैसे भिक्षु संघ में वृद्धि होने लगी। नवागन्तुकों के लिए धर्म अभ्यास हेतु निश्चय ही एक व्यवस्थित आवास-निवास की आवश्यकता थी। इसी के लिए विहारों का निर्माण कराया गया। विहारों के निर्माण में बुद्धकालीन प्रशासकों में मगध नरेश बिम्बिसार का नाम सर्वप्रथम आता हैं। गोविन्द चन्द्र पाण्डेय के अनुसार "मगध में राजा बिम्बिसार का बुद्ध में श्रद्धालु होकर संघ को वेणुवन का उपहार देना सद्धर्म की प्रगति का एक नया चरण था।"[257]

विनय पिटके महावग्गपालि के बिम्बिसारसमागमकथा से ज्ञातव्य है भगवान् बुद्ध राजगृह में यष्टिवन के सुप्रतिष्ठित चैत्य में विहार कर रहे थे। धम्मदेसना के पश्चात् भिक्षुसंघसहित कल का भोजन मेरे यहाँ स्वीकार करें। भगवान् ने मौन रह कर स्वीकार किया। तब मागध राजा श्रेणिय बिम्बिसार भगवान् की स्वीकृति जान, आसन से उठ, भगवान् को प्रणाम-प्रदक्षिणा कर अपने महल को वापस लौट गया। दुसरे दिन तब भगवान् राजा बिम्बिसार के आवास पर पहुँचे। पहुँचकर विछे आसन पर, भिक्षुसंघ सहित विराजे। तब राजा

[257] पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, *"बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास"*, पृ.सं. 44

बिम्बिसार ने भिक्षुसंघसहित भगवान् बुद्ध को उत्तम एवं रुचिकर खाद्य भोज्य पदार्थ अपने हाथ से परोसे। अन्त में भगवान् को पात्र से एकान्ततः हाथ हटाया हुआ देखकर उन्हें तृप्त हुआ जानकर राजा एक ओर बैठ गये।

एक ओर बैठे राजा बिम्बिसार के मन में यह विचार उठा-"अब भगवान् कहाँ रहकर साधना करें? यह साधनास्थल ऐसा होना चाहिये जो ग्राम से न अधिक दूर हो न अधिक समीप ही, वहाँ जाना चाहने वाली धर्मप्राण जनता के लिये वहाँ आना जाना सुविधाजनक हो, दिन में जहाँ अधिक भीड़ (जनसम्मर्द) न हो और रात्रि में अधिक कोलाहल न हो, साधना के लिये एकान्त स्थल हो तथा एकान्तवास के योग्य हो।" फिर राजा ने सोचा- "तो क्यों न मैं अपना वेणुवन उद्यान बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ को दान कर दूँ।" तब राजा बिम्बिसार ने जलपूर्ण सुवर्णपात्र लेकर भगवान् को दान का सङ्कल्प किया- "भन्ते। मैं यह वेणुवन आज से आपसहित भिक्षुसंघ को दान करता हूँ।" भगवान् ने वह आराम (उद्यान) स्वीकार किया। तब भगवान् ने राजा बिम्बिसार को (दान शील विषय की) धर्म-कथाएँ कहकर धर्म के प्रति सावधान, उत्साहित, समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट किया फिर आसन से उठकर चल दिये।

तदनन्तर भगवान् ने इस प्रसङ्ग में भिक्षुओं को सम्बोधित किया- "भिक्षुओं! अनुमति देता हूँ आराम का दान लेने की।"[258]

बुद्धकालीन भारतवर्ष में कोसल एक शक्तिशाली महाजनपद था। कोसल का शासक प्रसेनजित (पसेनदि) था। चुल्लवग्गपालि के अनाथपिण्डिकवत्थु से ध्यातव्य है कि कोसल नरेश के पुत्र जेतकुमार से अनाथपिण्डक ने भगवान् तथा भिक्षुसंघ के दान हेतु जेतवन को खरीद लिया था। त्रिपिटक साहित्य में अधिकांश स्थानों पर श्रावस्ती के महाश्रेष्ठी सुदत्त के लिये अनाथपिण्डक नाम प्रयुक्त किया गया हैं। निराश्रित अनाथों को पिण्ड दान देने के कारण वह इस

[258] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*महावग्गपालि*", पृ. सं. 38

नाम से जाना जाता था।[259] अनाथपिण्डक गृहपति किसी प्रयोजन विशेष से राजगृह गया था। उस समय राजगृह का गृहपति श्रेष्ठी उसका भगिनीपति था। जिसके यहाँ पहुचने के पश्चात् उसे ज्ञात हुआ कि उसके भगिनीपति द्वारा भिक्षुसंघ सहित भगवान् के लिए निमन्त्रित कर रखा है। यही राजगृह के शीतवन में सर्वप्रथम अनाथपिण्डक की भेंट भगवान् से हुई। भगवान् के उसे "आओ सुदत्त! कहकर नामग्रहणपूर्वक बुलाया। भगवान् द्वारा धम्मदेसना प्राप्त करने के पश्चात् अनाथपिण्डक गृहपति ने भगवान् , भगवान् द्वारा प्रवर्तित धम्म एवं भिक्षुसंघ की शरण को स्वीकार कर लिया। "आप आज से मुझे मेरे अपने प्राण रहने तक अपना शरणागत उपासक समझें।" राजगृह के श्रेष्ठी के निवास पर ही भिक्षुसंघ सहित भगवान् के दुसरे दिन के भोजन का भी निमन्त्रण भी कर दिया। राजगृह में अपना कार्य सम्पन्न कर वह श्रावस्ती के लिए प्रस्थान कर गया। अनाथपिण्डिक गृहपति ने श्रावस्ती पहुँच कर यह देखना आरम्भ किया कि "भगवान् के लिये किस स्थान पर आवास बनवाना सर्वथा सुविधाजनक होगा? जो ग्राम से बहुत दूर भी न हो और न बहुत समीप ही; जहाँ आने जाने की सब सुविधाएँ हों, प्रयोजन वाले पुरुषों की पहुँच के अन्दर हो, जहाँ दिन में भी मनुष्यों की भीड़ (सम्मर्द) कम रहती हो, रात्रि में हिंसक पशुओं के शब्द कम हो, मनुष्यों की गन्ध कम हो, मनुष्यों से एकान्त हो और सब से अधिक भिक्षुभावना (ध्यान-समाधि) के अनुकूल हो। यह सोचते विचारते हुए वह जेत राजकुमार के उद्यान में पहुँचा जो ग्राम से न बहुत दूर था।[260] उस उद्यान को देख कर वह जेत राजकुमार के पास गया और बोला- आर्यपुत्र! आप अपना उद्यान मुझ को दे दीजिये, वहाँ मैं (भिक्षुओं के लिये) आराम बनवाऊँगा।" (जैत ने उत्तर दिया)- "गृहपति! यदि तुम एक करोड़ धन भी देओ तब भी मैं तुम की अपना यह उद्यान नहीं दूंगा।" यह सुन कर अनाथपिण्डिक गृहपति ने प्रसन्नता

[259] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*चुल्लवग्गपालि*", पृ. सं. 250
[260] वही, पृ. सं. 252

से कहा- "खरीदा गया, राजकुमार। अब यह उद्यान मेरा हो गया।" अभी मैने इस का मूल्य बताया ही नहीं, तुम्हारा कैसे हो गया!" "क्यों कि, राजकुमार । तुमने इस का मूल्य बोल दिया (यह मूल्य मैं दूँगा) अतः यह मेरा हो गया।" "अब यह उद्‌घान किसके स्वामित्व में है" इस का निर्णय न्यायाधीशों से कराया गया तो उन का भी निर्णय यही था। वे बोले-"राजकुमार! क्यों कि तुमने इस का क्रयमूल्य बोल दिया, अतः इतना मूल्य देने पर यह उदधान अनाथपिण्डिक गृहपति का ही है।" तब अनाथपिण्डिक गृहपति ने उतना (एक करोड़) धन गाड़ियों पर लदवा कर जेतवन में ले जा कर वहाँ बिछवा दिया। परन्तु उस एक बार में लाये गये धन से जेतवन के द्वार के समीप का कुछ स्थान खाली रह गया। तब गृहपति ने अपने आदमियों से कहा- "जाओ। घर से कुछ और सुवर्ण ले आओ। और इस स्थान पर उसे बिछा दो।[261] तब जेत राजकुमार के मन में यह विचार हुआ-" अवश्य ही यह कोई कम महत्त्वपूर्ण बात न होगी, जिस के लिये यह गृहपति इतने धन का त्याग कर रहा है। और उसने गृहपति से कहा- "बस, गृहपति। अब उद्यान के इस कोने को सुवर्ण से ढकने की आवश्यकता नहीं है। इतना कोना मेरे लिये छोड़ दो, यह मेरा दान होगा।" तब वह गृहपति ने- "यह जेत राजकुमार कुलीन पुरुष है। ऐसे कुलीन पुरुषों को ऐसे धर्मविनय में बढ़ा होना बहुत महत्त्वपूर्ण होगा।" यह सोचते हुए अपने अवशिष्ट स्थान राजकुमार के लिये छोड़ दिया। समय आने पर राजकुमार ने उस स्थान पर एक कोठा बनवाया।

तब अनाथपिण्डिक गृहपति ने उस जेतवन में अनेक भिक्षुआवास बनवाये, परिवेण बनवाये, कोठे बनवाये, अतिथिशाला एवं भोजनागार बनवाये, अग्निशालाएँ बनवायीं, स्नानघर एवं शौचालय बनवाये, चंक्रमण बनवाये, चंक्रमणशालाएँ बनवायीं, कुए बनाये, पानीयशाला बनवायीं, जन्ताधर एवं

[261] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*चुल्लवग्गपालि*", पृ. सं. 253

जन्ताधरशालाएँ बनवायर्थी, पुष्करणियाँ खुदवायों एवं मण्डप बनवाये। इस विहार नाम सुत्तों में "*जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे* [262]"इस प्रकार इस विहार को 'अनाथपिण्डक का जेतवनाराम' सम्बोधित किया जाता था। संक्षेप में इसे जेतवन विहार के नाम से जाना गया।[263] भगवान् अपना सर्वाधिक समय जेतवन में बिताया। तथागत ने पच्चीस वर्षावास कर भिक्षुओं एवं गृहस्थों को उपदेश दिए।

धम्मपद अट्ठकथा के अनुसार बुद्ध के जीवन काल में ही मृगदाव (सारनाथ) मे दो विहारों का निर्माण कराया गया, इनमें से एक के निर्माण का श्रेय बनारस के धनी व्यापारी नंदिय को दिया जाता है।[264] इसके अतिरिक्त अन्य गृहपतियों द्वारा भी विहार दान के उल्लेख प्राप्त है; यथा- "कुक्कुट ने कुक्कुटाराम,"[265] "घोषित ने घोषिताराम,"[266] पावारिक ने "पावारिक अम्बवन,"।[267]

2.3.1.2. उपासक-उपासिकाओं द्वारा

विहारों के निर्माण एवं उनकी व्यवस्था के क्रम में उपासक-उपासिकाओं के योगदानभी अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। चुल्लवग्ग के नवकम्मदानं से ध्यातव्य है कि "*तेन खो पान समयेन मनुस्सा सक्कच्चं नवकम्म करोन्ति*"[268] अर्थात् उस समय सत्कारपूर्वक विहारों निर्माण कराते थे। सत्कारपूर्वक विहार दान के लिये उपासक-उपासिकाओं में जीवक, आम्रपाली, विशाखा इत्यादि का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है।

जेतवन के बाद दूसरा स्थान पुब्बाराम विहार (पूर्वाराम) है। बौद्ध धर्म और बिहार में श्रीहवलदार त्रिपाठी ने लिखा है कि "विशाखा ने श्रावस्ती में भिक्षुसंघ के लिए 'पूर्वाराम' नामक विहार का निर्माण कराया था, जो

---

[262] भिक्षु धर्मरक्षित, "*सुत्तनिपात*", पृ.सं. 50
[263] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*चुल्लवग्गपालि*", पृ. सं. 259
[264] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास,(अनु.), "*धम्मपद-अट्ठकथा*", *तृतीय भाग,* पृ.सं. 1427
[265] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*संयुत्तनिकायपालि*", (महावग्गो), पृ.सं. 15
[266] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*मज्झिमपालि*", (मूलपण्णास), पृ.सं. 393
[267] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*दीघनिकायपालि*", भाग 3, पृ.सं. 668
[268] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*चुल्लवग्गपालि*", पृ.सं. 387

'मिगारमातुपासाद' के नाम से भी अभिहित होता है। यह विहार दो-मंजिला बना था और नौ मास में तैयार हुआ था। इसके निर्माण में उनतीस करोड़ मुद्राएँ व्यय हुई थी। इस घटना के के समय भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के ही विहार में थे।"[269] "धम्मपद अट्ठकथा" में उक्त विहार के निर्माण की कथा निम्न प्रकार से मिलती है। "धम्मपद अट्ठकथा" के अनुसार एक दिन विशाखा अपनी प्रियदासी सुप्रिया के साथ भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ एवं उनकी धम्मदेसना श्रवण करने गयी थी। विशाखा धम्मदेसना श्रवण करने समय अपने बहुमूल्य अलङ्करणों को उतारकर रख देती थी। उस दिन उसे विहार में उतारकर रखे अपने बहुमूल्य अलङ्करण का विस्मरण हो गया। बाद में उसे यह सूचना दी गई, तो उसने वह बहुमूल्य अलङ्करण को लेने से मनाकर दिया।[270] बाद में उसने वह हार बौद्ध संघ से कुछ करोड़ मुद्राओं में स्वयं खरीद लिया और नौ करोड़ रुपये की जमीन खरीदकर उसने वहाँ पूर्वाराम विहार बनवाया, जिसमें बीस करोड़ काषार्पण और लगे। पूर्वाराम विहार महामौगल्यायन की देखदेख में बनाया गया। कहते कि यह विहार दुतल्ला था और इसकी बनावट इतनी आलंकारिक सी उसमें रहना बुद्ध के निर्देशों के अनुकूल होगा या नहीं, सोचनीय विषय गया। इस विहार के निचले हिस्से में 500 और ऊपरी तलते में भी 500 कोठरियों बनी थीं।[271]

2.3.2 विहार संचालन के आर्थिक स्त्रोत

त्रिपिटक साहित्य से ज्ञात होता हैं कि तथागत ने अपने उपदेशों को प्रमुखतया मगध, कोसल जनपद एवं शाक्य,लिच्छवी और मल्ल गणराज्यो में दिया। तथागत और उनके सद्धर्म की उद्भावक, पोषक एवं संचालक भूमि को

---

[269] त्रिपाठी, हवलदार, *"बौद्धधर्म और बिहार"*, पृ.सं. 140

[270] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास,(अनु.), *"धम्मपद-अट्ठकथा", प्रथम भाग,* पृ.सं. 563

[271] वही, 565-569

प्राच्य देश या पूर्व देश कहा जाता है।[272] भगवान् का अधिकतर अवस्थान श्रावस्ती एवं राजगृह में ही प्राप्त होता है। भगवान् बुद्ध के निवास एवं उपदेश भूमियों की सदिशा सीमांकन करने के परिप्रेक्ष्य में हम पश्चिम दिशा में तत्कालीन वत्स जनपद के कौसाम्बी (राजधानी) नगर का नाम पाते हैं, जहाँ पर भगवान् ने निवास एवं उपदेश दोनों किया था।[273] पूर्वी दिशा के सीमांकन में हमें राढ़ के सेतक नाम के सुह्य निगम तक अथवा कजंगल तक बताई गयी है। पुनः गोविन्द चन्द्र पाण्डेय का कथन है कि "भगवान् ने अपने चारिका के 12वें वर्ष में मथुरा के निकट वेरञ्ज नामक स्थान पर वास किया था, जहाँ आपको कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई।"[274] वहाँ से वापस वाराणसी आते समय बुद्ध ने सौरेय्य, संकस्स, कण्णकुञ्ज तथा पयागपतिट्ठान नामक स्थानों की चारिका की। उत्तर में थुल्लकोडि नाम के ब्राह्मण निगम एवं कुरू जनपद के कम्मास धम्म तक आपकी यात्रा बताई गई।[275] तथागत अपने शिष्यों को सद्धर्म के प्रचारार्थ चारिका हेतु प्रोत्साहित किया करते थे। बिम्बिसार एवं वैशाली के जन समूह की माँग, ऋतुओं के सम्मिलन काल के उपरान्त आए वर्षाकाल में चारिका जारी रखने में आने वाली कठिनाइयों एवं अपनी समस्याओं के युक्तिपूर्ण एवं तर्कसंगत समाधान के लिए उचित माध्यम के रूप में अभिहित विहारों के निर्माण होने के सन्दर्भ त्रिपिटक में प्राप्त होते है। समय के साथ अपनी विस्तार क्षमता को बढ़ाते हुए यही विहार कालान्तर में महाविहारों के रूप में अभिसिंचित हो पल्लवित होते रहे। विहारों के संचालन के आर्थिक स्त्रोत निम्नवत हैं; यथा-दान, भिक्षा और अन्य ।

---

[272] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*चुल्लवग्गपालि*", पृ. सं. 425

[273] पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, "*बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास*", पृ.सं. 154

[274] वही,

[275] वही,

2.3.2.1. दान

भगवान् बुद्ध की देशना में अनेक स्थानों पर दान के उल्लेख प्राप्त हैं। जिनमें दान की महत्ता और उसके पुण्य का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। अङ्गुत्तर निकाय के दुतिय निपात ततियपण्णासक, दानवग्ग से ज्ञातव्य हैं कि *"द्वेमानी, भिक्खवे दानानि। कतामानि द्वे? आमिसदानञ्च धम्मदानञ्च। इमानि खो भिक्खवे द्वे दानानि।"*[276] अर्थात् भिक्षुओं दो प्रकार के दान होते है; यथा – आमिष दान और धम्म दान। चुल्लवग्गपालि में *आमिसदानवत्थु*[277] का उल्लेख है।

शास्ता ने भिक्षुओं को आदेश दिया था कि बुद्ध, धम्म और संघ के प्रति आदरयुक्त व्यवहार न रखने वालों तथा त्रिरत्नों की निन्दा करने वालों द्वारा दिया दान स्वीकार न करें। दायकों को लिए उन्होंने बताया कि दान देकर दाता को यह नहीं समझना चाहिए कि मैंने कोई बड़ा पुण्य किया है, जिसके फलस्वरूप मुझे ऐहिक सुख के साथ-साथ धन, सम्मान, सन्तति सुख और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग सुख मिलेगा। तथागत द्वारा स्थापित संघ तो मुख्यतः उपासक-उपासिकाओं के दान पर ही निर्भर रहा है। भिक्षु संघ का और विहारों-संघारामों का संचालन दान से ही होता रहा है।

त्रिपिटक साहित्य में अनेक स्थानों पर उपासकों द्वारा भिक्षु संघ को भोजन, वस्त्र, शैय्या और औषधि दान देने का उल्लेख प्राप्त है। इन चार निश्रयों के दान का फल यह बताया गया है कि देने वाला दायक इस लोक में सुख एवं यश को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं इस लोक का अतिक्रमण कर मरणोपरान्त उसे स्वर्ग सुख प्राप्त होता है। तथागत के अनुसार दान वही सात्विक है जिसमें दाता और गृहीता दोनों के भाव पवित्र हों और दोनों शीलों का पालन करने वाले हो।

---

[276] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 1, पृ.सं. 124

[277] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"चुल्लवग्गपालि"*, पृ. सं. 389

2.3.2.2. भिक्षा

पालि में इसे 'भिक्खा'[278] कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ भिक्षा है। अमरकोषः के अनुसार सेवा आराधना, अर्थना याचना, भृतिर्भरण्या च भिक्षा स्यात्। भिक्षणाम् भिक्ष्यते वा "भिक्ष याच्ञादौ" अस्माभ्दावे कर्मणि वा अप्रत्यये टापि च भिक्षा "भिक्षा भृतौ च याच्ञायां सेवाभिक्षितवस्तुनोः"[279] अर्थात् भारतीय सभ्यता, संस्कृति, रीति, परम्परा, शिक्षा, विज्ञान, ज्ञान, प्रज्ञा, धर्म, शास्त्र, कला इत्यादि सभी को किसी अन्य की तुलना में कहीं अधिक सिंचित, पोषित, पल्लवित करने का कार्य भिक्षाटन ने किया है। प्राचीन भारतवर्ष में भिक्षाटन की परम्परा केवल जीविकोपार्जन का माध्यम नहीं रहा है। भारतीय सभ्यता, संस्कृति के आधार स्तम्भ ऋषियों, मुनियों, भिक्षुओं, संतों, साधुयों ने भिक्षाटन को आधार प्रदान किया है। प्राचीन भारतवर्ष की वास्तविक आध्यात्मिक परम्परा एवं शिक्षा व्यवस्था का आर्थिक आधार भिक्षाटन ही रहा है। प्राचीन भारतीय परम्परा में ऋषियों से महावीर स्वामी और भगवान् बुद्ध ने भी अपने संघ के लिए भिक्षाटन के माध्यम से भारतीय जन-मानस तक जोड़ने का प्रयास किया है।

भिक्षाटन एक तरफा सहयोग भी नहीं है। बुद्धकालीन भारतवर्ष में ऋषियों, मुनियों, भिक्षुओं, श्रमणों के बीच परस्पर सहयोग होता है। ग्रामीणों और भिक्षाटन करने वाले ऋषियों, मुनियों, भिक्षुओं, श्रमणों के बीच परस्पर सहयोग था। ग्रामीण इन गृहत्यागीयों का ख्याल भिक्षाटन द्वारा रखते थे, यह श्रमण-जन अपने शोध, विचार, बाह्य एवं आन्तरिक विश्व के ज्ञान इत्यादि से इन ग्रामीणों को अवगत कराते थे। यही कारण है कि भारत में बड़े उदेश्यों की पूर्ति में व्यापक व्यापक जनभागीदारी को सम्मलित करने हेतु भिक्षाटन किया जाता है। इससे भिक्षा लेने वाले को तो यह अहसास रहता ही है कि इसमें जनता की पूंजी और श्रम लगे

---

[278] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*पालि हिन्दी कोश*", पृ.242

[279] त्रिपाठी, रमाशङ्कर, "*अमरकोषः*", पृ.544-545

है, वहीं भिक्षा देने वालों को अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह उस उक्त उद्देश्य में अपनी हिस्सेदारी मान ले।

प्राचीन भारत में आध्यात्मिक मार्ग पर मार्गक्रमण करने वाला व्यक्ति अगर आपके घर के सामने खड़े होकर भिक्षा के लिए आता है और आप उस भिक्षु या श्रमण को भोजन देते, तो यह दोनों के लिए सौभाग्य की बात मानी जाती थी। एक आध्यात्मिक व्यक्ति चाहे वह भिक्षु हो अथवा श्रमण चेतनता में भिक्षा माँगता है। एक सामान्य याचक जिसे सरल भाषा में भिखारी कह सकते है, वह असहाय अवस्था के कारण मजबूरी से भिक्षा माँगता है। लेकिन एक भिक्षु या श्रमण अपने आध्यात्मिक विकास के लिए पूर्ण चेतनता से भिक्षावृत्ति को अपनाता है। वह इस चीज का निश्चय ही ध्यान रखता है कि शरीर के पोषण के अतिरिक्त संग्रह न हो। भिखारी के ऐसे महान लक्ष्य नहीं होते। वह बस अपना पेट भरने की कोशिश करता है, जो वह अपने दम पर करने में असमर्थ है। एक आध्यात्मिक व्यक्ति भिक्षा इसलिए माँगता है क्योंकि वह स्वयं को अहं से मुक्त करना चाहता है। सामान्यतः 'मैं अपनी जीविका स्वयं कमाता हूँ, मेरा पैसा, मेरा भोजन, मेरा घर' यह हमारे अहं का एक बड़ा हिस्सा होता है। एक भिक्षु या श्रमण इस प्रकार के अहंकार को त्यागने के लिए पूर्ण सजगता से भिक्षाटन करता है। वह पूर्णरूप से जागरुक होते हैं कि उनकी स्वयं की अपनी जीविका कमाने की क्षमता है, फिर भी आत्मदमन के लिए वह भिक्षा माँगते है। व्यक्ति के अन्दर आमूलाग्र बदलाव लेन के लिए भिक्षा एक महत्त्व पूर्ण सोपान भारतीय प्राचीन परम्परा ने माना है।

भगवान् बुद्ध भी किसी व्यक्ति के केवल भिक्षाचार से उसे भिक्षु स्वीकार नहीं करते। जीविका के लिए भोजन की आवश्यकता होती है, जो की गृहत्यागियों के लिए भिक्षाटन से उपलब्ध होता है। तथागत का मानना है कि

भिक्षा ग्रहण करने के पीछे व्यक्ति का उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य होना चाहिए। धम्मपद के धम्मट्ठवग्ग से ज्ञातव्य है की

"न तेन भिक्खु सो होति, यावता भिक्खते परे।

विस्सं धम्मं समादाय, भिक्खु होति न तावता॥[280]"

अर्थात् दुराचरण-युक्त मनुष्य दूसरों से भीख माँगनेवाला होने (मात्र) से भिक्षु नहीं होता। इस प्रकार भिक्षाचरण से केवल शरीर का भरण-पोषण हो सकता है किन्तु शास्ता के अनुसार भिक्षु पद का उत्तराधिकारी नहीं। पुनः दूसरी गाथा में कौन भिक्षु पद को धारण करने योग्य है उसे भी तथागत ने बतलाया है।

"न तेन भिक्खु सो होति, यावता भिक्खते परे ।

विस्सं धम्मं समादाय, भिक्खु होति न तावता॥"[281]

अर्थात् जो पुण्य और पाप से परे हो गया है, जो ब्रह्मचारी है, जो ज्ञानपूर्वक लोक में विचरण करता है, वह भिक्षु है।

धम्मपदट्ठकथा से ज्ञातव्य है कि धम्मपद के धम्मट्ठवग्ग की इन दोनों गाथाओं के स्पष्टीकरण स्वरुप इस प्रसंग को उद्धृत किया है- यह धर्मदेशना भगवान् ने जेतवन में साधना करते हुए, किसी ब्राह्मण को दी थी। यह ब्राह्मण किसी बौद्धेतर सम्प्रदाय में प्रव्रजित होकर भिक्षा करता हुआ कभी विचार करने लगा "श्रमण गौतम अपने शिष्यों को, भिक्षा करने के कारण, 'भिक्षु' कहते हैं, तब तो मैं भी भिक्षु हूँ, क्योंकि भिक्षा करता हूँ।" यह शास्ता के पास जाकर बोला "भो गौतम! मैं भी भिक्षाचार करता हुआ जीवनयापन करता हूँ, मुझे भी आप 'भिक्षु' बोलिये।" तब उसको शास्ता ने यों उत्तर दिया "ब्राह्मण ! मैं किसी को, केवल भिक्षा करने मात्र से 'भिक्षु' सम्बोधन नहीं करता । विषम धमों का पालन करने वाला 'भिक्षु' कैसे हो सकता है ! हाँ, जो सभी संस्कारों में ज्ञानपूर्वक

---

[280] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "धम्मपदं", पृ.सं. 63

[281] वही, पृ.सं. 64

व्यवहार करता है वही वास्तविक 'भिक्षु' है। इस प्रसंगानुरूप भगवान् ने वास्तविक भिक्षु का स्वरुप और भिक्षा के उद्देश्य को इन गाथाओं के माध्यम से स्पष्ट किया।

2.3.2.3. अन्य

संघ के लिए आर्थिक पक्ष का अन्य घटक मुख्य रूप से राजाश्रय रहा है। भगवान् तथागत के महापरिनिर्वान के कुछ सप्ताहों के पश्चात् ही राजगृह की सप्तपर्णी नामक गुफा में हुई। सद्धम्मसङ्गहो से ज्ञातव्य है कि *"अथ थेरा भिक्खू दुतिये दिवसे कतभत्तकिच्चावसाने पत्तचीवरं पटिसामेत्वा अजातसत्तुना कतधम्मसभायं सन्निपतिंसु।"*[282] अर्थात् थेर भिक्षुगण दूसरे दिन भोजन करके, पात्र-चीवर तैयार करके, अजातसत्तु द्वारा बनाए गए धर्म सभा में एकत्र हुए। यह राजाश्रय का पहला उदहारण है। इस प्रथम धम्म-संगति में मगध नरेश अजातसत्तु ने आश्रय देना भविष्य के लिए एक बड़ा अवदान दिया।

भिक्षु संघ और विहारों का आर्थिक व्यवस्थापन मुख्यतः आग जन-मानस पर ही आश्रित रहा है। पूर्वोक्त है कि दान और भिक्षा बौद्ध संघ के प्रारम्भिक आश्रयों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता रहा है। जैसे जैसे समय बितता गया वैसे वैसे भिक्षु संघ और विहारों का अत्यधिक निर्माण कार्य हुआ। परवर्ती काल में बढ़ते हुए विहारों और संघ के प्रभाव से बौद्ध संघ के लिए राजाश्रय भी बढ़ने लगा। "मौर्य साम्राज्य ऐसा पहला अखिल भारतीय साम्राज्य था, जो सद्धर्म के पुष्पन एवं पल्लवन में अपने महान सम्राट अशोक के उद्यमों से अत्यधिक प्रभावी और सहायक रहा। तथागत के बाद सम्राट अशोक ने धम्म के प्रति श्रद्धाभाव से विहारों, चैत्यों एवं स्तम्भों को चतुर्दिक स्थापित किया गया।"[283] धर्म के संवर्धन के क्रम में अशोक, कनिष्क, पाल, गुप्त एवं सातवाहन राजाओं ने अप्रतिम योगदान दिया। "लगभग सम्पूर्ण भारत, श्रीलंका, बर्मा, थायलंड, तिब्बत, चीन,

---

[282] सिद्धार्थ, *"सद्धम्मसङ्गहो"*, पृ.सं. 4

[283] मजूमदार, रमेशचन्द्र, *"प्राचीन भारत"*, पृ.सं. 90

कोरिया, जावा, सुमात्रा, जापान और इंडोनेशिया देशों में राजाश्रय प्राप्त यह धर्म अपनी जड़े गहरे से जमाने में सफल रहा।"[284]

भगवान् बुद्ध के इस धर्म को विश्व धर्म बनाने और सम्पूर्ण भूमण्डल में इसे अक्षुण्य रखने में अशोक, कनिष्क, धर्मपाल, हर्ष, कुमारगुप्त, महेन्द्रादित्य एवं गौतमीपुत्र सतकर्णी इत्यादि राजाओं के राजाश्रय की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। विभिन्न राजाओं उनके राज्य के आर्थिक स्तम्भ रहे श्रष्ठियों व प्रशासकों ने विहारों-संघारामों के संचालन एवं निर्माण कार्य में सक्रिय योगदान दिया। न केवल उक्त वर्णित लोग अपितु राजाओं के परिजनों और सम्बन्धियों द्वारा, धनियों, गृहपतियों द्वारा विहारों के प्रशासन व आर्थिक संचालन के लिए उदार ह्रदय से दान का क्रम अनवरत जरी रहा। सद्धर्म की उन्नति के लिए और सदैव निर्माण-कार्य, व्यवस्थापन व संचालन हेतु सेट्ठी, धनिकों एवं गृहपतियों के दान के साथ-साथ राजश्रय भी क्रियाशील रहा।

[284] बापट, पी.वी., "*बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष*", पृ.सं. 20

तृतीय अध्याय
सुत्तों में आगत बुद्ध कालीन आर्थिक व्यवस्था

अभिसम्बोधि प्राप्त करने के पश्चात् पैंतालीस वर्ष की अपनी चारिका काल में ग्राम-निगम और जनपद में विचरण करते हुए भगवान् बुद्ध ने अपने मुख से जो-जो उपदेश दिये, अपने जीवन और अनुभवों के विषय में उन्होंने जो-जो कहाँ, जिन-जिन व्यक्तियों से उनका या उनके शिष्यों का सम्पर्क या संलाप हुआ, जिन-जिन प्रदेशों में उन्होंने भ्रमण किया, बहुजनों के हित एवं सुख के लिए जिस कल्याणकारी मार्ग का प्रतिपादन किया और जिस प्रकार चारिका-काल में उनकी दिनचर्या रही, उसी का यथावत विवरण सुत्तों में संग्रहित है। ज्ञातव्य है कि विनय के अतिरिक्त शेष उपदेशों को सुत्तों के अन्तर्गत संकलित किया गया है। जिसमें सम्पूर्ण सुत्त और अभिधम्मिक मातिकाएँ संकलित थी। विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि 'सुत्त' त्रिपिटक साहित्य का सबसे महत्त्व पूर्ण भाग हैं। जिसका कारण यह है कि इसमे तत्कालीन ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतीक पृष्ठभूमि का विवरण प्राप्त होता है। तत्कालीन भारतवर्ष की स्मृतियों के साथ-साथ उसमे भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धर्म-ज्ञान का भी अंकन है। ''भगवान् बुद्ध के धम्म का तथातथ्य रुप में परिचय कराना ही सुत्तों का एकमात्र विषय है।"

3.1 सुत्तों का परिचय

'अत्थे सुच्छेती' ति सुत्तं' अर्थात् जिसमें अर्थ को प्रकट किया गया है, वह सुत्त कहलाता है। दूसरे शब्दों मे जो सुन्दर रूप से उक्त है वह उपदेश सुत्त कहा जाता है। समन्तपासादिका की बाहिरनिदान कथा मे कहा गया है- "सुत्तनामकं तथागतवचनं सुत्तन्ति वेदितब्बं।"[285] अर्थात् सुत्त नामक तथागत के वचनों को जिस पिटारी में रखा गया है, उसे सुत्तपिटक कहा जाता है। अब

[285] शर्मा, बीरबल, *"समन्तपासादिका"*, पृ. सं. 25

प्रश्न यह है कि क्या सुत्तपिटक में आगत सभी वचन बुद्धवचन कैसे हो सकते है? क्योंकि कुछ सुत्त ऐसे भी संगृहित हैं जिन्हें अधिगमसम्पन्न भिक्षुओं द्वारा दिया गया हैं। परम्परा का इसके प्रतिपक्ष में उत्तर यह है कि दो प्रकार से बुद्धवचन मान्य हैं एक जिन्हें स्वयं शास्ता के द्वारा भाषित किया गया है और जिन्हें शास्ता द्वारा अनुमोदित किया गया उन सभी वचनों को बुद्धवचनों के रुप में स्वीकार कर लिया हैं। आचार्य बुद्धघोष ने समन्तपासादिका की बाहिरनिदान कथा तथा अट्ठसालिनी की निदानकथा में सुत्त शब्द में छः अर्थो को सन्निहित माना है-

अत्थानं सूचनतो, सुवुत्ततो, सवनतो'च सूदनतो।

सुत्ताणा सुत्तसभागतो'च सुत्तं सुत्तं' ति आक्खातं।[286]

1.अर्थों की सूचना देने के कारण, 2.सुन्दर रूप से उक्त होने के कारण, 3.अर्थों को जन्म देने के कारण, 4.अर्थों को स्त्रावित करणे के कारण, 5.सुन्दर रूप से अर्थों की रक्षा करने के कारण, 6.'सुत्त' (सूत) के समान होने के कारण ही सुत्त कहा गया है।

3.1.1 सुत्तों की शैली

पालि त्रिपिटक में आगत सुत्तों की शैली न केवल पद्यात्मक है अपितु गद्यात्मक भी है। सुत्तों के अन्तर्गत में पद्यात्मक सुत्तों की अपेक्षा गद्यात्मक सुत्त ही अधिक हैं। गद्यात्मक सुत्तों की शैली सर्वत्र एक सी है। उनका आरम्भ इस प्रकार होता है यथा- *'एवं मे सुतं*[287] अर्थात् ऐसा मैनें सुना। तत्पश्चात् भगवान् ने यह उपदेश कहाँ, किस व्यक्ति को और किस घटना क्रम में दिया इसका विवरण आता हैं। *"एकं समयं भगवा वाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये। तत्र खो भगवा पञ्चवग्गिये भिक्खु आमन्तेसि*[288]*"* अर्थात् एक समय भगवान् वाराणसी

---

[286] शर्मा, बीरबल, *"समन्तपासादिका"*, पृ. सं.18

[287] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"सुत्तनिपातपालि"*, पृ.सं.49

[288] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"संयुत्तनिकायपालि"*, भाग-1, पृ.सं. 2156

के ऋषिपतन मृगदाय मे विहार कर रहे थे। वहाँ भगवान् ने पञ्चवर्गीय भिक्खुओं को सम्बोधित किया। तत्पश्चात भगवान् द्वारा दिया गया उपदेश हैं। अन्त में भगवान् के उपदेश से प्रभावित किसी गृहस्थ के अनुमोदन स्वरुप भावविभोर होकर इस प्रकार शब्द प्रकट किये गये है; यथा- *"अभिक्कन्तं भो गोतम! अभिक्कन्तं भो गोतम! सेय्यथापि भो गोतम! निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूल्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खिन्तीति। एवमेतं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि, धम्मञ्च भिक्खुसङ्घञ्च। उपासकं मं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतन्ति।"*[289] अर्थात् आश्चर्य है हे गौतम! आश्चर्य है हे गौतम! जैसे औंधे को सीधा कर दे, ढँके को उघाड़ दे भूले को रास्ता बतला दे, अन्धकार मे तेल का प्रदीप धारण करे जिससे कि आँख वाले रूपों को देखे। ऐसें ही आप गौतम ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। यह मैं आप गौतम की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्खु संघ की भी। आप गौतम आज से अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करे। कुछ सुत्तों के अन्त में कहीं कहीं भिक्खुओं द्वारा भगवान् के वचन का अनुमोदन इस प्रकार किया गया हैं- *"इदमवोच भगवा। अत्तमना पञ्चवग्गिया भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुन्ति।"*[290] अर्थात् भगवान् ने यह कहा। संतुष्ट होकर उन भिक्षुओं ने भगवान् के कहे हुए का अभिनन्दन किया। शीर्ष में प्रतिपादित किया हैं कि बुद्धवचन भी दो प्रकार से मानित है। उसी प्रसंग में भगवान् द्वारा श्रावक भाषित भी उक्त प्रकार से अनुमोदित है- *"इदमवोच आयस्मा सारिपुत्तो। अत्तमना च ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स भासितं अभिनन्दुन्ति।"*[291] अर्थात् आयुष्यमान

---

[289] भिक्षु धर्मरक्षित, *"सुत्तनिपात"*, पृ.सं.128

[290] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"संयुत्तनिकायपालि"*, भाग-1, पृ.सं.2160

[291] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"मज्झिमनिकायपालि"*, (मूलपण्णासकं), भाग-1, पृ.सं.94

सारिपुत्र ने यह कहा। जिसका शास्ता ने अनुमोदन किया। संतुष्ट होकर उन भिक्षुओंने भी आयुष्यमान सारिपुत्र द्वारा कहे हुए का अभिनन्दन किया।

भाषा की दृष्टि से सम्पूर्ण पिटक साहित्य बड़ा ही सुबोध एवं सरल हैं। गद्यात्मक और पद्यात्मक सुत्तों की शैली अत्यन्त प्रभावी हैं, यही कारण हैं कि जनमानस में प्रचलित भाषा का शास्ता द्वारा धम्मोपदेश के लिये चयन किया गया। सुत्तों में कुछ स्थानों पर साम्यता भी दृष्टिगोचर होती हैं जैसे मिलने के लिए, विदा लेने के लिए, कुशल-क्षेम पूछने के लिए, आश्चर्य प्रकट करने के लिए, परिताप करने इत्यादि अवसरों पर जिन वाक्यों का, शब्दों का प्रयोग हैं, वह अधिकांश स्थानों पर समान ही परिलक्षित हैं। इन सुत्तों के भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह हैं कि इन्हें कंठस्थ करना आसान है। सुत्तों का परायण करने के पश्चात् सहजता से अनायास ही कण्ठस्थ हो जाते हैं। यही कारण हैं कि 'भाणक परम्परा' द्वारा त्रिपिटक के पिटकों भिक्खुओं के कंठाग्र हो गये।

त्रिपिटक के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि सुत्तों के अन्तर्गत ही अभिधम्म की मातिकाएँ थी। अभिधम्म के मूल बीज इन्हीं मतिकाओं में निहित है। इन मतिकाओं का मूल दीघनिकाय के संगीतिपरियाय सुत्त[292], मज्झिमनिकाय के धातुविभंग सुत्त[293] आदि में उद्धृत है। कालान्तर में उन्हीं मातिकाओं को पृथक् कर दिया गया। मज्झिमनिकाय के महागोसिंग सुत्त से स्पष्ट होता है कि गोसिंग सालवन के कुछ भिक्षुओं द्वारा अभिधम्म की चर्चा की जा रही थी। वे परस्पर प्रश्न करते थे तथा उन प्रश्नों के उत्तर दिया करते थे। इसकी सूचना भगवान् को दी गयी, उन्होंने इस घटना की प्रशंसा की और उन भिक्षुओं को धम्मकथिक कहा।[294] इसलिए प्रथम संगीतिकरों ने इसे सुत्तों के अन्तर्गत रखा।

---

[292] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*दीघनिकायपालि*", पथिकवग्गो, पृ.सं. 166

[293] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*मज्झिमनिकायपालि*", (उपरिपण्णास), भाग-1, पृ.सं. 1347

[294] भिक्खु जगदीसकस्सपो, "*मज्झिमनिकायपालि*", (मूलपण्णास), पृ.सं. 268-269

3.1.2 सुत्तों का वर्गीकरण

सुत्तों का वर्गीकरण एवं विभाजन मुख्यता निकायों में हुआ हैं। शीर्ष में ही इसे स्पष्ट किया गया हैं। 'निकायवसेन' अर्थात् निकायों के अनुसार।

ठपेत्वा चतुरोपेते निकाये दीघमातिके।

तदञ्ञं बुद्धवचनं निकायो खुद्दको मतो।।[295]

अर्थात् दीघ आदि इन चार निकायों को छोड़कर अन्य जो कुछ बुद्ध-वचन है, वह सब खुद्दक निकाय कहा जाता है। कालान्तर में त्रिपिटकों के आधार पर विभाजन से इसे सुत्त पिटक के रूप में पाँच निकायों में विभक्त हैं। इन निकायों का विभाजन उनमें आगत विषयवस्तु के आधार पर न होकर सुत्तों के आकार के अनुसार किया गया है। भगवान् द्वारा भाषित लम्बे-लम्बे सुत्तों को जिसमें संगृहित किया गया उसका नाम दीघनिकाय रखा गया। मध्यम आकार वाले उपदेशो के संग्रह को मज्झिमनिकाय, छोटे-बड़े दोनो प्रकार के सुत्तों को एकत्र करके संयुत्तनिकाय नाम रखा गया, सुत्तों के अंगो की वृद्धि के अनुसार एकत्रित सुत्तों संग्रह अङ्गुत्तर निकाय रखा गया, छोटे-छोटे सुत्तों के संग्रह का नाम खुद्दकनिकाय रखा गया।

इस पिटक में उन्हीं गाथाओं और सुत्तों का समावेश हैं जो सामान्य से सामान्य व्यक्ति के लिए बोधगम्य हैं। सुत्त पिटक में व्यवहारिक उपदेशों का संग्रह है और इन्हीं के आधार पर भगवान् बुद्ध के लोकानुकम्पक व्यक्तित्व और तत्कालीन देश काल की यथातथ्य जानकारी प्राप्त होती है।

सुत्तों में बुद्धयुगीन समाज में प्रचलित जीविका और आर्थिक जीवन के अनेक साक्ष्य उपलब्ध है। "समाज में जीविका के प्रति अलग-अलग दृष्टिकोण थे और कुछ के प्रति लोग उसके आर्थिक महत्त्व को देखकर ही आकृष्ट होते थे। जिस व्यक्ति को जिस तरह के साधन उपलब्ध थे तदनुरूप उसकी जीविका का

[295] शर्मा, बीरबल, *"समन्तपासादिका"*, पृ. सं.25

भी स्वरुप निश्चित होता था। अतः समाज में उन सभी कार्यों को जीविका की संज्ञा प्राप्त थी जिनसे जीवन यापन सुचारू रूप से चलता था।" सुत्तों में आगत बुद्ध कालीन आर्थिक व्यवस्था का सिंहावलोकन करते समय तत्कालीन कृषि व्यवस्था, पशुपालन, व्यापार-उद्योग, व्यवसाय और विनिमय प्रणाली का निम्नवत विवेचन प्रस्तुत है-

3.2 कृषि व्यवस्था एवं पशुपालन आधारित आर्थिक व्यवस्था

वर्तमान समय के तरह ही बुद्ध-काल में भारतीय जन-मानस का मुख्य उपजीविका का पेशा कृषि था। वन-भूमि को साफ कर किसानों को कृषि-कर्म करते देखते है। *कूटदन्त सुत्त* में उल्लिखित है कि राजा का यह कर्तव्य माना जाता था कि उसके जनपद में जो लोग कृषि करना चाहते हों, उन्हें वह बीज-भात (बीज-भत्तं) दे।[296] बुद्ध काल में कृषि किसी जाति विशेष का पेशा नहीं माना जाता था। मज्झिम निकाय के *गोपक-मोग्गालन सुत्त* से ज्ञात होता है कि मगध का गोपक-मोग्गालन ब्राह्मण कृषक था।[297] मगध के एक नाला ब्राह्मण-ग्राम के कासि भारद्वाज ब्राह्मण द्वारा 500 हल लेकर जुताई करवाने का उल्लेख है।[298]

पालि त्रिपिटक के वर्णनानुसार कृषि भी एक व्यवसाय के रूप में होती थी। कृषि को "कसि" और कृषि कार्य करने वाले को इस काल में "*कस्सको*"[299] अर्थात् कृषक कहा जाता था। बुद्धकालीन समाज मुख्यतः कृषि प्रधान था। अधिकांश लोग कृषि-कर्म करके जीविका का निर्वहन करते थे। त्रिपिटक के विभिन्न सुत्तों में कृषकों की स्थिति का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। तत्कालीन समाज का कृषक वर्ग ही पोषक था, जो कृषि के द्वारा विभिन्न उत्पादनों से समाज को पोषित करता था। कृषि और कृषिपरक क्रियाकलापों के विकास और विस्तार के लिए भारतीय भूमि एवं भौगोलिक स्थिति अत्यधिक अनुकूल थी।

---

[296] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*दीघनिकायपालि*", (सीलक्खन्धवग्ग), भाग 01, पृ.सं.146
[297] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*मज्झिमनिकायपालि*" (उपरिपण्णास), भाग 03, पृ.सं. 1091
[298] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*संयुत्तनिकायपालि*", भाग 01, पृ.सं. 278
[299] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*पालि-हिन्दी कोश*", पृ.सं 94

जिस कारण बुद्ध कालीन भारत वर्ष में कृषि की समुन्नत दशा का दिग्दर्शन पालि त्रिपिटक में प्राप्त होता है।पालि त्रिपिटक में कृषि-कर्म सम्मानजनक समझा जाता था। यह वर्ण विशेष का व्यवसाय न होकर किसी भी वर्ग द्वारा अपनाया जा सकता था। तथागत द्वारा कर्म को प्रधानता दी गयी तथा उनके अनुसार कर्म से ही मनुष्य की सामाजिक एवं भौतिक स्थिति का निर्धारण होता है। तथागत बुद्ध ने कहा कि किसी ब्राह्मण द्वारा पशुपालन के कार्य को अपनाने पर वह ब्राह्मण न होकर कृषक हो जाएगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी वर्ग किसी भी पेशे को अपना सकता था। कतिपय जातक कथाओं के कथानुसार तत्कालीन ब्राह्मण भी कृषि कर्म करने लगे थे। ऐसे ब्राह्मणों को "कस्सक ब्राह्मण" कहा जाता था। वासेट्ठ सुत्त से ज्ञातव्य है कि *"यो कोचि मनुस्सेसु, गोरक्खं उपजीवति। एवं वासेट्ठ जानाहि, कस्सको सो न ब्राह्मणो।।"* [300] अर्थात् जैसे मनुष्यों में कोई गोपालन से अपनी जीविका चलता हो, तो उसे कृषक ही समझना चाहिए, ब्राह्मण नहीं। भले ही जन्म से उसका जन्म ब्राह्मण कुल में क्यों न हो। सुत्तनिपात के कसिभारद्वाज सुत्त से ध्यातव्य है कि स्वयं कसिभारद्वाज ब्राह्मण द्वारा भगवान् बुद्ध को कृषि कार्य करके जीविकोपार्जन करने को कहा गया है। पुनः कसिभारद्वाज सुत्त से ज्ञात होता है कि स्वयं ब्राह्मणों द्वारा बीज बोने एवं कृषि कार्य के समय सैकड़ों हल चलाये जाते थे।[301] 'पिप्पलि माणवक' जो भगवान् के संघ में प्रविष्ट होने के पश्चात् उनके अस्सी महाश्रावकों में से एक थे। जिन्हें स्थविर महाकश्यप के नाम से जाना जाता था। उनके यहाँ भी खेती होती थी, जो की ब्राह्मण कुल से थे। बुद्धकालीन समाज में कृषि प्रधानता का उल्लेख त्रिपिटक में अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। तत्कालीन समाज में सामान्य जन भी कृषि कार्य कर अपनी जीविका का निर्वहन करते थे। थेरीगाथा से ज्ञातव्य है कि *"नङ्गलेहि कसं खेत्तं, बीजानि वपयं छमा। पुत्तदारानि पोसेन्ता,*

---

[300] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"सुत्तनिपातपालि"*, पृ.सं.120

[301] वही, पृ.सं. 15

धनं विन्दन्ति माणवा ।।"[302] अर्थात् जब साधारण कृषकजन भी से हल से खेत जोतकर उस खेत की भूमि में बीज बोकर उससे अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण करते हैं, अतिरिक्त धन भी कमा लेते है।

त्रिपिटक के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि राजा स्वयं अपने राज्य की प्रजा को कृषि के लिए प्रोत्साहित करता था। अपना राज्य धन-धान्य सम्पन्न हो इसलिए वह सभी लोगो सदैव कृषि कर्म को भली भांति अवगत कराने का यत्न करता था। पालि त्रिपिटक में वन भूमि को साफ कर कृषियोग्य बनाने और उस पर कृषि कार्य करने के उल्लेख प्राप्त है। तत्कालीन ग्रामों के समीपस्थ भूमि बहुत ज्यादा उपजाऊ होती थी। कृषक इस प्रकार योग्य भूमि का चुनाव कर अनेक प्रकार की फसलों की पैदावार किया करते थे।

कृषि के विषय में महानाम शाक्य ने अपने अनुज अनुरुद्ध को बताया कि "पहले खेत को जोतवाना चाहिए। जोतकर बोवाना चाहिए। बोवाकर पानी देना चाहिए। पानी भरकर निकलना चाहिए। निकालकर फसल को सुखाना चाहिए। सुखाकर फसल को काटवाना चाहिए। कटवाकर ऊपर लाना चाहिए। ऊपर लाकर सीधा करना चाहिए। सीधा करके मर्दन करवाना चाहिए। मिसवाकर पयाल हटाना चाहिए। पयाल के उपरान्त भूमि हटानी चाहिए। भूमि हटवाकर फटकवाना चाहिए। फटकवाकर जमा करना चाहिए।"[303] इस प्रकार कृषि कार्य का क्रमशः विवरण प्राप्त होता है।

3.2.1 भूमि का चुनाव, वर्गीकरण एवं प्रकार

कृषि करने योग्य भूमि का भी उल्लेख अनेक सुत्तो से प्राप्त होता है। कृषि के लिए अनुपयुक्त एवं उपयुक्त दो प्रकार की भूमि का उल्लेख उपलब्ध होता है; यथा- अङ्गुत्तरनिकाय निकाय के खेत्तसुत्त से ज्ञातव्य है कि "भिक्षुओं! इन आठ अंगों से से युक्त खेत में बोया हुआ बीज, अधिक फलदायी या

[302] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"थेरीगाथापालि"*, पृ.सं. 255
[303] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"चुल्लवग्गपालि"*, पृ.सं.427-428

स्वादयुक्त एवं स्वास्थ्यप्रद नहीं होता। किन आठ अंगों से से युक्त खेत में? यहीं भिक्षुओं किसी खेत की भूमि ऊँची नीची हो, उसमें कंकर पत्थर अधिक हों, जो खेत ऊसर (क्षारयुक्त) हो, गहरी सिंचाई न हो, जिसमें गहरी सीता (हलाई) न हुई हो, जिसमें जल आने का मार्ग ना हो, न जल निकालने का, न उसमें जल जाने के लिए नालियाँ बनी हों, न उसकी मेंड़ ही भली भांति लगायी गयी हो। भिक्षुओं ऐसा खेत अनुपयुक्त है।"[304] इसके विपरीत "भिक्षुओं! इन आठ अंगों से से युक्त खेत में बोया हुआ बीज, अधिक फलदायी या स्वादयुक्त एवं स्वास्थ्यप्रद होता है। किन आठ अंगों से से युक्त खेत में? यहीं भिक्षुओं किसी खेत की भूमि ऊँची नीची न होकर समतल है, उसमें कंकर पत्थर न हों, जो ऊसर (क्षारयुक्त) न हो, गहरी सिंचाई हो, जिसमें गहरी सीता (हलाई) हुई हो, जिसमें जल आने का एवं जल निकालने का भी मार्ग हो, उसमें जल जाने के लिए नालियाँ बनी हों तथा जिसके चरों ओर मेंड़ भली भांति लगायी गयी हो। भिक्षुओं ऐसा खेत उपयुक्त है।"[305] इस प्रकार स्वयं भगवान् बुद्ध द्वारा खेतों का इस प्रकार विभाजन किया गया है; यथा- चौकोर खेत, कतारबद्ध खेत, मेडयुक्त खेत और सीमाबद्ध खेत। बुद्धकालीन भारतवर्ष में कृषि सम्बन्धित ज्ञान का स्तर अत्यन्त सुदृढ़ था। इसलिए तत्कालीन कृषकों द्वारा विवेक तथा बुद्धिमत्तापूर्वक कृषि उपयुक्त भूमि का चुनाव किया जाता था। उनके द्वारा यह विशेष रूप से ध्यान रखा जाता की किस प्रकार की भूमि में कौन-कौन सी फसल अधिक होगी। सिंचाई क्षेत्र के समीपस्थ भूमि में फसलों की वृद्धि के लिए पानी अधिक मात्रा एवं सुलभता से प्राप्त होने से कृषक वर्ग दैनिक जीवनोपयुक्त फसलों के उत्पादन के लिए इस प्रकार के क्षेत्र का उपयोग करते थे। संयुत्तनिकाय पालि के गामणिसंयुत्तं में आगत खेत्तूपमसुत्तं से ज्ञातव्य है कि

---

[304] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 424

[305] वही, पृ.सं.425

"गामणि, इधस्स कस्सकस्स गहपतिनो तीणि खेत्तानि-एक खेत्तं अग्गं, एकं खेत्तं मज्झिमं, एकं खेत्तं हीनं जङ्गलं ऊसरं पापभूमि। तं किं मञ्ञसि, गामणि, असु कस्सको गहपति बीजानि पतिट्ठापेतुकामो कत्थ पठमं पतिट्ठापेय्य, यं वा अदुं खेत्तं, यं वा अदुं खेत्तं मज्झिमं, यं वा अदुं खेत्तं हीनं जङ्गलं ऊसरं पापभूमी" ति? "असु, भन्ते, कस्सको गहपति बीजानि पतिट्ठापेतुकामो यं अदुं खेत्तं अग्गं तत्थ पतिट्ठापेय्य। तत्थ पतिट्ठापेत्वा यं अदुं खेत्तं मज्झिमं तत्थ पतिट्ठापेय्य । तत्थ पतिट्ठापेत्वा यं अदुं खेत्तं हीनं जङ्गलं ऊसरं पापभूमि तत्थ पतिट्ठापेय्य पि, नो पि पतिट्ठापेय्य। तं किस्स हेतु? अन्तमसो गोभत्तं पि भविस्सती" ति[306] अर्थात् "ग्रामणि। इस प्रसङ्ग में मैं तुम ही से पूछता हूँ, जैसा तुम्हारी समझ में आवे, उत्तर दो। ग्रामणि। किसी गृहस्थ (किसान) के पास तीन खेत हों-एक बहुत अच्छी उपज वाला, दूसरा मध्यम उपज वाला तथा तीसरा निकृष्ट उपज वाला। ग्रामणि। तो तुम क्या समझते हो वह कृपक गृहस्थ किस खेत में सर्वप्रथम बीज बोयगा ?" "भन्ते। वह गृहस्थ सर्वप्रथम बहुत अच्छी उपज वाले खेत में बीज बोयगा, फिर मध्यम खेत में। अन्त में उस निकृष्ट खेत में यह सोच कर बीज डालेगा कि इस से जो कुछ भी निष्पन्न होगा वह पशुओं के चारे में ही कार्य आयगा।" उपर्युक्त उदहारण से स्पष्ट है की कृषिकों को भूमि के उपजाऊ क्षमता साथ साथ, किस प्रकार की भूमि में किस प्रकार के बीज बोये इसका ज्ञान होता था। निकृष्ट उपज वाले खेत सम्भवतः पशुओं के चारे के लिए उपयोग में लाये जाते थे । जंगलादि ऊसर निकृष्ट उपज वाले खेतों में कृषि कार्य नहीं होता था।

खेतों का विभाजन अथवा वर्गीकरण के आधार विभिन्न थे। उनमें बोई गई फसलों के आधार पर किया जाता था। जैसे यव खेत- जौ का खेत, तिणखेत-

[306] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"संयुत्तनिकायपालि"*, भाग-3 पृ.सं.1513

तृण या घास का खेत, इच्छुखेत- ईख का खेत और सालिखेत- धान का खेत इत्यादि।

3.2.2 कृषि सम्बद्ध कृषकों के अन्य कार्य

त्रिपिटक के कतिपय सुत्तों में कृषि से सम्बन्धित अन्य कार्यों के भी विवरण प्राप्त होते है। कृषियोग्य भूमि का परीक्षण कर चुनाव करना, विभिन्न फसलों की कृषि करने के लिए कृषिक्षेत्र की भलीभांति तैयारी करना, फसलों के अधिक उत्पादन के लिए योग्य तथा उचित मात्रा में सिंचाई करवाना। इसी प्रकार कृषकों केकृषि से सम्बन्धित विभिन्न अन्य कार्य भी होते हैं। कृषि सम्बद्ध कृषकों के अन्य कार्य निम्नवत है; यथा- खेत की निराई-गुड़ाई, फसल की कटाई, खेत की रक्षा और अनाज का भण्डारण इत्यादि। जिनका विस्तार से विश्लेषण निम्नोक्त है-

3.2.2.1 कृषि की तैयारी (जुताई- बुआई)

प्राचीन भारतवर्ष में कृषि कार्य एक उत्तम और सर्वोकृष्ट कार्यों में से एक था। इसलिए भारत के जन लोकोक्ति में कहाँ गया है कि

उत्तम खेती मध्यम बान।

निषिद चाकरी भीख निदान।।

अर्थात् खेती सबसे उत्तम कार्य है। व्यापार मध्यम है, नौकरी निषिद्ध है और भीख माँगना सबसे निकृष्ट कार्य है। इसलिए प्राचीन काल में कृषि कार्य भी एक धार्मिक कृत्य था। कृषि के लिए भी प्राकृतिक ग्रह-नक्षत्रों का सहारा लिया जाता था, बीज बोने की तिथियाँ होती थी। कृषकों द्वारा बुआई के पूर्व भी अनेक कार्यों को किया जाता था, जैसे कि खेती की समुचित जुताई करना। खेत की तैयारी के लिए जुताई अच्छी तरीके से हल या नंगल द्वारा होती थी, जिन्हें बैलों द्वारा खींचा जाता था। जिससे मिट्टी महीन हो जाये क्योंकि फसल को उगाने और उसके विकास हेतु महीन मिट्टी आवश्यक थी। इसके पश्चात् कृषक द्वारा

मिट्टी में बीज बोया जाता था। *दीघनिकाय* के *महापरिनिब्बान सुत्त* से ज्ञातव्य है कि "जुताई के समय दो कृषक एवं उनके बैलों की बिजली गिरने से मृत्यु हो गयी थी।"[307] संयुत्तनिकाय से ज्ञात होता है कि "शरद ऋतु में कृषकों द्वारा जुताई करने पर उन्हें विशेष लाभ मिलता था।"[308] कृषक अपने खेतों की बार-बार जुताई करते थे, जो उनके द्वारा अच्छे फसल प्राप्ति की इच्छा का द्योतक है।

कतिपय सुत्तों में एक धार्मिक क्रिया का उल्लेख प्राप्त है, जिसे जुताई के पश्चात् एवं बुआई के पूर्व किया जाता था। जातकों से ज्ञात होता है कि बुआई का समय समीप आने पर समस्त ग्राम सजाकर राजा स्वयं उस उत्सव में भाग लेता था और उसका उद्घाटन करता था। राज दरबार के सभी सदस्य अलंकृत और नवीन वस्त्र परिधान करते थे। रत्नजडित हल या नंगल द्वारा राजा स्वयं खेतों की जुताई करता था, तदुपरान्त यह कार्य कृषकों द्वारा सम्पन्न किया जाता था। "*खेत्तानं अधिपति खो खत्तियो*" अर्थात् खेतों के अधिपति को ही क्षत्रिय कहा जाता था। यहाँ यह सुस्पष्ट है कि राजा को ही कृषक कहा गया है। जब राष्ट्र का राजा ही कृषक होगा तो कृषि उत्तम होना स्वाभाविक है। राजा राष्ट्र का प्रतीक होने कारण इस उत्तम कार्य का शुभारम्भ करता था। अन्न के अधिकाधिक उत्पादन हेतु और प्रजा हित के लिए राजा को इसमें स्वयं रूचि रखना आवश्यक होता था। खेतों को ठीक प्रकार से जोतने के पश्चात् उत्तम कोटि के बीजों को बोया जाता था। इस प्रकार बुआई का कार्य जुताई के पश्चात् ही होता था। कृषि को एक वैभव सम्पन्न कार्य माना जाता था तथा राजा भी इस कार्य में सम्मिलित होते थे और कृषकों का पूर्ण सहयोग करते थे। खेतों की बुआई के समय यह ध्यान रखना पड़ता था कि बिना खण्डित डेन वाले बीज बोयें जायें एवं बीजों की अंकुरण क्षमता बनी रहे। बीजों पर आर्द्रता का प्रभाव न पड़े और

---

[307] भिक्षु धर्मरक्षित, "*महापरिनिब्बान सुत्तं*", पृ.सं. 124

[308] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*संयुत्तनिकायपालि*", भाग 2, पृ.सं. 938

उनकी अंकुरण क्षमता प्रभावित न हो इसलिए उन्हें हवा से दूर रखा जाता था। कृषकों द्वारा बारम्बार अपने खेतों में बीज बोया जाता था। संयुत्तनिकाय के बीजसुत्त से ज्ञातव्य है कि "*पञ्चमानि भिक्खवे, बीजजातानि। कतमानि पञ्च? मूलबीजं, खन्धबीजं, अग्गबीजं, फलुबीजं, बीजबीजञ्ञेव पञ्चमं।*"[309] अर्थात् "बीजसमूह पाँच प्रकार के होते हैं। कौन से पाँच? मूलबीज, स्कन्धबीज, अग्रबीज, फलुबीज एवं बीजबीज। पुनः कहा गया है कि "ये पाँच प्रकार के बीज अखण्डित हों, सड़े गले न हों, वायु या धूप से नष्ट न हो गये हों, सार (तत्त्व=बल) वाले हों, अनायास भूमि में रोपे जा सकने योग्य हों, किन्तु अनुकूल मिट्टी या जल न हो तो।"[310] श्रावस्ती की एक घटना है जहाँ शास्ता उदय नामक ब्राह्मण से कहते है कि "बार-बार बीज बोते है, बार-बार मेघराज बरसते हैं और बार-बार किसान खेत जोतते हैं।[311]" कतिपय जातकों में उल्लेखित है कि बुआई का काम एक निश्चित् अवधि में समाप्त होता था। नम भूमि में जब उत्तम प्रकार के बीजों को बोया जाता तो वे बीज पृथ्वी के रस को चूस करके उग जाते एवं उनकी फसलें उत्तम प्रकार की होती थी। उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि बोने के लिए खेत की तैयारी विधिवत् की जाती थी।

खेत को तैयार कराने के सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध कहते है कि "भिक्षुओं! कृषक गृहस्थ शीघ्र खेत में हल जोतकर मिट्टी ठीक करके बीज बोता है तथा बीजों को बोकर शीघ्र है करता भी बन्द पर समय और है देता भी जल। भिक्षुओं! ये तीन कृषक गृहस्थ के अनिवार्य कर्तव्य हैं। [312]"संयुत्तनिकायपालि में कहा गया है कि "*या दिसं वपते बीजं, तादिसं हरते फलं।*"[313] अर्थात् क्यों कि जो जैसा बीज बोता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। कृषकों के मुख्य तीन कर्तव्यों में खेत

---

[309] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*संयुत्तनिकायपालि*", भाग 2, पृ.सं. 812
[310] वही,
[311] वही, भाग 1, पृ.सं. 281
[312] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*अङ्गुत्तरनिकायपालि*", भाग 1, पृ.सं. 302
[313] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*संयुत्तनिकायपालि*", भाग 1, पृ.सं. 365

की तैयारी और बीज बोना मुख्य है। कृषि योग्य बीज के सन्दर्भ में भगवान् ने कहा है कि "भिक्षुओं! ईख का बीज हो, धान का बीज हो, अंगूर का बीज हो, उसे गीली मिट्टी में बोया जाये। वह जो पृथ्वी का रस खीचेगा, जो भी पानी खीचेगा, वह खाद के माधुर्य के लिए होगा। ऐसा किस लिए? भिक्षुओं! वह बीज ही भला है।[314] इससे स्पष्ट होता है कि खेत में बोने के लिए जब अच्छे बीज चुने जाते थे, तो उसका फल भी अच्छा होता था। इस प्रकार खेतों की तैयारी की जाती थी और उसमें बीज बोये जाते थे।

3.2.2.2. सिंचाई

कृषि के लिए सिंचाई की व्यवस्था एक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में परिगणित है। फसल की अच्छी उपलब्धता के लिए सिंचाई करना कृषकों की प्राथमिकता होती है। यदि उचित एवं पर्याप्त रूप से सिंचाई न की जाये तो अच्छे फसल की कल्पना भ्रान्तिपूर्ण ही होगी। फसलों के विकास के लिए सिंचाई अधिक अनिवार्य होती है। भगवान् ने कहा है अङ्गुत्तरनिकाय निकाय से ज्ञातव्य है कि "वर्षा न होने पर उत्पन्न बीजसमूह, जीवसमूह, औषधि, तृण एवं वनस्पतिसमूह सूख जाते है, नहीं रह जाते।"[315] बुद्धकालीन समाज में सिंचाई का स्त्रोत प्राकृतिक वर्षा था। त्रिपिटक के अवलोकन से स्पष्ट हुआ है कि यदि वर्षा नहीं होती तो सभी सुख सुविधाएँ समाप्त हो जाती। पुनः अङ्गुत्तरनिकाय निकाय के खेत्तसुत्त से ज्ञातव्य है कि "जैसे अच्छे खेत में बोयी हुई बीजसम्पदा से, उचित वर्षा होने पर प्रभूत धान्यसम्पदा होती है।"[316] इस प्रकार प्राकृतिक वर्षा सिंचाई का मुख्य साधन थी। सिंचाई के साधन के रूप में प्राकृतिक एवं कृत्रिम दोनों प्रकार की व्यवस्थाएँ विद्यमान थी। तत्कालीन समय में देश का एक बड़ा भाग वर्षा के जल पर ही निर्भर था, यद्यपि कृत्रिम साधनों से सिंचाई की

---

[314] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 4, पृ.सं. 329-330

[315] वही, भाग 3, पृ.सं. 292

[316] वही, भाग 4, पृ.सं. 425

सुविधा अवश्य थी। किसी समय वर्षा का अभाव हुआ तो कृषक सिंचाई का लाभ नहीं उठा पाते थे।

संयुत्तनिकाय से ज्ञातव्य है कि "वर्षा होने पर खेतों की जुताई का उल्लेख है।" मच्छ जातक में भी वर्षा के सम्बन्ध में चर्चा की गयी है। जिसमें स्वयं तथागत कहते है कि एक समय कोशल में वर्षा नहीं हुई तो खेती कुम्हला गयी, जहाँ-तहाँ तालाब- पुष्करणियाँ सुख गयी। उपर्युक्त कथन से ज्ञात होता है कि सिंचाई के अन्य साधन भी उपलब्ध थे; यथा- तालाब, पुष्करणियाँ , कुआँ, जलाशय एवं नदी इत्यादि। वर्षा के अभाव में यह सब भी धीरे धीरे सुख जाते थे और सिंचाई के कार्य में बाधा होती थी।[317] तत्कालीन समय मुख्यतः वर्षा के जल पर ही आश्रित था, परन्तु प्राप्त सभी साधन परोक्ष रूप से वर्षा जल पर ही निर्भर थे।

पालि त्रिपिटक साहित्य में सिंचाई के कुछ अन्य तरीकों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। सिंचाई के लिए मिट्टी के घड़ों का प्रयोग किया जाता था। जिसमें नहर बनाकर पानी को खेतों तक पहुँचाया जाता था। *थेरगाथापालि* में आगत 'अंगुलिमाल स्थविर' के उदान से अधिक स्पष्ट रूप से सिंचाई के कार्य का महत्त्व दृष्टिगत होता है- "जैसे नहर वाले पानी ले जाते है, बाण बनाने वाले बाण को सीधा करते है।[318]" नहर के उल्लेख से सुपष्ट होता है कि तत्कालीन भारत वर्ष में इनका निर्माण कार्य भी होता था । कुछ नहर खेतों के समीपस्थ होती थी, किसी कारणवश नहर खेत के नजदीक ना हो तो घड़ों में पानी भरकर सिंचाई का कार्य किया जाता था। वर्षा के अभाव में ढेकली के द्वारा सिंचाई की जाती थी। यह एक बड़े पात्र के द्वारा रस्से की सहायता से पशुओं से खिचावांकर कुओं से पानी निकाला जाता था तथा नहर से खेतों तक पहुँचाया जाता था। सम्पूर्ण कृषि-कार्य सिंचाई पर निर्भर करता है। फसल अथवा

---

[317] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"जातक अट्ठकथा-प्रथम भाग"* (मच्छ जातक), पृ.सं. 426

[318] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"थेरगाथापालि"*, पृ.सं. 168-169

पेड़-पौधों को पर्याप्त मात्रा में पानी नहीं सींचा तो इसका सीधा असर उसकी पैदावार पर पड़ता था। इस कारण कृषकों द्वारा सिंचाई के आवश्यकता को जान कर अत्यन्त परिश्रमपूर्वक इस कार्य को किया जाता था। सिंचाई के लिए प्रयुक्त साधनों का उल्लेख इस प्रकार है; यथा- "जैसे भिक्षुओ ! कोई किसान अपने खेत में जल सींचने के लिये काष्ठ की एक प्रणाली को बनाने हेतु किसी वृक्ष की खोखली लकड़ी लाने के लिये कुठार लेकर जङ्गल में जाय। वहाँ वह जिस-जिस वृक्ष से कुठार को टकराये उस से जिन में दृढ़ताबोधक खट-खट शब्द सुनायी दे उसको छोड़ देता है तथा जिस में थोथा शब्द सुनायी दे उसको काट लेता है। उसको वह पहले मूल से काटता है, पुनः अग्रभाग को काटता है, अग्रभाग को काट कर उसके बीच से थोथे भाग को निकाल लेता है, तब वह उस को जल प्रणाली के रूप में काम में लेता है।"[319] सिंचाई के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए मज्झिमनिकाय में कहा गया है कि "तरुण बीजों को समय पर पानी न मिलने पर वे सूखने लगते हैं और उनकी वृद्धि रुक जाती है।"[320] नहरों एवं जलाशयों के उत्खनन का कार्य परस्पर सहयोग की भावना से किया जाता था। जिनका उपयोग सिंचाई तथा स्नानादि कार्यों के लिए किया जाता था। कुणाल जातक से जानकारी प्राप्त होती है कि शाक्यों तथा कोलियों के मध्य रोहिणी नदी के जल से सिंचाई को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था।[321] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वर्षा के अभाव में सिंचाई के साधनों की व्यवस्था करना अत्यन्त दुष्कर कार्य था तथा इसके लिए कृषकों को कठिन परिश्रम करना पड़ता था एवं खेतों की सिंचाई करके अच्छी फसल होने की प्रतीक्षा करना पड़ता था।

---

[319] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अंगुत्तरनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 362

[320] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"मज्झिमनिकायपालि"*, भाग 1, पृ.सं. 246

[321] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"जातक अट्ठकथा-षष्ठम भाग"* (कुणाल जातक), पृ.सं.180

3.2.2.3 खेत की निराई-गुड़ाई

खेती में फसल अच्छी पैदावार करने के लिए खेत की निराई-गुड़ाई करना आवश्यक कार्य था। खेत में निराई-गुड़ाई के अभाव में अन्य विभिन्न प्रकार के अनुपयोगी पेड़-पौधे, घास इत्यादि बढ़ने लगते है, जिसके कारण फसल की पैदावार पर प्रभाव पड़ता है। खेत में निराई-गुड़ाई से अनावश्यक रूप में उगी घास, पेड़-पौधों को काट कर निकाला जाता है। इन अनावश्यक रूप में उगे घास, पेड़-पौधों के कारण फसल की अच्छी पैदावार क्षमता कम हो जाती है, जिसका प्रभाव फसल के बढ़ने पर दिखता है। खेत में निराई-गुड़ाई कर फसल को उचित एवं पोषक वातावरण प्रदान किया जाता था। अङ्गुत्तर निकाय से ज्ञातव्य हैं कि भगवान् एक स्थान पर उपदेश देते हुए कहते है कि "भिक्षुओं! जौ के खेत में दुष्ट जौ, कूड़ा जौ उग जाये, लेकिन उसकी इसरी दूसरे अच्छे जवों खेती ही गड़े हो, उसकी दूसरी अच्छी जवों जैसे ही डण्ठल हो, उसके वैसे ही पत्ते हो जैसे दुसरे अच्छे जवों के, जब तक उसकी बाली न मिले। लेकिन जब उसकी बाली न निकले तब जान जाये की यह दुष्ट जौ है, बेकार जौ है, कूड़ा जौ है। जान लेने पर वे उसे उखाड़ जौ के खेत के बाहर फेंक देंगे। इसलिए की यह दूसरे अच्छे जौ को खराब ना करे। [322]"

पानीय जातक से सूचना मिलती है कि काशी राज्य के एक गाँव में दो मित्र रहते थे। वे पानी के तुम्बे लेकर खेत पर जाते थे। वह उन तुम्बे को खेत की एक और रखकर खेत कोड़ते, उसकी निराई-गुड़ाई करते और प्यास लगने पर लाया हुआ पानी पीते। इससे स्पष्ट है कि सामूहिक रूप से लोग परिश्रम कर खेतों की निराई-गुड़ाई करते थे। कृषि में संयुक्त रूप से निराई-गुड़ाई का उतना ही महत्त्व है जितना कि खेतों में अच्छी फसल बोने का।[323]

---

[322] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 361

[323] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"जातक अट्ठकथा-चतुर्थ भाग"* (पानीय जातक), पृ.सं.365

3.2.2.4 फसल की कटाई

पालि में 'लायक'[324] शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका सामान्य अर्थ काटने वाला होता है। इसके अतिरिक्त लायति, लायित्व शब्दों का भी प्रयोग प्राप्त है। जिनका तात्पर्य 'काटता है' से है। जब फसल पककर तैयार हो जाती थी तब उसकी कटाई की जाती थी। कटाई करने वाले लायक कहे जाते थे। अङ्गुत्तरनिकाय में फसल काटने का उदहारण प्राप्त होता है। तथागत भिक्षुओं से कहते है- "भिक्षुओं! जैसे किसी कृषक गृहस्थ उसे शीघ्रता से कटवाकर कर उसे शीघ्रता से एकत्र कर उसे उठवाये, शीघ्र ही उसका ढेर लगवाकर शीघ्र ही उसका मर्दन करवाये, ऐसे शीघ्र मर्दन कराकर उपज शीघ्र पृथक कराये, शीघ्र ही उसे छाज से उड़वाये, शीघ्र ही छाज से उड़वाकर पुनः ही शीघ्र ही एकत्र कराकर शीघ्र कुटवाये शीघ्र कुटवाकर उसका 'भूसा' पृथक कराये। ऐसा होने से भिक्षुओं! उस कृषक गृहस्थ के वे धान समय से पहले प्राप्त होंगे, सारवान होंगे, शुद्ध होंगे।"[325]

3.2.2.5 खेत की रक्षा

बुद्ध कालीन भारतवर्ष का मुख्य व्यवसाय कृषि ही था। अत्यन्त परिश्रम कर कृषक लोग कृषि करते थे। जैसे आज के समय में खेतों की रखवाली और सुरक्षा करनी पड़ती है, वैसे ही तत्कालीन कृषकों को विभिन्न उपायों से खेती की रखवाली करनी पड़ती थी। लक्खण मिग जातक से ज्ञातव्य है की "मगध देश में खेती के दिनों में खेती पकने के साथ जंगल में मृगों को खेती से दूर रखने के लिए लोग जहाँ-तहाँ गड्ढे खोदते, काँटे लगाते, पत्थर यन्त्रों (गुलेल) को सँवारते, कूट पाश आदि बन्धन फैलाते थे, जिससे बहुत से मृग मरे जाते थे। इससे स्पष्ट है कि फसलों की सुरक्षा काँटे लगवाकर, गड्ढे खुदवाकर और

---

[324] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि हिन्दी कोश"*, पृ.275

[325] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 1, पृ.सं.318

कूटपाश इत्यादि साधनों के माध्यम से करते थे।[326] खेतों की रखवाली के लिए जो आदमी नियुक्त किए जाते थे, उन्हें 'खेतरक्खका' या 'खेत्तगोपका' कहा जाता था। उन्हें मजदूरी प्रायः अनाज में दी जाती थी। मज्झिमनिकायपालि के निवापसुत्त से ज्ञातव्य है कि "भिक्षुओं! कोई भी नैवापिक (व्याध) मृगों के लिए खेत इसलिए नहीं बोता इस खेत में आकर मृग मेरे इस खेत को खा कर मोटे-ताजे, स्वस्थ या दीर्घायु हो जाये; अपितु वह इसलिए वह खेत बोता है कि इस जहरीले तृणसमूह को खा कर मृग बेहोश हो जाँय और मैं सरलता से पकड़ लूँ ।"[327] फसलों को सुरक्षित करने के लिए कृषकों को न केवल जंगली पशुओं से बचाना था अपितु नैसर्गिक विपदाओं का भी सामना करना पड़ता था। इस प्रकार खेती के सुरक्षा का प्रमाण प्राप्त होता है। अङ्गुत्तरनिकाय निकाय से ध्यातव्य है कि "जैसे, भिक्षुओ ! किसी जौ के क्षेत्र में कोई जौ के समान घास पैदा हो जाय, जो जौ कहलाता हो परन्तु वस्तुतः जौ का कूड़ा कर्कट हो। उसका मूल, उसके स्कन्ध और पत्ते दीखने में वैसे ही होते हैं जैसे किसी शुद्ध जौ के। जब तक कि उसमें यवधान्य की फली न लगे। उस फली के आने पर ज्ञात होता है कि यह तो यवदूषक, यव के समान सा दिखायी देता है, परन्तु यह वस्तुतः इस जी के खेत का नाशक है। तब लोग उसकी वास्तविकता जान कर उसे खेत से उखाड़ कर बाहर फेंक देते हैं। वह किसलिये? कि कहीं वह खेत के वास्तविक धान्य को भी नष्ट न कर दे।[328]" पुनः सारवान धन के पौधे और असारवान धान के पौधे का उदहारण प्राप्त है; "जैसे, भिक्षुओ ! किसी विशाल धान के क्षेत्र के वृद्धिङ्गत होने पर, उस में जो सारवान् धान के पौधे हैं उनका समूह एक ओर खड़ा रहता है; परन्तु दुर्बल पौधे हैं वे वायु के प्रबल झोंकों से खेत में फैल जाते हैं। उनको खेत का स्वामी झाड़ू से एक ओर एकत्र कर देते हैं कि इन से कहाँ

---

[326] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-प्रथम भाग*" (लक्खण मिग जातक), पृ.सं.205

[327] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*मज्झिमनिकायपालि*", भाग 1, पृ.सं. 245

[328] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*अंगुत्तरनिकायपालि*", भाग 3, पृ.सं. 361

पूरा खेत न नष्ट हो जाय। [329]"इस प्रकार कृषक अपनी फसल की रक्षा करने के उल्लेख त्रिपिटक में प्राप्त होते है।

3.2.2.6 अनाज का भण्डारण

कृषि उपज के रूप में उत्पादित धान्य को सुरक्षित रखने के लिए अनाज के गोदाम थे होते। अनाज के गोदाम को 'धञ्ञगार'[330] कहा जाता था। मज्झिम निकाय के सुत्त में डेहरी का उल्लेख प्राप्त है, जिसमें अनेक प्रकार के अनाजों का भण्डारण होता था। भण्डारण के समय कीड़ों-मकोड़ों से बचाव के लिए अनाज में नीम की पत्तियों को मिलाया जाता था तथा भण्डारण स्थल पर वह पत्तियाँ डाल दी जाती थी। इस प्रकार से व्यवस्था करने पर भण्डारण किये गये अनाज में कीड़े लगने की सम्भावना समाप्त हो जाती थी।

3.2.3 पशुपालन व्यवस्था

भारत वर्ष में अति प्राचीन काल से ही पशुपालन की परम्परा रही है। मानव जीवन के आर्थिक पक्ष में पशुओं का स्थान अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। बुद्धकालीन ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था की उन्नति तथा विकास में पशुओं का बडा महत्त्व था। कृषि के साथ पशुपालन का अनिवार्य एवं अटूट सम्बन्ध स्वतः सिद्ध है। पूर्वोक्त है कि शास्ता ने सर्वज्ञता के लिए विभिन्न गति-योनियों में जन्म ग्रहण कर बुद्धत्व की योग्यता को प्राप्त किया। भगवान बुद्ध का पशु-पक्षियों की योनियों में जन्म लेने का सम्बन्ध मनुष्य के आर्थिक जीवन में पशु-पक्षियों का स्थान रेखांकित करता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि तथागत सभी सत्वों के प्रतीक कितना प्रेम और दया का भाव रखते थे। थेरीगाथा से ध्यातव्य है कि एक भिक्षुणी पशु प्रेम को व्यक्त करते हुये कहती है कि संन्यास लेकर मैनें घर छोड़ा, आप्तजन, खेती एवं पशुओं को छोड़ा।[331] इस उद्‌गारों से स्पष्ट होता है

---

[329] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अंगुत्तरनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 361

[330] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि हिन्दी कोश"*, पृ.157

[331] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"थेरीगाथापालि"*, पृ.सं.293

कि तत्कालीन समाज में कृषि एवं पशुओं के प्रति बड़ा ही स्नेह था। यह तत्कालीन समाज में पशुओं का स्थान एवं उपयोगिता का परिचायक है। बुद्धकालीन समाज कृषि प्रधान आर्थिक जीवन यापन करने वाला था, जिनकी कृषि अर्थव्यवस्था में पशुओं का महत्त्व पूर्ण स्थान था। सुत्तनिपात से ज्ञातव्य है कि धनिया गोप नामक व्यक्ति कहता है- ''मेरे तरूण बैल है और बछड़े है, गाभिन गाय और तरूण गाय भी है और सबके बीच वृषभराज भी है। अब हे देव! चाहे तो खूब बरसों।''[332] इससे स्पष्ट है कि एक कृषक के लिए गाय और बैल को रखना शुभकर होता था।

प्राचीन इतिहास के अवलोकन से स्पष्ट होता है किपाषाण काल में पशुओं का शिकार होता था। मानव सभ्यता के आरम्भिक काल में पशुओं के माँस एवं खाल से भोजन एवं वस्त्र का निर्माण करते थे। कालान्तर में मानव समूह बनाकर स्थिर होने लगे इस कारण पशुओं की उपयुक्तता को जानकार, उनकी शिकार करने के स्थान पर उनका पालन किया जाने लगा। पशुपालन की उन्नतावस्था कृषि के साथ साथ स्वीकार की जाती थी। प्राचीन काल में पशुओं को 'पशुधन' की संज्ञा डी जाती थी। पशुओं की संख्या से सम्पत्ति का मापन किया जाता था। पशुपालन के महत्त्व को सामान्य जनता के साथ-साथ प्रशासकों ने भी स्वीकृत किया था । पशुपालन और तत्सम्बन्धित उत्पादनों से राजकोष में वृद्धि होती थी। प्राचीन भारत वर्ष में अधिकांश लोगों का आरम्भिक व्यवसाय पशुपालन तथा कृषि रहा। पशुपालन तथा कृषि में किसी वर्गविशेष का प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता अपितु सम्पूर्ण समाज के द्वारा यह व्यवसाय किये जाते थे। मज्झिमनिकाय की अट्ठकथा के *धनिय सुत्तवण्णना* से ज्ञातव्य है कि गोपालक धनिय नामक व्यक्ति के पास अधिक संख्या में पशु थे। जिनकी संख्या है; यथा-सत्ताइस हजार दुधारू गाये एवं तीन हजार अन्य पशु। स्वाभाविक ही

---

[332] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"सुत्तनिपातपालि",* पृ.सं.07

अत्यधिक पशु होने के कारण उनके पालन पोषण के लिए कृषक तथा पशुपालकों के पास पर्याप्त चारा की व्यवस्था और चरागाहे होते होगे। "अच्छी नस्ल के बछड़े उत्त्पन्न हो गोवंशवृद्धिकारक, गोवंश की उन्नति करने वाले वृषभ (साँड़ों) का उल्लेख भी मज्झिमनिकाय में प्राप्त होता है।"[333] संख्या में अधिक पशुओं को एक स्थान पर बांधकर खिलाना असम्भव है। त्रिपिटक के कतिपय सुत्तों में ग्वालों के माध्यम से धूम-घूम कर चराने के उल्लेख प्राप्त होते है। धम्मपद के यमकवग्ग की गाथा से ज्ञातव्य है कि *"गोपो व गावो गणयं परेसं"*[334] अर्थात् दूसरों की गौवें गिनने वाला ग्वाला। इससे स्पष्ट है कि अत्यधिक संख्या में पशु होने के कारण उनका स्वामित्व करने वाले पशुपालक 'गोपालो' को रखते थे। इस कार्य के लिए उसे या तो वेतन दिया जाता था अथवा कुछ अनाज या वह उन पशुओं में से ही वह प्राप्त करता था । इन गोपालकों का कार्य यह था कि वह पशुओं के स्वामी के गृह से चराने के लिए ले जाया जाता था तथा संध्या के समय उनपशुओं को लाकर पशुओं के स्वामी को उनकी गणना करके सौंप देता था। मज्झिमनिकाय के 'महागोपालसुत्त'[335]से ज्ञातव्य है कि गोपालकों के योग्य- अयोग्यता की पहचान के ग्यारह गुण होते है। भगवान् ने इस सुत्त में गोपालक के योग्यता-अयोग्यता का विश्लेषण प्रस्तुत कर तत्कालीन भारतवर्ष के पशुपालक गोपालों की कुशलता एवं अकुशलता का विवेचन किया है। कोई भी गोपालक इन ग्यारह गलत बातों के रहते अपनी गौओं की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो पाता। गोपालकों के ग्यारह गुण निम्न प्रकार से है- (1) *'गोपालको न रूपञ्ञु होति'* अर्थात् जो गोपालक न तो गायों के रूप (वर्ण) को पहचानता है, (2) *'न लक्खणकुसलो होति'* अर्थात् न उनके लक्षण (चिह्न) पहचानता है, (3) *'न आसाटिकं हारेता होति'* अर्थात् न गायो को

---

[333] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"मज्झिमनिकायपालि"* (मूलपण्णासकं) भाग 1, पृ.सं. 347-348

[334] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"धम्मपदं"*, पृ.सं. 5

[335] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"मज्झिमनिकायपालि"* (मूलपण्णासकं) भाग 1, पृ.सं. पृ.सं. 337

काटने वाली काली मक्खियों को हटाना जानता है, (4) '*न वणं पटिच्छादेता होति*' अर्थात् न गौओं के व्रण (भाव) को ठीक करना जानता है, (5) '*न धूमं कत्ता होति*' अर्थात् न (मच्छर भगाने के लिये) धुआँ करना जानता है, (6) '*न तित्थं जानाति*' अर्थात् न उनका जल पीने योग्य स्थान जानता है, (7) '*न पीतं जानाति*' अर्थात् न गायों के पीने योग्य जल के विषय में कुछ जानता है कि वे पूरा जल पी भूकी या प्यासी रह गयी, (8) '*न वीथिं जानाति*' अर्थात् न उनके घरों की गलियों को ही तक तरह से जानता है कि वे किस गली के किस घर में रहती है, (9) '*न गोचारकुसलो होति*' अर्थात् न उनके चारागाह के बारे में ठीक से जानता है कि कहाँ घास ठीक है कहाँ नही, (10) '*अनवसेसदोही च होति*' अर्थात् जो पूरा दूध निकाल लेता है बछडो के लिये नहीं छोडता, (11) '*ये ते उसभा गोपितरो गोपरिणायका ते न अतिरेकपूजाय पूजेता होति*' अर्थात् जो गोवंशवृद्धिकारक सांडो को सम्मान और स्नेह नहीं देता।[336] इन ग्यारह दोषों से युक्त कोई भी गोपालक गौ समूह की रक्षा करने या उन्हें मुख देने में समर्थ नहीं हो सकता।

इसके विपरीत जैसे ग्यारह गुणों से युक्त गोपालक ही गोरक्षा में समर्थ होता है; यथा- जो गोपालक (1) गौ के रूप (वर्ण) को पहचानता है, (2) उनके लक्षण (चिह्न) पहचानता है, (3) मक्खी को हटाना जानता है, (4) व्रण की चिकित्सा को ठीक करना जानता है, (5) धुआँ करने वाला, (6) जलस्थान को जानता है, (7) गायों के पीने की स्थिति, (8) गोचर का ज्ञाता, (9) वीथिकुशल, (10) सावशेषदोही और (11) गोवंशवृद्धिकारक सांडों की पहचान रखता है। इन ग्यारह सदगुणों से युक्त गोपालक गोचरण में कुशल माना जाता है।

[336] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*मज्झिमनिकायपालि*" (मूलपण्णासकं) भाग 1, पृ.सं. पृ.सं. 337

पुनः मज्झिमनिकाय के चुल्ल गोपालकसुत्त से ज्ञातव्य है कि गोपालकों में पशुओं को नदी पार कराने का गुण भी होता है। तत्कालीन गोपालक नदी पार करने की कला में अत्यन्त निपुण थे। वे गोपालाक बलवान से बलवान तथा छोटे-बड़े अथवा दुर्बल सभी पशुओं को नदी पार करा सकते थे। "भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए भगवान् ने कहा भिक्षुओं! पूर्व काल में मगध के निवासी गोपालक ने वर्षा के अन्तिम मास में अत्यन्त बुद्धिमत्ता पूर्वक गायों को गंगा नदी पार कर विदेह पहुँचाया।"[337]

पालि त्रिपिटक से ज्ञात होता है कि बुद्धकालीन भारतवर्ष में न केवल कृषि के लिए अपितु अन्य कार्यों के लिए भी पशुओं की उपयोगिता थी। तत्कालीन व्यापार-उद्यम एवं परिवहन पशुओं की सहायता से किया जाता था। कतिपय जातकों में व्यापार के लिए बैलगाड़ियों के उपयोग का उल्लेख प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि बैलों की सहायता से बैलगाड़ियाँ प्रयुक्त थी।[338] मज्झिमनिकाय के रथविनीतसुत्त से ज्ञातव्य है कि "कोसल नरेश प्रसेनजित को श्रावस्ती से साकेत अत्यावश्यक कार्य के लिए जाना था। उस समय उसके लिए श्रावस्ती और साकेत के मध्य सात विभिन्न स्थानों में विभिन्न रथविनीत को तैयार किया गया था। इस सुत्त से ज्ञात होता है कि रथ चलाने हेतु कुशल घोड़ों को उपयोग में लाया जाता था।"[339] "आरञ्ञ जातक में भी घोड़ों का रथ में जोतने उल्लेख प्राप्त होता है।"[340] भीमसेन जातक से ज्ञातव्य है कि युद्ध कर्म के लिए हाथीयों का उपयोग किया जाता था।[341] दूध के लिए गाय, भैस का उपयोग किया जाता था।[342] मतकभत्तक जातक में बकरी और भेड़ का उल्लेख है।[343]

---

[337] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*मज्झिमनिकायपालि*" (मूलपण्णासकं) भाग 1,पृ.सं. 347
[338] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-प्रथम भाग*" (अपण्णक जातक), पृ.सं.147
[339] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*मज्झिमनिकायपालि*" (मूलपण्णासकं) भाग 1, पृ.सं. 241
[340] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-प्रथम भाग*" (आरञ्ञ जातक), पृ.सं.249
[341] वही, (भीमसेन जातक), पृ.सं. 459
[342] वही, (विस्सासभाजन जातक), पृ.सं. 496
[343] वही, (मतकभत्तक जातक), पृ.सं. 231

भार ढोहने के लिए गधा, खच्चर व ऊँट इत्यादि का पालन किया जाता था। पालि त्रिपिटक साहित्य में ऊन का उल्लेख प्राप्त है, जिसके लिए भेड़ का लालन-पालन किया जाता था। मांसाहार के लिए भेड़, बकरी को रखा जाता था। उपर्युक्त सभी प्रकार के पशुओं का लोग लालन-पालन करते थे तथा उनका क्रय-विक्रय भी करते थे। मधु के लिए मधुमक्खियों का उल्लेख प्राप्त है। मज्झिमनिकाय से ज्ञातव्य है कि *"सेय्यथापि भन्ते, पुरिसो जिघच्छादुब्बल्यपरेतो मधुपिण्डकं अधिगच्छेय, सो यतो यतो सामेय्य लभेथेव सादुरसं असेचनकं"* [344] त्रिपिटक में गो-पालन तथा गो-दान का भी उल्लेख प्राप्त है। घोड़ो का भी अत्याधिक मात्रा में प्रयोग का उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि गाय तथा अश्व को पालन करना तत्कालीन उद्योग में मुख्य रूप से प्रचलित था। व्याघ्र-चर्म, मृग-चर्म तथा अन्य पशुओं चर्मो के लिए भी प्राचीन काल में पशुओं का लालन-पालन तत्कालीन औद्योगिक स्तर के विकास का द्योतक है।

3.2.4 कृषि एवं पशुपालन आधारित उद्योग

बुद्धकालीन भारत वर्ष में ऐसे अनेक उद्योग-धन्धे थे, जो आंशिक अथवा पूर्णरूप से कृषि आधारित थे। जिनमें प्रमुखता से खाद्यान्न सम्बन्धित उद्योग; यथा- अन्न-धान्य उत्पादन, शाक-सब्जी एवं फलोद्योग, इक्षु-शर्करा उद्योग, आबकारी श्रेणी का मद्य उद्योग, पुष्प उद्योग, सुगन्धित द्रव्य, तेल, इत्र और मधु इत्यादि के उद्योग ऐसे थे जिनका कृषि कर्म से प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध अवश्य था।

वृक्षारोपण- बागवानी से सम्बन्धित काष्ठ उद्योग, पशुपालन सम्बन्धित दुग्ध एवं चर्म उद्योग, बेंत बास पर आधारित टोकरी-चटाई आदि शिल्पोद्योग। यहाँ कृषि आधारित प्रमुख उद्योगों का विवेचन निम्नवत किया जायेगा।

---

[344] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"मज्झिमनिकायपालि"* (मूलपण्णासकं) भाग 1,पृ.सं.186

3.2.4.1 फलों एवं फलोद्योग का विवरण-

कृषि उत्पाद के रूप में बुद्धकालीन ग्राम में प्राप्त फलों का एवं फलोद्योग का विवरण-पालि त्रिपिटक में कृषि उत्पाद के रूप में विभिन्न फलों का विवरण प्राप्त होता है। तत्कालीन समय कृषि प्रधान होने के कारण विभिन्न फलों का भी अत्यन्त महत्त्व होता था। कतिपय जातकों तथा सुत्तों में आगत कुछ फल यह है; यथा- अम्ब जातक से ज्ञातव्य है कि नाना प्रकार के फलों में अम्ब श्रेष्ठ है। आम के साथ जामुन, कटहल, नारियल, मोच (केला), और आंवला इत्यादि का उल्लेख इस जातक में है।[345] वाळोदक जातक में अंगूर का उल्लेख प्राप्त है। [346]

3.2.4.2 तत्कालीन वृक्षों का विवरण-

आर्थिक व्यवस्था के सहसम्बन्ध में कृषि आधारित आर्थिक व्यवस्था में वृक्षों का महत्त्व अधिक होता है। इन वृक्षों के द्वारा मानव उपयोगी अनेक वस्तुओं का निर्माण प्राचीन काल से किया जाता था। वृक्ष न केवल शीतल छाया, मधुर फल प्रदान करते है। अपितु नष्ट होने पर जलाऊ, आवास के लिए तथा अन्य मानव उपयोगी वस्तुओं के लिए उपयुक्त है। अनेक प्रकार के वृक्षों का उल्लेख त्रिपिटक में प्राप्त होता है। फल देने वाले वृक्षों का उल्लेख तो प्राप्त होता ही है किन्तु अन्य उपयोगी वृक्षों का भी उल्लेख त्रिपिटक में प्राप्त होता है। इमारत तथा भवन निर्माण हेतु होता था, जिसे इमारिती लकड़ी कहा जा सकता है। कुछ लकड़ियां जलाने के प्रयोग में लायी जाती थी जिसे जलाऊ लकड़ी कहा जा सकता है। त्रिपिटक में जिन प्रमुख वृक्षों का उल्लेख है, उनमें साल वृक्ष, तमाल, चन्दन, पीपल, नीम,[347] बरगद,[348] कपित्थ, बहरी एवं पलास[349] इत्यादि विभिन्न वृक्षों का वर्णन प्राप्त होता है।

---

[345] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-द्वितीय भाग*" (अम्ब जातक), पृ.सं.54
[346] वही, पृ. सं. 243
[347] वही, *तृतीय भाग*" (पुचिमन्द जातक), पृ.सं. 235
[348] वही, (धोनसाख जातक), पृ.सं.379
[349] वही, पृ.सं. 222

3.2.4.3 कृषि उत्पाद एवं खाद्यान्न उद्योग

बुद्ध कालीन अन्न-धान्य उपज के स्वरुप हमें मुख्यतः धान, ईख और जौ तथा अन्य फसलों का उल्लेख प्राप्त होता है। त्रिपिटक साहित्य में 'सालि'[350] अर्थात् शालि या धान का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त 'सालिक्खेत्त'[351] अर्थात् धान का खेत 'सालिगब्भ' अर्थात् पकती हुई शालि धन की फसल और सालि-भत्त [352] अर्थात् चावल का भोजन इत्यादी उल्लेख प्राप्त होते है। बुद्ध कालीन समाज में धान की खेती अत्यधिक होने के प्रमाण उपलब्ध होते है। इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय समाज की मुख्य फसल धान थी और चावल ही मुख्य आहार के रूप में प्रयुक्त होता था। धान की फसल का वर्णन जातकों में भी आया है। कपि जातक से ज्ञात होता है कि धान कूटने का कार्य करने वाली एक दासी ने उसके फैलाये हुए धान को खा रहे एक बकरी को जलती हुई लकड़ी से मारने का उल्लेख प्राप्त है।[353] भिक्षुणी पटाचारा के उद्धरण है कि

"मुसलानि गहेत्वान, धञ्ञं कोट्टेन्ति माणवा ।

पुत्तदारानि पोसेन्ता, धनं विन्दन्ति माणवा ॥[354]

अङ्गुत्तरनिकाय निकाय से ध्यातव्य है कि शास्ता ने आनन्द से कहाँ कि "जिस प्रकार आनन्द! किसी सम्पन्न (लहलहाते) धान के खेत में श्वेतास्थिका नामक रोग लग जाता है, तो वह खेत चिरस्थायी नहीं होता। जिसप्रकार आनन्द! किसी सम्पन्न (लहलहाते) ईख के खेत में माञ्जेष्ठीका (लाल रोग) लग जाय है, तो वह ईख का खेत चिरस्थायी नहीं रह जाता।"[355]

पुनः अङ्गुत्तरनिकाय निकाय से ज्ञात होता है कि "भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए भगवान् ने कहा भिक्षुओं चाहे धान की बाकी हो या जौ की, ठीक से

---

[350] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि हिन्दी कोश"*, पृ.सं. 346

[351] वही,

[352] वही,

[353] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"जातक अट्ठकथा-चतुर्थ भाग"* (कपि जातक), पृ.सं. 22

[354] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"थेरीगाथापालि"*,पृ.सं. 256

[355] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 465

न रखी गयी हो तथा उस पर यदि हाथ या पाँव पड़ जाये तो इसकी सम्भावना है कि उससे हाथ या पाँव बिन्ध जायेगा और रक्तस्त्राव होने लगेगा।"[356] उपर्युक्त उद्धरण से तत्कालीन भारत वर्ष में धान की कृषि के विभिन्न साक्ष्य प्राप्त होते है। जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह बुद्धकालीन भारत में मुख्य फसल थी ।

पालि त्रिपिटक साहित्य में इक्षु की कृषि का भी वर्णन प्राप्त होता है। अङ्गुत्तरनिकाय निकाय से ध्यातव्य है कि भगवान् तथागत भिक्षुओं से कहते है "जैसे भिक्षुओं ! इक्षु का बीज आर्द्र पृथ्वी में डाल दिया जाये, वह जैसे पृथ्वीरस को या जल रस को ग्रहण करेगा। वह सब मधुर ही होगा।[357]" तत्कालीन समय में इक्षु के खेतों में माञ्जेष्ठीका (लाल रोग) होने का उल्लेख प्राप्त होता।

त्रिपिटक में 'यव'[358] का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसका शब्दगत तात्पर्य जौ होता है। इसके अतिरिक्त उड़द, मूंग, बाजरा, गेहूँ, कोदो, तिल, सरसों और कपास का भी उत्पादन किया जाता था।

3.2.4.4 इक्षु-शर्करा उद्योग

कृषि आधारित उद्योगों में इक्षु-शर्करा उद्योग प्राचीन है। इस उद्योग से सम्बन्धित विशद वर्णन त्रिपिटक में भी प्राप्त होता है। उच्छु खण्डिका ईख का टुकड़ा, उच्छुखादन = ईंख चूसना, उच्छु खेत्त ईंख का खेत, उच्छुगण्ठिका ईंख का एक प्रकार, उच्छुपाल = ईंख का रखवाला, उच्छुपीलन= ईंख पेरना, उच्छुपुट = ईंख का टोकरा, उच्छु बीज ईंख का बीआ, उच्छु यंत्र = चीनीमिल, उच्छरस, उच्छुवात, उच्छुसाला आदि अनेक इक्षु से शर्करा उत्पादन के पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख हुआ है।

---

[356] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि",* भाग 1, पृ.सं. 11

[357] वही, भाग 4, पृ.सं. 330

[358] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि हिन्दी कोश"*, पृ. सं. 164

पालि त्रिपिटक साहित्य से ज्ञात होता है कि भिक्षुओं के लिए गुड़ प्रयोग की अनुमति भगवान् बुद्ध द्वारा प्रदत्त थी। "अनुजानामि, भिक्खवे, यथासुखं गुळं परिभुञ्जिन्तु। [359]"गुड़ तथा अन्य भोजन पदार्थ से भरी पाँच सौ गाड़ियां को राजगृह से अन्धकविन्द के मार्ग में जाते हुए विनयपिटक के महावग्गपालि में उल्लिखित है।"[360] विनयपिटक में ईंख से गुड़ बनाये जाने का व उस गुड़ में कुछ मिलाकर खाने का उल्लेख में भगवान् ने कहा "यदि भिक्षुओं! गुड़में आटा या क्षार भी डाला जाता तो भी वह गुड़ ही कहा जाता है।"[361]

3.2.4.5 मद्य उद्योग

पालि त्रिपिटक साहित्य में मद्य का उल्लेख हुआ है। कुरुधम्मजातक [362] में मद्यपान की हीन दृष्टि से देखा गया है। परन्तु इन वर्जनाओं के पश्चात् भी बुद्ध युग में सुरापान पर्याप्त प्रचलित रहा। सुत्तों में पेय के रुप में सुरापान पेय के अनेकशः उल्लेख प्राप्त है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मदिरा का उत्पादन विस्तृत स्तर पर किया जाता था। मधुशालाओं तथा भट्ठी घरों का प्रशस्त उल्लेख किया गया। उत्सवों, पर्वों के अवसर तथा आमन्त्रण में आमन्त्रित मित्रों को मदिरा प्रदान की जाती थी। कुम्भ जातक से ज्ञात होता है कि "श्रावस्ती में सुरा-उत्सव की घोषणा पर पाँच सौ स्त्रियाँ ने तेज सुरा तैयार कर उत्सव मनाने का संकल्प किया। [363]"नानच्छन्द जातक से ध्यातव्य है कि चोरों ने सुरा के दुकान पर सुरा पी और घड़े में भरकर घर ले चले।[364] अत्यधिक नशीली मदिरा को मद्य तथा सामान्य प्रकार के अन्नों से निर्मित मदिरा को सुरा कहा जाता था। विनयपिटक में पांच प्रकार के सुरा का विवरण दिया गया है, जो चावल, पिट्ठ उबले हुए चावल तथा मसालों से निर्मित (मिश्रित) मैरेय

---

[359] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"महावग्गपालि"*, पृ.सं. 356
[360] वही, पृ.सं. 370
[361] वही, पृ.सं. 356
[362] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"जातक अट्ठकथा-तृतीय भाग"* (कुरुधम्म जातक), पृ.सं.101
[363] वही, तृतीय भाग(कुम्भ जातक), पृ.सं. 207
[364] वही, तृतीय भाग(नानच्छन्द जातक), पृ.सं. 167

अधिक लोकप्रिय प्रतीत होता है। एवं फेनिल पदार्थों से बने हुए थे। मधूक पुष्पों से आसवित वारुणि, प्रसन्ना तथा इक्षुरस से बनी हुई सीधु आदि अन्य प्रकार की प्रयुक्त मदिराएं थीं।

3.2.4.6 सुगन्ध-उद्योग

पालि त्रिपिटक साहित्य में सुगन्ध-उद्योग में लगे गन्धिक को (सुगन्धिक), सुरभिगन्ध, सोगन्धिय, गन्धिका, गन्धिलेहि, गन्धिन, आदि नामों से पुकारा गया है। यह सुगन्धित पदार्थों (चन्दन) आदि का संग्रह एवं विक्रय करता था। गन्ध, सामान्यतया सुगन्धिक पदार्थों से निकले हुए सुवास के लिए प्रयुक्त है। अङ्गुत्तरनिकाय निकाय के गन्धजातसुत्त तीन प्रकार के गन्ध द्रव्यसमूह का उल्लेख है; यथा-मूलगन्ध, काष्ठगन्ध एवं पुष्पगन्ध।[365] सुगन्धियों का निर्माण प्रसाधनिक सामग्रियों के लिए लेप अथवा चूर्ण रूपों में किया जाता गन्धआलेप, गन्धआसा, गन्धोदक (सुगन्धित जल), गन्धकरण्डक (गन्धमञ्जूषा), गन्धकूटी, (यह एक प्रकार की विशिष्ट कुटी थी, जो जेतवन में अनाथपिण्डक द्वारा निर्मित की गयी थी), गन्धचुन्न (स्नानार्थ सुगन्धित चूर्ण), गन्धतेल (सुगन्धित तेल), तथा गन्धसन्निधि, आदि के उल्लेखों से भी सुगन्धि-उद्योग का ज्ञान होता है।

सुगन्धि-उद्योग में चन्दन का विशेष महत्त्व था (आज भी है) उसके कई नाम एवं प्रकारों का उल्लेख हुआ है, यथा-चन्दन, काशिक चन्दन, रक्त चन्दन, लोहित चन्दन, हरिचन्दन, चन्दनास्सद, चन्दन गन्धित, चन्दन विलेपन, चन्दनसार, इत्यादि। संयुत्तनिकाय के अनिच्चसञ्ञासुत्त से ध्यातव्य है कि "भिक्षुओं! जैसे सभी गन्धवृक्षों में रक्तचन्दन उत्तम समझा जाता है"[366] इस प्रकार की उपमा देकर भगवान् ने भिक्षुओं को उपदेशित किया है। जिससे तत्कालीन समाज में सुगन्धि-उद्योग में चन्दन के महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है।

---

[365] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अंगुत्तरनिकायपालि"* भाग 1, पृ. सं. 296
[366] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"संयुत्तनिकायपालि"* भाग 2, पृ. सं. 938

भगवान् ने पुष्पों में भिक्षुओं! जैसे सभी गन्धपुष्पों में जूही उत्तम समझा जाता है।"[367] इस प्रकार की उपमा देकर गन्धपुष्पों मालाकार की विद्यमानता को स्पष्ट किया है। 'पटदूसक जातक' में माली की कथा से इस व्यवसाय की पुष्टि होती है।[368] माली अपने पुष्पों मालाओं को खुले बाजार में भी विथियों पर बैठकर बेचते थे।

3.2.4.7 पशुपालन आधारित उद्योग

प्राचीन भारत में पशुपालन कृषि के साथ-साथ अर्थव्यवस्था और समाज का एक महत्त्व पूर्ण अंग था। वैदिक काल से लेकर मौर्य और गुप्त काल तक पशुपालन का व्यापक रूप से विकास हुआ। इसे धार्मिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्व पूर्ण माना जाता था। प्राचीन भारत में पशुपालन केवल एक व्यवसाय नहीं था, बल्कि यह जीवनशैली और संस्कृति का हिस्सा था। यह न केवल आर्थिक बल्कि धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्व पूर्ण था। प्राचीन भारत में पशुपालन एक महत्त्व पूर्ण आर्थिक गतिविधि थी और इससे कई उद्योग विकसित हुए थे। पशुपालन आधारित उद्योगों ने समाज के विभिन्न वर्गों को आजीविका प्रदान की और अर्थव्यवस्था में महत्त्व पूर्ण योगदान दिया। पशुपालन आधारित उद्योगों का विवरण निम्नवत है-

3.2.4.7.1 दुग्ध उद्योग

प्राचीन काल में देश में दूध की नदियाँ बहती थी। यज्ञों के लिए पर्याप्त मात्रा में घी उपलब्ध रहता था। गृहस्थाश्रम के प्रायः सभी ग्रामवासी दूध देने वाले पशुओं का पालन करते थे पालते और उनके दुग्धों से दही, छाँछ, मक्खन और नवनीत (घी)[369] इत्यादि तैयार करते थे। अङ्गुत्तरनिकाय निकाय से ज्ञातव्य है कि "कोई प्रसिद्ध धनपति घी, दूध आदि का उपयोग कर अपने को सुखी

---

[367] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "संयुत्तनिकायपालि" भाग 2, पृ. सं. 939

[368] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-तृतीय भाग*" (पटदूसक जातक), पृ.सं. 126-127

[369] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*मज्झिमनिकायपालि*", भाग 3, पृ.सं. 1234

अनुभव करता है।"[370] यह उद्योग निश्चित रूप से गृह उद्योग के अन्तर्गत लघु रूप में किया जाता था। उस समय यह उद्योग वर्तमान डेयरी उद्योग के रूप में विकसित नहीं था, फिर भी इससे जन-साधारण की प्रायः प्रत्येक प्रकार की आवश्यकताएँ पूरी हो जाती थीं। उस समय नगरों में निवास करने वाले लोग दूध देने वाले पशुओं का पालन नहीं कर पाते थे, इसलिए उनके आवश्कता को पूर्ण करने के लिए ग्रामवासी लोग दुग्धधारी पशुओं का पालन कर दुग्ध तथा उससे निर्मित वस्तुएं नगरों को भेजा करते थे। इसी आधार पर यह माना जाता है कि प्राचीन काल में दुग्ध उद्योग भी विकसित अवस्था को प्राप्त था।

3.2.4.7.2 मत्स्य एवं मत्स्य-व्यवसाय

पालि त्रिपिटक में मत्स्य सम्बन्धित अनेक सूचनाएँ प्राप्त है, जिससे यह प्रतीत होता है कि मत्स्य का भी तत्कालीन समाज के आर्थिक जीवन से सम्बन्ध था। इनके सम्बन्ध में वर्णन कतिपय जातकों में प्राप्त होते है। इनकी अनेक प्रजातियाँ जैसे रोहित, नलपी, सतवंश, अलिगगार, पाठी, कामच्छ, शंकुल, सेवक, सिंगी इत्यादि का उल्लेख मिलता है। मच्छ जातक से ज्ञात होता है कि मछुएँ एवं मछलियों को पकड़ कर जीविका करते थे।[371] मछलियों को खाना शुभ माना जाता था विशेष यात्रा या उत्सवों पर लोग मछली खाते थे।

मछलियों में रोहित मछली का उल्लेख अच्छे भोजन के रूप में किया गया है, रोहित मछली का स्वाद अन्य मछली की अपेक्षा अच्छा होता था। परिणामतः मछुआरे इन्हें अच्छी कीमत पर क्रय-विक्रय थे। मच्छुद्दान जातक से ज्ञातव्य है कि मछुवे मछली लेकर उसे बेचने नगर आये। मछली का मूल्य एक हजार कषार्पण सात मासक था।[372] मनुष्य आर्थिक जीवन में विभिन्न पशु, पक्षी, मत्स्य इत्यादि की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । पालि त्रिपिटक साहित्य पशुपालक, गोपालक,

---

[370] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 418

[371] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"जातक अट्ठकथा-द्वितीय भाग"* (मच्छ जातक), पृ.सं.338

[372] वही, तृतीय भाग (मच्छुद्दान जातक), पृ.सं.164

ग्वाल, मछुआरे इत्यादि सम्बोधन तत्कालीन समाज में इन व्यवसायों की विद्यमानता का द्यातक है । दूध, घी, दवा, कृषि, माँस, इत्यादि पशु-पक्षियों एवं जलचरों प्राचीन काल से ही मानव प्राप्त करते आ रहा है। आर्थिक जीवन में पशु-पक्षियों एवं जलचरों से मानव जीवन सदैव समृद्धशाली बना है।

3.3 पालि सुत्तों में व्यवसाय एवं उद्योग

पालि सुत्तों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बुद्धकालीन समाज मे विभिन्न उद्योग तथा व्यवसायों का विकास हो गया था। व्यावसायिक प्रगति राष्ट्र के उन्नति एवं समृद्धि का प्रतिक का होती है। पालि त्रिपिटक से बुद्धकालीन उद्योगों का ज्ञान प्राप्त होता है । तत्कालीन समाज में विकसित तथा प्रचलित उद्योंगों का विवरण निम्नवत है-

3.3.1 वस्त्र उद्योग-

पालि सुत्तो में वस्त्र सम्बन्धित उद्योग के अनेक सन्दर्भ प्राप्त होता है तत्कालीन समाज मे कृषक वर्ग कृषि उपज मे अनेक प्रकार के उत्पादन करते थे। जिनमें कपास की कृषि होने उल्लेख प्राप्त है। कृषि उत्पादन मे कपास की उत्पाद निश्चय ही वस्त्रोद्योग का संकेत प्रदान करता है। कपास के द्वारा रूई तथा रूई से सूत्त को बनाया गया था । जिससे यह स्पष्ट तो हो जाता है तत्कालीन जन-समाज सूती वस्त्रों का प्रमुख्ता उपयोग करते थे । पालि सूत्तों मे कुछ वस्त्रों के खाल से निर्मित वस्त्र, पशुओं के चर्म से बने कपडे, कुश से निर्माण की सूचना प्राप्त होती है। भगवान बुद्ध के समकालीन आचार्यों में अजित केसकम्बल का नाम आाता है। इनके नाम से ही ज्ञात होता है कि केश से बने हुई कम्बल तथा पशु पक्षियों के केश एवं पंखो के द्वारा भी वस्त्र निर्माण किया जाता था। तत्कालीन समय मे काशी के वस्त्र की अधिक प्रसिद्धि थी । महावाणिज जातक में काशी के वस्त्रों की चर्चा की गयी है।[373]

---

[373] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"जातक अट्ठकथा-पञ्चम भाग"* (महावाणिज जातक), पृ.सं. 22

संयुत्तनिकाय के काशिकेयवस्त्रसूत्र से ध्यातव्य है कि भगवान् ने कहा भिक्षुओं ! जैसे बुने गये वस्त्रों में काशी का बना कौशेय (रेशमी) वस्त्र श्रेष्ठ समझा जाता है ।"[374] वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित बुनकर का व्यवसाय प्रसिद्व था। बुनकरो के लिए 'तन्तुवाय' शब्द का प्रयोग पालि-त्रिपिटक में प्राप्त होता है । पूवोक्त है कि बुद्धकालीन बुनकर सूती, उन से निर्मित एवं रेशमी वस्त्रों का निर्माण करते थे। जिनमें काशी के रेशमी वस्त्र निर्माण करने वाले बुनकर विशेष प्रसिद्ध थे।

3.3.2 धातु उद्योग-

ई.पू. 600 से 300 ई. के बीच धातु उद्योग का व्यापक रूप से विकास हुआ था। अङ्गुत्तरनिकाय निकाय के उपक्लेश सुत्त ज्ञातव्य है कि "सुवर्ण के पाँच उपक्लेश माने गये है: जिनके कारण सुवर्ण न मृदु होता है, दर्शनीय, न चमकीला, न परिवर्तन योग्य और न कार्य में आने योग्य। कौन से पाँच उपक्लेश? उसमें कुछ लौह का, कुछ कच्चे लौह का, कुछ जस्ते का, कुछ सीसे का तथा कुछ कुछ चांदी का भाग होता है।"[375] इस प्रकार विभिन्न धातुओं का उल्लेख व ज्ञान तत्कालीन समाज को था। इससे यह स्पष्ट है कि बुद्धकाल में धातु उद्योग विकसित हो चूका था। स्वर्णकार द्वारा स्वर्ण के परिष्करण की प्रक्रिया की जाती थी। स्वर्ण में जो भी उपक्लेश होते थे उनको पूर्णरूप से स्वच्छ कर वह उसव विशुद्ध स्वर्ण से विभिन्न आभूषण बनवाता था। अङ्गुत्तरनिकाय निकाय के ज्ञातव्य है कि "सुनार अशुद्ध सुवर्ण को धोकर शुद्ध कर उससे जो भी आभूषण बनाना चाहें- पट्टिका, कानों के कुण्डल, गले का हार या सुवर्णमाला-सब कुछ बनाते है।"[376]

---

[374] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "संयुत्तनिकायपालि" भाग 4, पृ. सं. 1676

[375] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 2, पृ.सं. 365

[376] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 1, पृ.सं. 332-334

बुद्ध कालीन भारत वर्ष में स्वर्णोद्योग के अतिरिक्त रजत (चाँदी) तथा लौह उद्योग भी प्रचलित था। स्वर्ण उद्योग से सम्बन्धित व्यवसाय प्रचलित था, जिसे स्वर्णकार कहा जाता था। त्रिपिटक में विभिन्न प्रकार के आभूषणों का उल्लेख प्राप्त है; यथा- मेखला, सुवणभूसन, माला चूड़ामणि, मुद्रिका एवं कुण्डल त्यादी का वर्णन प्राप्त होता है। कतिपय जातकों में भी सोने, चाँदी, मोती, हीरे, स्फटिक तथा अन्य बहुमूल्य धातुओं के अलंकरण का उल्लेख प्राप्त होता है। तत्कालीन समाज स्वर्णकारों में गौरव प्राप्त थे क्योंकि ये अत्यधिक सुन्दर सुन्दर स्वर्ण, रजत, मोती, हीरे, हाथी दाँत इत्यादि द्वारा आभूषण से बनते थे।

लोहे के आविष्कार से बुद्धकालीन भारत में वाणिज्य अता कृषि के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के बदलाव दिखलाई पड़ते है। इस समय समाज में लौह का उपयोग कर कृषि उपयुक्त विभिन्न वस्तुओं को बनाना आरम्भ होने की सूचना त्रिपिटक से प्राप्त होती है। लोहे के उद्योग के सम्बन्धित वर्णनों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन भारतवर्ष में लौह उद्योग का समुचित विकास हो गया था। दधिवाहन जातक से ज्ञातव्य है कि छुर-कुल्हाड़ी के द्वारा लकड़ियाँ लायी गयी थी[377] बन्धनागार जातक में 'यदायंस' का प्रयोग है, जिसका तात्पर्य यं जंजीर आदि लोहे से बना हुआ होता है।[378] इससे स्पष्ट है कि लौह निर्मित वस्तुओं का प्रयोग होता था। इस उद्योग से सम्बन्धित व्यवसाय भी होता था, जिसे लोहार कहा जाता था। त्रिपिटक में लोहे का कार्य करने वाले 'लुहारों' का भी उल्लेख है। लोहार अपने शिल्प कौशल्य से विविध प्रकार के लौह वस्तुओं भी निर्माण करते थे।

3.3.3 चर्म उद्योग-

तत्कालीन समाज में चर्म उद्योग भी प्रचलित होने के साहित्यिक प्रमाण प्राप्त होते है। विभिन्न पशूओं के मानव उपयुक्त वस्तुओं को चर्म उद्योग में

---

[377] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-द्वितीय भाग*" (दधिवाहन जातक), पृ.सं. 250
[378] वही, (बन्धनागार जातक), पृ.सं.295

कुशल शिल्पी बनाते थे। सम्भवतः जंगली पशुओं के चमड़े का उद्योग में विशेष स्थान था। "नील के लोहित, मंजीठ, कृष्ण, नारंगी तथा पीले संग के चमड़ों से जूते बनाये जाने तथा इनमें रंग-बिरंगे किनारे लगाने के उल्लेख मिलते है। एकतल्ले, दोतल्ले, तीनतल्ले तथा चारतल्ले जूते बनाये जाते थे। सिंह, व्याघ्र, मृग, चीते, उदबिलाव, बिल्ली, गिलहरी और उल्लू के चमड़ों से जूते बनाये जाते थे।"[379]

3.3.4 मृद्भाण्ड उद्योग-

प्राचीन भारतीय उद्योगों में मृद्भाण्ड उद्योग सर्वाधिक प्राचीन कहा जा सकता है। सिन्धु सभ्यता से लेकर वर्त्तमान तक यह प्रचलित है। त्रिपिटक में आगत विभिन्न सुत्तों से यह ज्ञात होता होता है कि तत्कालीन समाज में मिट्टी के पात्रों का उद्योग प्रचलित था। मृद्भाण्ड उद्योग से सम्बन्धित व्यवसाय भी होता था। जिसे कुम्भकार कहा जाता था। कुम्भकार विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्माण कर अपनी जीविका चलते थे। मज्झिम निकाय के घटिकार सुत्त से ध्यातव्य है कि "वह घटिकार वह न मूसल से और न अपने हाथ से पृथ्वी को खोदता है। जो भी (नदी के) किनारा आदि टूटने से या चूहे कुत्ते आदि द्वारा खोद कर छोड़ी गयी मिट्टी हो उसे लाकर, उसके पात्र बनाकर (लोगो से) कहता भाइयों! जिस किसी को पात्र की चाह हो यहाँ उसके बदले चावल, मूंग या मटर रखकर अपना मनचाहा पात्र ले जाये। यो महाराज! घटिकार कुम्भकार अपने अन्धे वृद्ध माता पिता का पोषण करता है।[380]" इस प्रकार इस व्यवसाय एवं अग्नि में पकाये गये बर्तनों का उल्लेख त्रिपिटक में प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि कुम्हार मिट्टी का बर्तन बनाने के बाद उसे आग में पकाते थे।

---

[379] सिंह, मदन मोहन, *"बुद्धकालीन समाज और धर्म"*, पृ.सं. 79

[380] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"मज्झिमनिकायपालि"*, भाग 2, पृ.सं. 783

3.3.5 काष्ठ उद्योग-

काष्ठ उद्योग मुख्यतः वृक्ष से सम्बन्धित है। अङ्गुत्तरनिकाय के रुक्खसुत्त चतुर्विध वृक्ष होते है; यथा- किसी वृक्ष के अन्दर और बाहर त्वचा ही त्वचा (फेग्गु) होती है; किसी के त्वचा कम और लकड़ी (सार) अधिक होती है; किसी में लकड़ी कम और त्वचा अधिक होती है; और किसी में अन्दर बाहर लकड़ी ही लकड़ी होती है।[381] काष्ठ से विभिन्न वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। काष्ठ का उपयोग भवन निर्माण एवं गृह निर्माण के लिए भी किया जाता था। त्रिपिटक साहित्य में बड्ढिक का उल्लेख प्राप्त है। सम्भवतः यह काष्ठ से विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करने का कार्य करते थे। इस प्रकार काष्ठ उद्योग विवरण त्रिपिटक में प्राप्त है।

3.3.6 सुत्तों में आगत विभिन्न व्यवसाय

पालि त्रिपिटक में बुद्धकालीन व्यवसाय एवं उद्योगों की पर्याप्त सूचना मिलती है। तत्कालीन भारत वर्ष में विभिन्न जनपदों का ह्रास व संगठित शक्तिशाकी जनपदों की स्थापना दिखलाई पड़ती है। इस समय चर शक्तिशाली महाजनपद स्थापित हुए। ई.पू. छठी शताब्दी में संगठित व्यापार-उद्यम धातुओं का प्रयोग तथा विनिमय प्रणाली में मुद्राओं का आविष्कार हो गया था। दीघ निकाय के 'सामञ्ञफल सुत्त' में शिल्पकारों के 25 प्रकार वर्णित है; यथा – "हत्थारोहा- हाथी की सवारी करने वाले, अस्सारोहा- अश्वारोही, रथिका- रथ चलने वाला, धनुग्गहा- धनुष चलाने वाला, चेलका...योधिनो-युद्ध में विभिन्न काम करने वाले लोग, दासकपुत्ता-दास लोग, आलारिका-रसोईया, कप्पका-नाई, नहापका-स्नान कराने वाले, सूदा-हलवाई, मालाकार-माला बनाने वाले, रजका-धोबी, पेसकारा-जुलाहे, नलकारा-बेंत और बाँस की वस्तुएँ बनाने वाले,

[381] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 2, पृ.सं. 152

कुम्भकारा- कुम्हार, गणका- हिसाब किताब की जाँच करने वाले और मुद्दिका-मुनीम।"[382] इस प्रकार शिल्प और व्यवसायों की जानकारी प्राप्त होती है।

बुद्धकालीन समाज में जीविकोपार्जन के लिए विभिन्न शिल्पों में कुशल शिल्पियों द्वारा विविध प्रकार के व्यवसायों का चुनाव किया जाता था। त्रिपिटक एवं कतिपय सुत्तों के अनके उद्धरणों से इस विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। आर्थिक उन्नति तथा जीवनशैली के विकास में लघु उद्योग एवं तत्सम्बन्धित व्यवसायों का योगदान अतुलनीय है। विभिन्न व्यवसायों की स्थिति से तत्कालीन समाज के आर्थिक स्वरुप का परिचय किया जा सकता है। पूर्वोक्त वर्णनों में उल्लिखित उद्योग तथा तत्सम्बन्धित व्यवसायों के विषय में विवेचन किया गया है। शेष कुछ व्यवसायों का वर्णन निम्नवत प्रस्तुत है-

3.3.6.1 चिकित्सक-

प्राचीन भारत में चिकित्सा एवं चिकित्सक का उल्लेख विशेष रूप से प्राप्त है। विभिन्न शारीरिक व्याधि एवं रोगों की चिकित्सा चिकित्सक करते थे। विनय पिटक के भैषज्य-स्कन्धक के अन्तर्गत औषधि और उसे बनाने के साधनों लिए पाँच भैषाज्यों का विधान किया है। इस समय विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार के लिए विविध औषधियों का प्रयोग किया जाता था। कतिपय जातकों एवं त्रिपिटक के अन्य ग्रन्थों में 'वैद्यक' व्यवसाय की सूचनाएँ प्राप्त होती है। चिकित्ससकों में आचार्य जीवक उल्लेख मिलता है। जिन्हें 'जीवको कोमारभच्चो'[383] बालरोगविशेषज्ञ जीवक कहा जाता था। जिन्होंने भगवान् बुद्ध, राजा बिम्बिसार तथा राजा प्रद्योत की चिकित्सा करने का विवरण प्राप्त होता है।

---

[382] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*दीघनिकायपालि*", भाग 1, पृ.सं. 20

[383] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*मज्झिमनिकायपालि*", भाग 2, पृ.सं. 511

3.3.6.2 ज्योतिषी एवं पुरोहित-

पालि त्रिपिटक में ज्योतिषी एवं पुरोहितों का उल्लेख प्राप्त है। वे लक्षणशास्त्र तथा भविष्यवक्ता के रूप में प्रचलित थे। ज्योतिषी स्थान पर स्थान-बतलाकर भविष्य-भूत को जनता स्थित में जनपदों निगम ,ग्राम विभिन्न हुए करते भ्रमण थे करते जीविकोपार्जन अपना। जातक के अविदूरे निदान से ज्ञातव्य है कि बोधिसत्व के लक्षण बतलाने के लिए राजा ने तीनों वेदों में पारंगत एक सौ आठ ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया। जिनमें से लक्षण जानने वाले आठ ब्राह्मणों ने व्याख्या की थी।[384]

3.3.6.3 जादूगर-

जादूगर का भी एक पेशा बुद्धकाल में प्रचलित था । संयुत्तनिकाय के फेनपिण्डूपमसुत्त से ज्ञातव्य है कि तथागत ने अपने उपदेश में उदहारण देते हुए कहाँ है "भिक्षुओं! जैसे कोई जादूगर या उसका शिष्य लोगों को, चौराहे पर खड़ा हो कर, अनेक प्रकार के जादू के खेल दिखता है। [385]"जातकों में अनेक स्थानों पर इस प्रकार अनेक प्रकार के जादू के खेल दिखाकर उपजीविका करने वाले जादूगरों का उल्लेख है।

3.3.6.4 गणिका-

पालि त्रिपिटक में आम्रपाली, सामावती आदि गणिकाओं की चर्चा प्राप्त है। तत्कालीन समाज में धनिक वर्ग के पुरुषों में गणिकाओं पास जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। अट्ठान जातक में नगरसोभिणी का उल्लेख आया है, जिसमें गणिका की कथा वर्णित है। महापरिनिब्बानसुत्त में आम्रपाली गणिका का उल्लेख है, जो वैशाली की नगरवधु थी। त्रिपिटक से ज्ञात होता है कि वैशाली के राजकुमारों में आम्रपाली से विवाह करने की प्रतिस्पर्धा हो गयी। जिस कारण

---

[384] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-प्रथम भाग*" (अविदूरेनिदान), पृ.सं. 91

[385] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*संयुत्तनिकायपालि*", भाग 2, पृ.सं.923

कलह शान्त करने के लिया पंचायत ने उसे सबकी सामान्य पत्नी बनाकर रहने का निर्णय दिया।[386]

3.3.6.5 उदकहारी -

तत्कालीन समाज में अभिजन वर्ग के लोग गृहकार्य के लिए दास-दासियों को रखते थे। ये दास-दासियाँ अपने स्वामियों के विभिन्न गृहकार्य करते थे। जैसे साफ-सफाई करना, कपड़े धोना, पानी भरना, बर्तन साफ करना इत्यादि। थेरीगाथा से ज्ञातव्य है कि पानी भरने वाली दासियों को 'उदकहारी' कहा गया है। अनाथपिण्डक गृहपति के घर पानी भरने का कार्य करने वाली पुन्निका दासी का कथन है- *"उदकहारी अहं सीते, सदा उदकमोतरिं। अय्यानं दण्डभयभीता, वाचादोसभट्टीता।।"* अर्थात् मैं उदकहारी थी, सदा पानी भरना ही मेरा काम था। स्वामी के दण्ड के भय से, उनके द्वारा गालियाँ मिलने के भय से, मुझे कड़ी सर्दी में भी सदा पानी में उतरकर पानी भरने का कार्य करना पड़ता था।"[387]

3.3.6.6 मनोरंजन का कार्य करने वाले पेशे-

मनोरंजन एवं मनोविनोद करने वाले विभिन्न पेशों का वर्णन त्रिपिटक साहित्य में प्राप्त है। इन पेशों में नट, गायक, नर्तक एवं खेलुक इत्यादि है। जिनका विवरण निम्नवत है-

नट-नर्तक, गायक एवं खेलुक-

ये कला दिखाने वाला एक पेशा था। ये अपनी शारीरिक कला दिखाकर जीवन यापन करते थे। संयुत्तनिकायपालि के तालपुट सुत्त से ज्ञातव्य है कि भगवान् राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में विराजमान थे। उस समय तालपुट नामक नटों का मुखिया वहाँ आया था। इस सुत्त में यह भी उल्लिखित

---

[386] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"दीघनिकायपालि"*, भाग 2, पृ.सं. 353

[387] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"थेरीगाथापालि"*, पृ.सं. 436

है कि "नट रंगमंच पर किसी विशेष मेले आदि के अवसरों पर अपने कौतुक क्रीडाओं द्वारा लोगों को हंसाते थे, मनोविनोद करते थे।"[388]

3.6.6.7 रसोईयाँ-

बुद्धकालीन समाज में धनिक वर्ग के अनेक लोग भोजन पकाने वाले रसोईयाँ नोकर के रूप में रखते थे। कुलीन परिवार तथा राजसी परिवार में भोजन बनाने का कार्य करने के कारण इनका भी जीवन सुख-सुविधाओं में यापन होता था। 'लोल जातक' से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में रसोईये का कार्य भी एक पेशे के रूप में प्रचलित था। इसी जातक की कथा से ध्यातव्य है कि "मत्स-मांस के लोभ में कौवे ने रसोईये के हाथों प्राणों को गंवायाँ।"[389]

3.6.6.8 मणिकार-

मणिकार लोग विभिन्न प्रकार की मणियों एवं बहुमूल्य रत्नों से आभूषण बनाते थे। 'मणिचूड़क सुत्त' में "मणिचूड़क नामक ग्रामणी के संलाप से एवं प्रसंग से स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में सुवर्ण, रजत एवं मणिरत्नादिक का व्यवसाय प्रचलित था।"[390]

3.6.6.9 रज्जक-

इनको रँगरेज भी कहा जाता था। ये लोग कपड़ों को रँगने का भी कार्य करते थे। रज्जक लोग जीवन यापन के लिए पूर्णतः कपड़ों की रंगायी पर ही निर्भर रहते थे। मज्झिमनिकाय के वत्थसुत्त से रँगरेज के पेशे का उल्लेख प्राप्त होता है। भगवान् ने उदहारण दिया है कि भिक्षुओं "जैसे कोई वस्त्र साफ-सुथरा हो जिसे रँगरेज जिस किसी रंग में रंगना चाहे- भले ही नीले रंग में, या पीले रंग में, या लाल रंग में, या मंजीठ के रंग में- वह आचा ही रंग जायेगा और

---

[388] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"संयुत्तनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 1503-1504

[389] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"जातक अट्ठकथा-द्वितीय भाग"* (लोल जातक), पृ.सं. 97

[390] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"संयुत्तनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 1527

शुद्ध वर्ण ही होगा।[391]" इस प्रकार इस पेशे का भी बुद्धकाल में वर्णन प्राप्त होता है।

3.6.6.10 नाई-

यह भी एक प्रमुख जाति थी जो सिर के बालों को बनाकर तथा संवारकर लोगों की सेवा करते थे। इसके बदले इन्हें धन और अनाज मिलता था, जिससे यह अपने परिवार की जीविका चलाते थे। दीघनिकाय के लोहिच्चसुत्त से ज्ञात होता है कि 'लोहिच्च ब्राह्मण में अपने रोसिक नापिक को आदेश दिया की वे जाये और भगवान् को भोजन के लिए निवेदन करे।'[392] प्रथम सङ्गीतिमें विनय का संगायन करने वाले भन्ते उपालि संघ में प्रव्रजित होने से पूर्व नाई थे।

3.6.6.11 हाथी दाँत का काम करने वाले-

ये व्यवसायी सामान्यतः प्रयोग में आने वाले छोटी-मोटी वस्तुएँ हाथी दाँत का काम करते थे। इस प्रकार हाथी दाँत से अनेक प्रकार के सुन्दर वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। हाथी के दाँत की बनी वस्तुएँ अत्यन्त सुन्दर होती थी। परिणामस्वरूप हाथी दाँत के व्यापारी को बाजार में काफी मूल्य अपनी वस्तुएँ का मिलता था। सीलवनागराज जातक से ज्ञातव्य है कि "वाराणसी पहुँच घूमते हुए, हाथी- दाँत के बाजार में शिल्पियों द्वारा हाथी- दाँत की विभिन्न वस्तुओं को बनाते देखा। [393]"

3.6.6.12 सूदखोर-

ये लोग धन देकर उसके ब्याज सूद से अपनी जीविका चलाते थे। इस व्यवसाय से गरीब लोगों की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गयी। अङ्गुत्तरनिकायनिकाय इणसुत्त से ज्ञातव्य है "जो दरिद्री, निर्धन, सम्पत्तिरहित,

---

[391] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*मज्झिमनिकायपालि*", भाग 1, पृ.सं.60

[392] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*दीघनिकायपालि*", भाग 1, पृ.सं. 234

[393] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-प्रथम भाग*" (सीलवनागराज जातक), पृ.सं.414

ऋण लेता है, तरीन पर चक्रवृद्धि व्याज देने की प्रतिज्ञा करता है, परन्तु व्याज न देने पर साहूकार उससे बलपूर्वक व्याज माँगते हैं।[394]" इस प्रकार इस पेशे का वर्णन पालि त्रिपिटक में प्राप्त होता है।

3.6.6.13 योद्धा-

मज्झिमनिकाय में योद्धा का वर्णन है जो अस्त्र-शस्त्र से राष्ट्र की रक्षा करते थे। युद्ध में लड़ने का कार्य यही करते थे। संयुत्तनिकायपालि के योद्धाजीवी सुत्त से ज्ञातव्य है कि कोई योद्धाजीवी भगवान् के पास जाता है। उस योद्धाजीवी का भगवान् से हुए संलाप से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय योद्धाजीवी भी एक पेशा था।[395]

3.6.6.14 तृणहारक-काष्ठहारक –

ये घास काटने वाले घसियारे होते थे। ये लोग घास बेचकर अपना जीविका चलाते थे। इसका उद्यम यही था। त्रिपिटक साहित्य में इन्हें लकड़हारा भी कहा गया है। ये बाग-बगीचों से लकड़ियाँ इकट्ठा करते थे और उसे बाजार में बेचते थे। काष्ठहारक अपनी जीविका के लिए निर्भर रहते थे। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से लोग बड़ों की सेवा करके, खेल-खिलौनों आदि बनाकर, बेत की ओरियाँ और सूई का निर्माण कर अपनी जीविका चलाते थे। सिरि जातक में लकड़हारे के रजा बनाने का उल्लेख है।[396]

इससे स्पष्ट होता है कि भगवान् बुद्ध के समय लोगों को जीविकोपार्जन के लिए विभिन्न प्रकार के व्यवसाय करते थे। इनका संगठन भी होता था। जिन्हें पूग या गण के नाम से जाना जाता है। इनके संघ को श्रेणिय भी कहा जाता था। पूरा के प्रधान अधिकारी को पूग ग्रामणिक कहा जाता था। पालि त्रिपिटक

---

[394] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*अनुत्तरनिकायपालि*", भाग 3, पृ.सं.82

[395] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*संयुत्तनिकायपालि*", भाग 3, पृ.सं.1506

[396] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-तृतीय भाग*" (सिरि जातक), पृ.सं. 149

में इसका विस्तृत उल्लेख किया गया है। इस प्रकार बुद्धकाल में जो लोग विभिन्न प्रकार के व्यवसाय करते थे।

3.4 सुत्तों में आगत व्यापार

बुद्धकालीन भारतीय जन-समाज का आर्थिक जीवन सुखी और समृद्ध था। आर्थिक जीवन में व्यापार के माध्यम से समृद्धि तथा सम्पन्नता प्राप्त की जा सकती है। त्रिपिटक के उद्धारणों से ज्ञात होता है कि श्रेष्ठी लोग व्यापार करते थे । इस समय व्यापार स्थल एवं जल दोनो मार्गों से होता था। अन्तर्देशीय एवं विदेशी व्यापार का भी उल्लेख प्राप्त है। इन व्यापारिक भागों का विवरण इस प्रकार है-

3.4.1 स्थल मार्ग से व्यापार-

बुद्धकालीन व्यापार प्रमुखताः स्थल मार्ग से होता था। अपण्णक जातक से ज्ञात होता है कि 500-500 गाडीयों लेकर व्यापारी व्यापारार्थ जाते थे। त्रिपिटक में सार्थवाह का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कतिपय जातकों मे व्यापारियों का एक साथ मिलकर व्यापार करने का विवरण प्राप्त होता है। स्थल मार्ग से व्यापार में अनेक बाधाएं उत्पन्न होती थी । तत्कालीन भारतवर्ष में दूर-दूर तक व्यापार हेतु जंगलों को पार कर जाना पडता था। पालि त्रिपिटक में जंगलों में व्यापारियों को चोर डाकूओं द्वारा लुटने के साक्ष्य मिलते है। सम्भवतः व्यापारी लोग भी कुछ रक्षक अपने साथ रखते थे, जिन्हे रक्षाकार्य हेतु मुद्राएँ दी जाती थी । सामुहिक व्यापार के कारण ही श्रेष्ठिसंघ का निर्माण हुआ । व्यापारी वर्ग अनेक राष्ट्रों से आये व्यापारियों की समिति गठित करते थे और एक प्रधान नियुक्त कर व्यापार आदि का कार्य सम्पादित करते थे। जिसे व्यापारियों में 'सत्थवाहो' कहते थे। परस्पर विश्वास एवं सौहार्द से कुशलता व बुद्धिमता से श्रेष्ठीजन व्यापार करते थे । महावाणिज जातक में एकत्रित व्यापार के लिए

जाने के लिए *"वणिजो एकाति"*[397] का उल्लेख किया गया है। यही सत्थवाहो शब्द बाद में 'सार्थवाह' बन गया।

स्थल व्यापार के लिए पशूओं का उपयोग लिया जाता था। व्यापार के लिए प्रयुक्त पशूओं में बैल, अश्व, उँट तथा गधा इत्यादि का प्रयोग किया जाता था।[398] स्थल व्यापार हेतु विभिन्न ग्राम-निगम तथा जनपदो में जाकर व्यापारी अपनी वस्तुओं का विक्रय करते थे। पूर्वोक्त है कि व्यापारी संघ का गठन कर परस्पर सौहार्द से व्यापार करने के कारण स्वभाविक ही व्यापारी जनों ने विभिन्न विभाग एवं प्रदेशों को आपस में बांट लिया था । अपने-अपने व्यापारिक क्षेत्र में व्यापार के लिए जाकर यह व्यापारी अपनी जीविका करते थे। पालि-त्रिपिटक में व्यापारियों के अनेक प्रसंग उद्धृत है। व्यापारी वर्ग अत्यन्त कुशल तथा बुद्धिमान था। वह धनार्जन तथा उसका व्यय अत्यन्त सावधानी से करता था।

3.4.2 जल मार्ग से व्यापार

प्राचीन भारत वर्ष में जलमार्गीय व्यापार भी अधिक समृद्ध था। जलमार्ग से व्यापार के सम्बन्ध में कतिपय जातकों से ज्ञात होता है। पालि त्रिपिटक के अन्तर्गत अङ्गुत्तर निकाय संयुक्त निकाय तथा विनय पिटक के विररणों में प्रचूर सामग्री प्राप्त है। त्रिपिटक के उद्धारणों स्पष्ट होता है कि जलमार्ग से व्यापार अत्यन्त दुरूह था। जलमार्गीय व्यापार की व्यापारी लोग समूह बनाकर करते थे। जलमार्गीय व्यापारी नौका चालन विद्या में दक्ष एवं कुशल थे। नाविक विद्या में कार्य कुशल होने से ही तत्कालीन समय में जल मार्गीय उद्योग समृद्ध था। "समुद्दवाणिज जातक से ज्ञात होता है कि समुद्री मार्ग से व्यापारी लोग देश-विदेश व्यापार करते थे।"[399] सुप्पारक जातक से ध्यातव्य है कि व्यापारी व्यापार के लिए नाव तैयार करवाते है और दृष्टिहीन होने पर भी सुप्पारक को

---

[397] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"जातक अट्ठकथा-पञ्चम भाग"* (महावाणिज जातक), पृ.सं.22

[398] वही, प्रथम भाग (अपण्णक जातक), पृ.सं.147

[399] वही, *चतुर्थ भाग"* (समुद्दवाणिज जातक), पृ.सं. 420

नाव-निर्देशक के रूप में साथ लेकर जाते थे।[400] दिशा निर्देशन के लिए व्यापारी लोग दिशा काक साथ रखते थे। बवेरू जातक में पक्षियों के व्यापार का उल्लेख है।[401] व्यापार हेतु व्यापारी गण दीर्घ समय तक समुद्रि यात्रा करते थे । उनकी समृद्धता का घोतक है। जिन नावों में यह व्यापार के लिए जाते थे वह अत्यन्त विशाल होती थी। एक-एक नाव में सौ से अधिक अपने व्यापारिक वस्तुओं के साथ समुद्रिक यात्रा कर सकते थे । व्यापार में समुद्रमध्य जल राक्षस द्वारा बाधा उत्पन्न करने का अल्लेख प्राप्त है। जल मार्ग से व्यापार अत्यन्त कठिन था। समुद्र में तूफान के आने से नाव के डूब जाने का भय रहता था।

3.4.3 विदेशी व्यापार

बुद्धकालिन भारत वर्ष में देश-विदेश तक व्यापार करने के प्रमाण त्रिपिटक में प्राप्त है। विदेशी व्यापार के साक्ष्य में 'बलहस्स जातक' महत्त्वपूर्ण है, जिसमें सिंहल देश तक व्यापार के उल्लेख प्राप्त होते है।[402] बावेरू जातक से "वाराणसी, चम्पा और मरूकच्छ का सूवर्णभूमि के साथ व्यापार का उल्लेख है।" इसमें व्यापारीयों द्वारा दिशादर्शक लेकर जाने का उल्लेख है। जिसे उन व्यापारीयों से बावेरू के लोगों ने क्रय किया था ।

"मरूकच्छ से कागा के लिए नाव से प्रस्थान करने के उल्लेख सुप्पारक जातक से प्राप्त है।"[403] कतिपय जातकों से प्राचीन भारतवर्ष में वाराणसी विदेशी व्यापार का मुख्य केन्द्र होने का उल्लेख प्राप्त है।

3.4.4 आन्तरिक व्यापार

आन्तरिक व्यापार की स्थिति का यथायोग्य ज्ञान त्रिपिटक से प्राप्त होता है। इसे अन्तर्देशीय व्यापार भी कह सकते है। तत्त्कालीन भारतवर्ष में यह अत्यन्त समृद्ध था। विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं का क्रय-विक्रय आन्तरिक व्यापार

---

[400] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-चतुर्थ भाग*" (सुप्पारक जातक), पृ.सं. 396
[401] वही, तृतीय भाग(बावेरू जातक), पृ.सं. 341
[402] वही, *द्वितीय भाग*" (बलाहस्सक जातक), पृ.सं.280
[403] वही, चतुर्थ भाग (सुप्पारक जातक), पृ.सं. 394

के माध्यम से होता था। त्रिपिटक में बुद्धकालीन आन्तरिक मार्गों का उल्लेख प्राप्त होता है। उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ सर्वाधिक महत्त्पूर्ण है। सर्वाधिक महत्त्व पूर्ण मार्ग था उत्तर से दक्षिण-पश्चिम मार्ग (श्रावस्ती से प्रतिष्ठान तक) दूसरा महत्त्व पूर्ण मार्ग था उत्तर से दक्षिण पूर्व (श्रावस्ती से राजगृह) को तथा गंगा एवं यमुना नदियों की प्रवाह की दिशा के साथ-साथ पूर्व पश्चिम को जाने वाला। त्रिपिटक में विभिन्न वस्तुओं, द्रव्यों, द्यातुओं के व्यापार के साध्य उपलब्ध है। इन वस्तुओं को पण्य कहा जाता था। अश्व पण्य तथा रत्न पण्य प्रमुख पण्य है। अश्व पण्य के सन्दर्भ में अश्व का क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारी वाराणसी, तक्षशिला आदि स्थानों पर जाकर व्यापार करते थे । "वाराणसी में उत्तरापथ का घोड़े का व्यापारी घोड़े लेकर आया था। घोड़े के व्यापार में व्यापारियों को अत्यधिक धन प्राप्त होता था।"[404] इस प्रकार बुद्धकालीन आन्तरिक व्यापार के साक्ष्य प्राप्त होते है।

3.5 विनिमिय, मुद्रा एवं मूल्य निर्धारण

बुद्ध कालीन समाज में विभिन्न उद्योगों एवं व्यावसायिक कार्यों का वर्णन पूर्व में किया गया है। तत्कालीन भारत में पशुजन्य वस्तुओं, मत्स्य, सूती वस्त्र, कोशेय वस्त्र एवं ऊनी वस्त्र इत्यादि का क्रय-विक्रय होता था। समाज में आभूषणप्रियता थी। जिससे अलंकरण के विभिन्न आभूषणों का भी क्रय-विक्रय होता था। विदेशी व्यापार तथा आन्तरिक व्यापार का भी विश्लेषण पुर्वोक्त है। त्रिपिटक में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर स्पष्ट होता है कि तत्कालीन भारत वर्ष में अश्व तथा अन्य पशुओं का भी व्यापर होता था। सुन्दर आकर्षक माणिक एवं मोतियों, रत्नों का भी क्रय-विक्रय प्रचलित था। चन्दन तथा हस्तिदन्त से निर्मित विभिन्न वस्तुओं के व्यापार का भी उल्लेख कतिपय सुत्तों एवं जातकों में प्राप्त है।

---

[404] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-प्रथम भाग*" (कुण्डककुच्छि सिन्धव जातक), पृ.सं.18

तत्कालीन वाणिज्यिक स्थिति के अवलोकन से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि विनिमय के लिए किसी माध्यम का प्रयोग किया जाता था। व्यापार और वाणिज्य का क्रय-विक्रय का माध्यम, विनिमय प्रणाली, मुद्रा, माप-तौल एवं मूल्य निर्धारण का विश्लेषण यहाँ समीचीन है। बुद्धकालीन निनिमय एवं मुद्रा तथा मूल्य निर्धारण का संक्षिप्त विवरण निम्नवत प्रस्तुत है-

3.5.1 विनिमिय तथा मुद्रा

बुद्धकालीन समाज के विनिमय तथा मुद्रा स्थिति के भी प्रमाण त्रिपिटक में प्राप्त है। विभिन्न उल्लेखों तथा विवरणों से तत्कालीन मुद्राओं के प्रचलन की पुष्टि होती है । माज्झिम निकाय से मुद्रा के सम्बन्ध में ज्ञातव्य है, इस मुद्रा का नाम 'कहापण' अर्थात् कार्षापण जो विभिन्न धातुओं के मिश्रण से बनी हुइ थी । कार्षापण का उल्लेख कतिपय जातकों में भी प्राप्त होता है। महासुपिन जातक में कषार्पण, अर्ध-पाद, माषक तथा रुपी इत्यादि का उल्लेख आया है।[405]

सुवर्ण मुद्रा का भी उल्लेख पालि त्रिपिटक में प्राप्त है। भगवान बुद्ध ने जेतवन दान देने के कर्म में अनाथ पिण्डक द्वारा उपयोग किया गया । सुवर्ण को पालि में 'हिरञ्ञ' कहा गया था । इसी नाम से सम्भवता सुवर्ण मुद्रा प्रचलित थी । इन मुद्राओं के अतिरिक्त अन्य मुद्रा का उल्लेख सालिकेदार जातक से प्राप्त है।[406] जिसे करिस कहा जाता था। इस प्रकार उपर्युक्त मुद्राओं का विवरण त्रिपिटक उल्लिखित है।

3.5.2 मूल्य निर्धारण (तौल और माप)

विनिमय के लिए माप और तोल की आवश्यकता होती है। मुद्राओं के प्रचलन पूर्व से यह पद्धति रूढ थी । विनिमय प्रणाली के आरम्भिक अवस्था में लोग पत्थर के माध्यम से माप-साथ के विकास का सभ्यता थे। करते किया तोल-प की बात इस उन्नतदशा की व्यापार कें समाज बुद्धकालीन साथरिचायक है कि इस

---

[405] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-प्रथम भाग*" (महासुपिनजातक), पृ.सं. 438
[406] वही,चतुर्थ भाग (सालिकेदारजातक), पृ.सं. 553-560

समय तौलन तथा मापन का विकास निश्चय हो गया था। संयुत्तनिकाय पालि त्रिपिटक तुलाकुट सुत्त से ज्ञातव्य है कि "भिक्षुओं! यहाँ ऐसे व्यापारी अधिक हैं जो व्यापार में दूसरों को ठगने के लिए तराजू के सहारे ठगी करते रहते है, ऐसे कम हैं जो इस कर्म से दूर रहते हैं।"[407] इससे स्पष्ट होता है कि व्यापारी लोग तराजू का उपयोग माप तौल के लिए, वस्तुओं के क्रय-विक्रय में करते थे । क्रयविक्रयसूत्र से ज्ञातव्य है कि भगवान् भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए कहते है- "भिक्षुओं! ऐसे लोग अल्प हैं जो वस्तुओं के क्रयविक्रय से विरत रहते है, अपितु ऐसे ही लोग अधिक हैं जो दिनरात वस्तुओं के क्रयविक्रय में लगे रहते हैं।"[408]

त्रिपिटक साहित्य से ज्ञातव्य है कि व्यापारी स्वयं अपनी वस्तुओं का मूल्य निर्धारण नहीं करते थे। तत्कालीन मान्यता के अनुसार स्थानीय राज प्रशासन द्वारा वस्तुओं के निर्धारित मूल्य को 'मानक' माना जाता था। तण्डुलनालि जातक से ज्ञातव्य है कि "काशी राष्ट्र के वाराणसी नगर के राजा ब्रह्मदत्त के यहाँ बोधिसत्त्व अर्घ-कारक थे। अर्घ-कारक का अर्थ मूल्य निश्चत करने वाले। यहाँ ध्यातव्य है कि बोधिसत्त्व हाथी, घोड़े, मणि एवं सुवर्ण इत्यादि का मूल्य करते और मूल्य स्वामियों को उचित मूल्य दिलवाते थे।"[409]

कतिपय जातकों में विनिमय एवं मुद्राओं के उल्लेख प्राप्त होते है। उस समय धन के मूल्यों पर आधारित व्यापारियों तथा सेट्ठियों के नामोल्लेख प्राप्त होते है । महाबोधि जातक में 80 करोड़ धन वाले महासारवान उदीच्य ब्राह्मण-कुल में उत्त्पन्न होने का उल्लेख प्राप्त होता है।[410]

प्राचीन काल से ही विनिमय पद्धति के माध्यम से व्यापार का कार्य चलता रहा । विनिमय प्रणाली अत्यन्त सुगम नहीं थी । उसमें कालान्तर में जटिलता

---

[407] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"संयुत्तनिकायपालि"*, भाग 4, पृ.सं. 2221

[408] वही,

[409] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"जातक अट्ठकथा-प्रथम भाग"* (तण्डुलनालिजातक), पृ.सं.179

[410] वही, पञ्चम भाग, (महाबोधिजातक) पृ.सं. 456

आने लगे और उसी के प्रतिपदन में मुद्रा प्रणाली का विकास हुआ । मुद्राओं के माध्यम से क्रय- विक्रय सुगम होता है। किसी सस्तु के मूल्यांकन के लिए मुद्रा अत्यन्त प्रभावी साधन है। मूल्य निर्धानण से कम श्रम एवं समय दोनों की बचत के साथ क्रय-विक्रय सरलता से होता है। पालि त्रिपिटक में उल्लिखित मुद्राओं से स्पष्ट होता है कि बुद्धकालीन समाज उन्नतावस्था में प्रवेश कर चुका था।

चतुर्थ अध्याय

वैदिक एवं बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की समीक्षा

4.1 वैदिक सभ्यता का परिचय

भारत के पश्चिमोत्तर में स्थित सप्तसिन्धु प्रदेश के निवासियों द्वारा मौखिक रूप में व्यक्त की गई साहित्यिक अभिव्यक्ति को वैदिक साहित्य के नाम से जाना जाता है। यह न केवल धार्मिक और लौकिक दोनों विषयों से समृद्ध है, बल्कि तत्कालीन समाज की जीवन शैली, धार्मिक आस्थाओं और सांस्कृतिक प्रथाओं को समझने का एक अनमोल स्रोत भी है।

वैदिक साहित्य में धार्मिक आयाम के अंतर्गत यज्ञ, देवताओं के गुण, उनके स्वभाव एवं भेद शामिल हैं, जबकि लौकिक विषयों में मानव की इच्छाएँ, समय-समय पर उत्पन्न संकटों एवं उनके समाधान, समाज का स्वरूप, जीविका के साधन, आर्थिक गतिविधियाँ, चिकित्सा, दान-पुण्य और विवाह सम्बन्धित मुद्दे सम्मिलित हैं।

हृदयनाथ दीक्षित के अनुसार, "ऋग्वेद विश्व मानवता का प्रथम शब्द साक्ष्य है।" यह न केवल दुनिया का सबसे प्राचीन काव्य संकलन है, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय संस्था यूनेस्को द्वारा भी इसे प्राचीनतम अन्तर्राष्ट्रीय धरोहर का दर्जा प्राप्त है। ऋग्वेद के निर्माण काल में लिपि का अस्तित्व नहीं था; ऋषियों ने अपनी मनतरंग में गीत गाए, जिन्हें भारतीय परंपरा में मन्त्र कहा जाता है और इन कवियों को ऋषि के रूप में सम्मानित किया जाता है। परंपरा के अनुसार, ऋषि को मन्त्रों का रचनाकार नहीं, बल्कि उनके द्रष्टा माना जाता है - अर्थात्, वह सत्य को सूक्ष्मता से देखने वाला।

यह व्यापक अस्तित्व एक बहुआयामी, रूपवान सत्ता है, जिसके भीतर प्राण का संचार है। अस्तित्व न केवल प्राणवान और चेतन है, बल्कि इसमें पृथ्वी,

जल, अग्नि, वायु एवं आकाश जैसे महाभूत तत्व प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान हैं। साथ ही, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह एवं तारामंडल भी इस सृष्टि का हिस्सा हैं, और करोड़ों जीव-जंतु व वनस्पतियाँ इसके विविध रूप हैं। प्रत्यक्ष सृष्टि के भीतर अनेक अप्रत्यक्ष, गूढ़ रहस्य निहित हैं, जिन्हें ऋग्वेद में काव्यमन्त्र के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। इस प्रकार, ऋग्वेद तत्कालीन विश्व का एक समृद्ध काव्यमय वर्णन प्रस्तुत करता है। [411]"

रामधारी सिंह दिनकर ने, संस्कृति के चार अध्याय में यह विचार रखा है कि "हिन्दू संस्कृति का आविर्भाव आर्य और आर्येत्तर संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ और जिसे हम वैदिक संस्कृति कहते हैं, वह वैदिक और प्राग्वैदिक संस्कृतियों के संगम से जन्मी थी। यह अनुमान कई प्रकार की युक्तियों पर आधारित है।"[412] इसके अतिरिक्त, उनका यह मानना है कि "पौराणिक हिन्दू-धर्म, निगम और आगम दोनों पर आधारित होता है। निगम वैदिक विधान से जुड़ा हुआ है, जबकि आगम प्राग्वैदिक काल से उत्पन्न एक वैदिकेतर धार्मिक परंपरा को दर्शाता है।" डॉ. मङ्गलदेव शास्त्री के दृष्टिकोण में भारतीय संस्कृति के विकास में वैदिक धारा की महत्त्व पूर्ण भूमिका है। उनके अनुसार, वैदिक धारा की अत्यधिक पुरानी और बहुमुखी परंपरा ने भारतीय संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला है। वैदिक साहित्य, जिसे एक सुप्रसिद्ध, सुरक्षित और विस्तृत वाङ्मय के रूप में जाना जाता है, न केवल अपनी प्राचीनता के कारण, बल्कि अपनी भाषा और बाङ्मय के व्यापक प्रभाव के चलते भी अत्यधिक प्रासंगिक है। इसके अतिरिक्त, भारतीय समाज, धर्म और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर वैदिक धारा का शाश्वतिक प्रभाव रहा है और यह प्रभाव भविष्य में भी बना रहेगा। इस प्रकार, वैदिक धारा भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग के रूप में सदा प्रकट होती है, जो समय के साथ न केवल जीवित रहती है, बल्कि उसकी नींव

---

[411] दीक्षित हृदयनाथ, "*ऋग्वेद परिचय*", पृ. 11

[412] सिंह, रामधारी, "*संस्कृति के चार अध्याय*", पृ.सं. 58

का निर्माण भी करती है। रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में स्पष्ट किया है कि हिंदू संस्कृति का उद्भव आर्य एवं आर्येत्तर संस्कृतियों के संगम से हुआ है। इसी तरह, वैदिक संस्कृति भी वैदिक और प्राग्वैदिक संस्कृतियों के मिलन से उत्पन्न हुई है – यह धारणा कई तार्किक युक्तियों पर आधारित है। दिनकर का एक अन्य मत यह भी है कि पौराणिक हिंदू धर्म का आधार दो स्तंभों पर टिका है: निगम और आगम। निगम को वैदिक विधान के रूप में देखा जाता है, जबकि आगम प्राग्वैदिक काल से प्रवाहित वैदिकेतर धार्मिक परंपरा की अभिव्यक्ति है।

डॉ. मङ्गलदेव शास्त्री के अनुसार, भारतीय संस्कृति के विकास में वैदिक धारा का अतुलनीय महत्त्व रहा है। न केवल इसकी सुप्रसिद्ध, सुरक्षित और विस्तृत वाङ्मय परंपरा, तथा भाषा और साहित्य के व्यापक प्रभाव के कारण, बल्कि इसके धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर शाश्वत प्रभाव के चलते भी, वैदिक धारा ने सदैव भारतीय संस्कृति में एक अत्यंत महत्त्व पूर्ण स्थान धारण किया है और भविष्य में भी इसका यह स्थान अपरिवर्तित रहेगा।[413]

4.1.1 वैदिक काल, रचना एवं स्थल

वैदिक संस्कृति के अध्ययन के लिए संसार का अत्यन्त प्राचीन वैदिक साहित्य एवं संस्कृति जैसा सुन्दर साधन उपलब्ध है। यह समीचीन ही प्रतीत होता है कि भाषा वास्तविकता में संस्कृति का दर्पण है। उसमें मानव की कृतियों का सर्वाङ्गीण लेखा-जोखा मिलता है। मानव की क्रियाओं का विस्तार एवं वैविध्य उसकी भाषा में पूर्ण रूपसे प्रतिफलित होता है। भाषा के स्वरूप से संस्कृति का आकलन करना संभव है। ऋग्वेद वैदिकों का धार्मिक साहित्य है। उसकी भाषा में संस्कृत का सबसे प्राचीन उपलब्ध रूप है।

---

[413] शास्त्री,मङ्गलदेव, *"भारतीय संस्कृति का विकास"*, पृ.सं. 53-54

आरण्यकों तथा उपनिषदों के पूर्व ऋग्वेद की संहिता विद्यमान थी। वेदों के निर्माण के समय उनकी संहिताओं को संग्रह का स्वरूप प्राप्त न था; वह उन्हें ब्राह्मणों के काल में मिला । यह कहा जा सकता है कि सूत्रकाल के पूर्व मन्त्रों की, संहिताओं तथा ब्राह्मणों की रचना हो चुकी थी। सामान्य रूप से इस काल को भगवान् बुद्ध के पूर्व अर्थात् ईसा के पूर्व छठी शताब्दी का माना जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय इतिहास में छठी ई. पू. की पूर्व स्थिति अस्पष्ट है। सिन्धुघाटी की सभ्यता के अत्यन्त प्राचीन अवशेष प्राप्त होते हए भी तत्कालीन लिपि के न पढ़े जाने के कारण इस सभ्यता के निर्माताओं के विषय में अस्पष्टता बनी है। इस सभ्यता के अवशेषों से तत्कालीन नगरीय जीवन का ज्ञान हुआ है। किन्तु उनके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विचारों के विषय में केवल अनुमान ही लगाये जा सकते है।

सैन्धव सभ्यता के पतन के समय आर्य समूहों ने मध्य एशिया से आकर भारत में प्रवेश किया। ये नए लोग थे। वे सर्वप्रथम सैन्धव कालीन स्थापत्य अवशेषों में स्थिर हुए तदनन्तर दक्षिण और पूर्व की और फ़ैल गये। प्रजातीय दृष्टि से ये कौन थे, यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। सांस्कृतिक दृष्टि से इन्हें भारतीय इतिहास में आर्य कहा गया। इनके पुरातात्विक अवशेष प्राप्त नहीं हुए है। लेकिन इनके द्वारा रचित विशाल साहित्य प्राप्त होता है। यह साहित्य मौखिक परम्परा में विकसित होकर परवर्ती युग में लिपिबद्ध हुआ। मूलतः वैदिक साहित्य धार्मिक साहित्य के रूप में परिगणित हैं किन्तु फिर भी न्यूनाधिक रूप में आर्यों के जनजीवन, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सूत्र खोजे जा सकते है। आर्य रचनाओं का कालखण्ड सैन्धवोत्तर युग से लेकर छठी ई. पू. तक हो सकता है। अतः इस साहित्य में निहित संकेतों के आधार पर इस कालखण्ड को 'वैदिक युग' कह सकते है। "वैदिक युग का कुछ साहित्य प्राचीन

है तो कुछ परवर्ती। इसलिए इस युग को दो भागों में विभाजित किया गया हैं; यथा- ऋग्वैदिक काल एवं उत्तर वैदिक काल।[414]

ऋग्वैदिक काल के सम्बन्ध में भारतीय और योरोपीय अन्वेषकों में प्रायः दो प्रकारके मत पाये जाते हैं। अधिकांश भारतीय अन्वेषक ऋग्वेद के काल को अत्यन्त प्राचीन सिद्ध करने के पक्ष में हैं। वेदों के काल निर्धारण में साधारणतः अनेक मत है। जिनमें भाषाशास्त्र पर आश्रित मत, ज्योतिष-शास्त्र पर आश्रित मत, पुरातत्व पात्र आश्रित मत, भूगर्भशास्त्र पर आश्रित मत और पौराणिक तिथि क्रम। विभिन्न अन्वेषकों के मत निम्नवत हैं -

वेदों के रचनाकाल का निर्णय करने का सर्वप्रथम प्रयास मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक A History of ancient sanskrit literature में किया था। उन्होंने सर्वप्रथम भारतीय तिथिक्रम पर विचार किया। उनके मतानुसार भारतीय इतिहास में दो ही तिथिक्रम हैं; यथा- सिकन्दर का भारत पर आक्रमण (326 ई. पू.) तथा बौद्ध धर्म का आविर्भाव (छठी शताब्दी ई. पू.) । मैक्समूलर का कथन है कि चारों वेद, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्- ग्रन्थ भगवान् बुद्ध के आविर्भाव अर्थात् छठी शताब्दी ई. पूर्व हो चुके थे।[415]

बुद्ध के आविर्भाव से पूर्व के वैदिक साहित्य को मैक्समूलर तीन स्पष्ट चरणों में विभाजित करते है। प्रत्येक के विकास के लिए 200 वर्षों की अवधि रखना पर्याप्त समझते हैं-

अ. छन्दकाल- (1200 ई. पू.- 1000 ई. पू.) ।

आ. मन्त्रकाल- (1000 ई. पू.- 800 ई. पू.) ।

इ. ब्राह्मणकाल- (800 ई. पू.- 600 ई. पू.) ।[416]

---

[414] उपाध्याय, भगवतशरण, "प्राचीन भारत का इतिहास", प्रारम्भ से 1200 ई. तक, पृ.सं.46

[415] Max Muller, *"A History of ancient sanskrit literature"*, p. 9-11

[416] शर्मा उमाशङ्कर, *"संस्कृत साहित्य का इतिहास"*, पृ. 99

"ऋग्वेद तथा आवेस्ता (पारसियों का धर्म ग्रन्थ) की भाषाओं की तुलना को भी इस क्षेत्र में बहुत महत्त्व की दृष्टि से देखा जा सकता है। दोनों ग्रन्थों में भाषा-तत्व की दृष्टि से बहुत साम्य कह जाता है। यह साम्य भाषा के अतिरिक्त विचार-तत्व पर भी आश्रित है।

इस आधार पर कह जाता है कि भारतीय आर्य तथा ईरानी लोग बहुत दिनों तक साथ रहे थे। पृथक् होने के कुछ दिनों के बाद ईरानी पारसी- धर्म का विकास 'जेन्द अवेस्ता' ग्रन्थ की रचना से हुआ और भारत (सप्तसिन्धु-प्रदेश) में आर्यों के पुरोहितों ने ऋग्वेद के मन्त्रों की रचना की।"[417]

कुछ पश्चात् तथा अनेक भारतीय विद्वानों ने वेदों में निर्दिष्ट ज्योतिष-शास्त्रीय संकेतों को आधार बनाकर वेदों के काल के निर्धारण का प्रयत्न किया। "भारतीय विद्वान् शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने कृत्तिका की पूर्वबिन्दु पर इस स्थिति को 3000 ई. पू. में सम्भव बताया है। तैत्तिरीय संहिता और ऋग्वेद को उन्होंने इस समय से 500 वर्ष पूर्व अर्थात् 3500 ई. पू. में रखा है क्योंकि ये शतपथ से प्राचीनतर हैं। ज्योतिष-शास्त्रीय संकेतों को आधार पर याकोबी ऋग्वेद का काल 4500 ई. पू. मानते हैं।"[418] लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपनी पुस्तक The Antiquity of the Vedas के भूमिका में लिखा हैं कि "The birth of Gautama Buddha, the invasion of Alexander the Great, the inscriptions of Ashoka, the account of the Chinese travelers, and the overthrow of Buddhism and Jainism by Bhatta Kumarila and Shankaracharya. joined with several other loss important events, have served to fix the chronology of the later periods of the ancient Indian History. But the earlier periods of the same still defy all attempts to ascertain their chronology, and the earliest of them all so important to the "true student of mankind, the period of the Rigveda, is still the subject of vague and uncertain speculations. Can we

---

[417] शर्मा उमाशङ्कर, *"संस्कृत साहित्य का इतिहास"*, पृ. 99

[418] दीक्षित, बालकृष्ण, *"भारतीय ज्योतिषशास्त्र"*, पृ.सं. 181

or can we not ascertain the age of the Vedas? This is question which has baffled the ingenuity of many an ancient and a modern scholar, and though I have ventured to write on the subject I cannot claim to have finally solved this important problem in all its beatings. I only wish to place before the public the result of my researches in this direction and leave it to scholars to decide if it throws any additional light on the earliest period of the Aryan civilizations."[419]

उन्होंने वसन्त-सम्पात के आधार पर वैदिक साहित्य के विकास का काल निर्धारण किया है। तिलक ने वैदिक वाङ्मय के विकास का निरूपण निम्नलिखित चार कालों में किया है-

1) अदितिकाल (Pre-Orion Period)- 6000 ई. पू. से 4000 ई. पू. के इस काल में उपास्य देवताओं के नामों, गुणों तथा मुख्य चरितों का निरूपण करने वाले गद्य-पद्यात्मक निविदों तथा याग-सम्बन्धी विधियों की रचना हुई थी।
2) मृगशिरा-काल (Orion Period) – 4000 ई. पू. से 2500 ई. पू. के इस युग में ऋग्वेद के अधिकांश मन्त्रों की रचना हुई। आर्य-सभ्यता के लिए यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काल था। इसमें सभी युगों की अपेक्षा अधिक रचना-कार्य हुआ।'
3) कृत्तिका-काल (2500ई.पू. -1400 ई. पू.) - इस काल में तैत्तिरीयसंहिता, शतपथब्राह्मण आदि वैदिक ग्रन्थों की रचना पूरी हुई। इस काल की अन्तिम सीमा 'वेदाङ्गज्योतिष' नामक ग्रन्थ की रचना है जिसमें सूर्य और चन्द्रमा के श्रविष्ठा (वर्तमान नाम-धनिष्ठा) नक्षत्र के आरम्भ में उत्तर की ओर घूमने का वर्णन है। इस काल तक ऋग्वेद के सूक्त प्राचीन तथा दुर्गम हो चुके थे।

[419] Tilak Bal Gangadhar, *"The Antiquity of the Vedas",* p. 2

4) अन्तिम काल (1400ई. पू.-500ई. पू.)- इस काल में सूत्र-साहित्य (कल्प तथा अन्य वेदाङ्ग) तथा षड्-दर्शन सूत्रों की रचना हुई। इसी के अन्त में बौद्ध धर्म का उद्भव हुआ।[420]

पुरातात्विक स्त्रोतों पर आधारित मत की विवेचना में ए. एल. बाशम ने अपनी पुस्तक The Wonder that was India में कहा है कि "No real synchronisms are contained in the Rigveda itself, to give us any certain Information on the date of its composition. Some authorities in the past claimed the basis of traditions and ambiguous astronomical references in the hymn themselves it was even believed by one very respected Indian scholar that it went back to 6000 B.C. The discovery of the Indus cities, which have nothing in common with the culture described in the Veda and are evidently pre-Vedic, proves that the hymn cannot have been composed before the end of Harappa. The great development in culture, religion and language which is evident in the later Vedic literature shows that a long period must have elapsed between the time of the composition of the last hymn of the Rigveda and the days of the Buddha perhaps as much as 500 years. It is therefore probable that most of the Rigveda was composed between 1500 and 1000 B.C., though the composition of some of the most recent hymns and d the collation of the whole collection may have taken place a century or too later."[421]

वैदिक काल उस काल को कहते हैं जिसमें वैदिक ग्रन्थों की रचना की गयी है। इन ग्रन्थों की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि ये एक-दुसरे से सम्बद्ध हैं और इनका क्रमागत विकास हुआ है। सर्वप्रथम ऋग्वेद तथा उसके बाद अन्य वेदों की रचना की गई थी। वैदिक काल को दो भागों में विभाजित किया गया है- ऋग्वैदिक-काल तथा उत्तरवैदिक-काल । इस विभाजन का कारण यह है कि

[420] शर्मा उमाशङ्कर, *"संस्कृत साहित्य का इतिहास"*, पृ. 102
[421] Basham, A.L. *"The Wonder that was India"*, p.32

ऋग्वेद की रचना के काफी लम्बे समय के बाद अन्य वेदों की रचना हुयी थी। वेद क्या है ? सामान्यतया वेद संहिताओं को ही वेद माना जाता है तथा यह भी स्वीकार किया जाता है कि उसकी प्रमुख विशेषता उसकी अपौरुषेयता है जिसके कारण वह स्वतः प्रमाण एवं निर्भ्रान्त सत्य ज्ञान है। वैदिक ऋषियों द्वारा समाधि अवस्था में परम पुरुष या विश्व व्यापी चेतन सत्ता से सुना हुआ ज्ञान होने के कारण ही इसे श्रुति भी कहा जाता है।

4.1.2 वेदों का अर्थ, महत्त्व एवं प्रमुख विशेषताएँ

भारतीय तत्त्वज्ञान का आधार ग्रन्थ वेद है। इस तत्त्वज्ञान का दर्शन साक्षात्कृत धर्मा ऋषियों ने किया। वस्तुतः यह अध्यात्मिक के तत्त्वों से सुसम्पन्न विमल ज्ञानराशि का भण्डार है। यह भारत की एक ऐसी निधि है, जिसने इस देश की संस्कृति, सभ्यता तथा आचार-विचार को दीर्घकाल तक प्रभावित किया। वेद का मावन जीवन से इतना दृढ़ सम्बन्ध है कि मृत्युपर्यन्त सभी स्थितियों में वह मानव जीवन विवेचना करता है। वेद मानव को सन्मार्ग पर आरूढ़ होने की शिक्षा देता है। वदों का अर्थ उनका महत्त्व एवं प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् प्रस्तुत हैं-

4.1.2.1 वेद का अर्थ

"ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द का अर्थ 'ज्ञान' ही है।"[422] यहाँ ज्ञान से तात्पर्य समस्त लौकिक एवं आध्यत्मिक रूप में है। 'वेद' शब्द से ईश्वरीय ज्ञान अथवा ऋषियों के द्वारा साक्षात् किया गया सत्य ज्ञान ही निर्वचन है। सम्पूर्ण प्राचीन भारतवर्ष में विद्या के क्षेत्र में यह ज्ञान अंतर्निहित है। सम्पूर्ण विश्व के प्राचीन साहित्य में यह अत्यन्त प्राचीन एवं आदि-संस्कृति के स्त्रोत है ।

[422] धातुपाठ (पाणिनि व्याकरण) सूत्र सं. 142

"विद्यते ज्ञायतेऽनेनेति वेदः"[423] अर्थात् जिसके द्वारा कोई ज्ञान प्राप्त किया जाये वही वेद है।

वेद दो प्रकार के हैं, एक सत्तात्मक वेद या तत्त्व वेद तथा दूसरा ज्ञानात्मक या शब्दात्मक वेद। इनमें तत्त्ववेद से उनका तात्पर्य, प्रकृति के विभिन्न घटकों तथा उनमें निहित शक्तियों से है, तथा शब्दात्मक वेद का तात्पर्य वेद-संहिताओं से है। इन दोनों में तत्त्वत्वेद निश्चय ही अपौरुषेय है क्योंकि प्राकृतिक पदार्थों यथा सृष्टि के मूल कणों, परमाणुओं, प्राकृतिक शक्तियों जैसे अग्नि, विद्युत् आदि तथा विभिन्न लोक-लोकान्तरों व सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि को किसी मनुष्य ने नहीं बनाया। वे निश्चय ही ईश्वरकृत हैं। परन्तु उनके अनुसार शब्दात्मक वेदग्रन्थ का निर्माण ऋषियों की सत्त्व वृद्धि से ही हुआ है। अतः शब्दात्मक वेद पौरुषेय है। यही नहीं, वे वेद संहिताओं और अन्य वैदिक वाङ्मय को एक ही धरातल पर रखते हुए दोनों को पौरुषेय या ऋषिक्कृत मानते हैं तथा वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् सभी को एक हो कोटि का मानते हुए वेद या श्रुति शब्द से सम्बोधित करते हैं यद्यपि उन्होंने कहीं कहीं मंत्र धृति और ब्राह्मण श्रुति शब्दों का भी प्रयोग किया है। उनकी यह मान्यता जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है, इस देश की पारम्परिक मान्यता के विपरीत है क्योंकि सभी प्राचीन ग्रंथों में वेद-संहिताओं को अपौरुषेय माना गया है, जबकि अन्य ग्रन्थों को ऋषिक्कृत। उन ऋषियों के नाम भी जिन्होंने ब्राह्मण ग्रंथ, उपनिषद् आदि को बनाया, परम्परा से प्राप्त होते हैं।

"वेदों को परम-प्रमाण अर्थात् आगम या शब्द-प्रमाण में सर्वोत्कृष्ट माना गया है।" मीमांसकों के अनुसार "प्रत्यक्ष और अनुमान से हम जिस उपाय या ज्ञान को नहीं पा सकते उसे वेद बता सकता है, अर्थात् वेद ज्ञान के समस्त उपायों में श्रेष्ठ है।" वेद से वह ज्ञान मिलता है जिसे प्राप्त करने के लिए अन्य

[423] निरुक्त 1/1

कोई साधन इस जगत् में नहीं- *प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते। एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता" ।।*[424]

सायण ने तैत्तिरीय संहिता के भाष्य की भूमिका से ज्ञात होता है कि "इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-निवारण के लिए अलौकिक उपाय बताने वाला ग्रन्थ वेद है।" "*इष्टप्राप्त्यनिष्ट- परिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः"*।[425] "गुरु-शिष्य-परम्परा के द्वारा सुरक्षित किये जाने के कारण अर्थात् गुरु के द्वारा उच्चरित वाक्यों को शिष्य द्वारा श्रवण करके स्मरण रखने के कारण वेद को 'श्रुति' भी कहते हैं।"[426] इस श्रुति परम्परा के द्वारा वेद के वाक्यों को अद्यावधि सुरक्षित रखा गया है। श्रुति शब्द का तात्पर्य है 'विश्व चेतन सत्ता से मानव चेतना में सुना हुआ ज्ञान'। अतः श्रुति से तात्पर्य पूर्णतया सत्य ज्ञान से है और इस दृष्टि से केवल वेद-संहितायें ही, वेद और श्रुति कहलाने की अधिकारी हैं, अन्य कोई पंथ नहीं, क्योंकि उनका ज्ञान ही पूर्णतया सत्य है।

वेदों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वेद भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों के द्वारा सर्वप्रथम साक्षात् किये गये। जिन्हें कालान्तर में यज्ञ एवं कर्मकाण्ड के लिए संहिताबद्ध किया गया। ईद वेदरूपी ज्ञानभण्डार को चार भागों में विभक्त किया गया है; यथा- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार वेद के दो भाग है- "मन्त्र तथा ब्राह्मण। मन्त्र-भाग को वेद कहा, ब्राह्मण-ग्रन्थ उसकी व्याख्याएँ हैं।"[427] पाश्चात्य विद्वान् भी 'वेद' शब्द से केवल संहिता भाग का हो ग्रहण करते हैं, संहिता के परम्परागत विकास का नहीं। किन्तु 'वैदिक वाङ्मय' के अन्तर्गत ये चारों अंश हैं, इसमें किसी को आपत्ति नहीं।

---

[424] ऋग्वेद 23/5

[425] सायण तैतिरीयसंहिताभाष्य भूमिका

[426] मिश्र, गिरिजा शंकर प्रसाद, *"प्राचीन भारत का इतिहास"*, पृ.सं. 29

[427] उपाध्याय,बलदेव, *"भारतीय दर्शन"*, पृ. सं. 28

प्राचीन परम्परा में 'वेद' को तीन विभाग है- संहिता, ब्राह्मण तथा आरण्यक। संहिता मन्त्रों के समूहों को कहते है। ब्राह्मण दोनों भाग निहित हैं- धन के क्रिया-कलाप एवं उनके प्रयोजनों की व्याख्या करने वाले वेद-भाग को 'मन्त्र' कहते और यज्ञ के जतीन भाग हैं- ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्।[428] इस प्रकार वैदिक वाङ्मय को चार आयामों में वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने वाले वीतराग मनस्वियों के क्रिया-कलाप प्रतिपादित भागों में वर्गीकृत किया जाता है- मन्त्रभाग (संहिता), ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद। आरण्यक वो उपनिषदों में वैदिक युग का दार्शनिक साहित्य निहित है।

4.1.2.2 वेदों का महत्त्व

वेद-वाङ्मय प्राचीन काल से वर्तमान काल तक सम्पूर्ण विश्व के लिये जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य का उपदेश दे रहे है। वेद-वाङ्मय का कलानुरूप विस्तार होता गया। साहित्य की दृष्टि से वेद-वाङ्मय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथमतः चार वेद तत्पश्चात क्रमशः ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्-साहित्य के विकास से क्रम में इसका विस्तार परिलक्षित होता है। मनु के अनुसार *"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्*[429]*"* अर्थात् वेद अखिल धर्मों का मूल है। पुनः मनु ने कहा है *"सर्वज्ञानमयो हि सः*[430]*"* अर्थात् वेद सभी ज्ञानों के अक्षय कोश हैं। *"वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते"*[431] अर्थात् मनु के अनुसार "वेदों का अध्ययन ब्राह्मणमात्र के लिए अनिवार्य कहा गया है।" भारतीय धार्मिक परम्परा में यदि किसी के द्वारा ईश्वर की निन्दा की जाती है तो उसे सहन किया जाता है किन्तु वेदों की निन्दा असहनीय है। यद्यपि नास्तिकों ने वेद की निन्दा की है परन्तु भारतीय साहित्य एवं सामान्य जनता सदैव उसकी प्रशंसक रही है। भारतीय दार्शनिक परम्परा वेदों को ईश्वर के वचन तथा अपौरुषेय शब्दराशि के

---

[428] उपाध्याय,बलदेव, *"भारतीय दर्शन"*, पृ.सं. 29
[429] मनुस्मृति 2/6
[430] वही, 2/7
[431] वही, 2/166

रूप में स्वीकार करते है। वेद आगम-प्रमाण है, समस्त ज्ञान के स्त्रोत हैं, शब्दराशि-रूप वेद से संसार के समस्त अर्थ निर्मित हुए हैं। "कौटिल्य के अनुसार 'त्रयी विद्या', 'धर्म' और 'अधर्म' के बीच भेद का निरूपण करती है।"[432] वेदों से लोग अपने जीवन-दर्शन को संचालित कर सकते हैं।

4.1.2.3 वैदिक साहित्य की कुछ प्रमुख विशेषताएँ

4.1.2.3.1 वेद की अपौरुषेयता-

वेद-संहिताओं में सृष्टि से सम्बंधित सम्पूर्ण लौकिक, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक ज्ञान समाहित है। 'वेद' शब्द 'विद ज्ञाने' धातु से बना है। अतः इसका मौलिक अर्थ ज्ञान ही है। 'विद्या' शब्द भी इसी धातु से निकला निकला है। इसलिए मूल में 'विद्या' और 'वेद' शब्द समानार्थक ही है।[433] यह ज्ञान उस प्राचीन काल में प्रकट हुआ था, जब ज्ञान की प्राप्ति के लिए कोई वैज्ञानिक साधन उपलब्ध नहीं थे। अतः निर्विवाद सत्य है कि वेद संसार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं तथा उन्हें 'अपौरूषेयं वाक्यं वेदः'[434] अपौरुषेय माना गया है । इनमें अत्यंत उच्च कोटि का ज्ञान उकेरा गया है- अतिमानव से लेकर परमात्मा, तथा सृष्टि के मूल तत्वों से संबंधित गूढ़ रहस्यों को उजागर किया गया है। इस तथ्य से यह सिद्ध होता है कि वेद केवल मानव मस्तिष्क की उत्पत्ति नहीं हो सकती। परंपरा से ही 'वेद को अपौरुषेय'[435] माना जाता है, जो इन्हें अन्य ग्रन्थों से विशिष्ट बनाता है।

4.1.2.3.2 वेद की प्राचीनता

वेद को संसार का सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है, इस बात पर अधिकांश विद्वान एकमत हैं। किन्तु, वेद की प्राचीनता का सटीक मापन करना चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि इसके लिए साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त कोई

---

[432] कौटिल्य, अर्थशास्त्र 2/1

[433] शास्त्री, मङ्गलदेव, "भारतीय संस्कृति का विकास", पृ. सं. 55

[434] मीमांसा 31/1/1

[435] सरस्वती, स्वामी दयानन्द, *"ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका"*, पृ.सं. 11-12

विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है। वेद में वर्णित ज्योतिषीय और प्राकृतिक घटनाओं-जैसे सूर्यो, ग्रहों तथा उनके उपग्रहों की उत्पत्ति-का विवरण ऐसा है मानो प्रत्यक्षदर्शियों ने अपने अनुभवों का लेखन किया हो। इन वर्णनों से स्पष्ट होता है कि वेद एक प्राचीन सम्पदा है। चन्द्रधर शर्मा के अनुसार "वेद भारतीय साहित्य के ही नहीं, अपितु विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ है।[436]"

4.1.2.3.3 मानव सभ्यता के आदि काल में वेदों का प्रादुर्भाव

वेद ग्रंथ मानव सृष्टि के आदिकालीन ऋषियों पर प्रकट हुए थे। परंतु, वेद और मानव सृष्टि की उत्पत्ति के संदर्भ से यह सिद्ध होता है कि वेदों का अवतरण मानव की उत्पत्ति के तुरंत बाद नहीं हुआ। ऋग्वेद के इस मन्त्र से

चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे ।

पश्यन् मन्ये मनसा चक्षसा तान् य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥[437]

अर्थात् इस ब्रह्माण्ड के उत्पन्न होने पर, बहुत पहले (मनुष्य-सृष्टि काल में), उस (परमात्मा) ने ऋषियों और हमारे मनुष्य-पितरों (मनुष्य जो प्रजोत्पत्ति के द्वारा हमारे पितर बने) को (वेद-मन्त्रों से) समर्थ किया, उन (वेद-मन्त्रों) को मन के चक्षु से देखते हुए जिन ऋषियों और मनुष्यों ने उस यज्ञ = परमात्मा/वेदों का आरम्भ में यजन किया था। यह मन्त्र भी उन विशेष प्रारम्भिक ऋषियों को मनुष्य-जाति से पृथक् रख रहा है। कुछ विद्वानों के अनुसार, प्रारंभिक मानव ने कलियुग से द्वापर, त्रेता तथा सत्ययुग की ओर प्रवेश करते हुए अपनी आध्यात्मिक उन्नति की, और जब मानव सत्ययुग के चरम पर पहुँचा, तब उस काल के ऋषियों के अंतःकरण में वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। यह युग मानव की आध्यात्मिक उत्कर्ष की दृष्टि से अत्यंत महत्त्व पूर्ण था, भले ही भौतिक साधनों के मायने में अभी भी प्रारंभिक काल ही माना जाता था। आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन है कि "भारतीय कल्पना के अनुसार वेद नित्य, निखिल

[436] शर्मा, चन्द्रधर, "*भारतीय दर्शन*", पृ. सं. 2

[437] ऋग्वेद 10/130/6

ज्ञान के अमुल्य भाण्डागार एवं धर्म का साक्षात्कार करने वाले महर्षियों के द्वारा अनुभूत परमतत्त्व के परिचायक है। [438]"अतः यह स्पष्ट होता है कि वेदों का प्रादुर्भाव मानव सृष्टि के आदिकाल में नहीं, बल्कि मानव सभ्यता के विकास के एक विशिष्ट चरण में हुआ।

4.1.2.3.4 वेदों का ब्रह्मा या बृहस्पति के अंतःकरण में प्रादुर्भाव

वेदों के प्रादुर्भाव के संबंध में विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि वेद अनेक ऋषियों के अंतःकरण से प्रकट हुए, जबकि एक विचार यह है कि वे अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा जैसे चार प्रमुख ऋषियों के अंतःकरणों में उजागर हुए। वेद में ऐसे कई मंत्र मिलते हैं, जिनसे यह संकेत मिलता है कि वेद को परमात्मा से प्राप्त करने वाला एक प्रमुख ऋषि था, जिसे 'बृहस्पति' के नाम से जाना जाता है।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।

यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥ [439]

अर्थात् हे बृहस्पति, जो आप वेदवाणी रूपी बृहत् ज्ञान के भण्डार के स्वामी हो ! आपने सबसे पहले (=मानवसृष्टि के आदि में), (पदार्थमात्र के) नामों (=भाषा) का धारण करती हुई जिस वाणी (=वेदवाणी) को प्रेरित किया, जो इन (आत्माओं) में से सबसे श्रेष्ठ थे, जो सब प्रकार के पापों से रहित थे, उनकी गुहा रूपी बुद्धि में उसके ज्ञान का, आपकी प्रेरणा से आविर्भाव हुआ । यह कथन न केवल वेदों की विशेषता को पुष्ट करता है, बल्कि इनके आध्यात्मिक महत्त्व को भी रेखांकित करता है।

---

[438] उपाध्याय, बलदेव, "*भारतीय दर्शन*", पृ. सं. 27

[439] ऋग्वेद 10/71/1

4.2 वैदिक वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय

वैदिक व्यवस्था का मुख्य स्वरूप समझने के लिए आवश्यक है कि वैदिक वाङ्मय का विवेचन करना समीचीन है । 'वेद' शब्द से तात्पर्य ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से है। इन चारों वेदों को सूत्रकारों ने धर्मविद्या एवं स्वतःप्रमाण माना है, जो कि अपने आप में अत्यंत महत्त्व पूर्ण ग्रंथ हैं। तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी के अनुसार, "वेद वाङ्मय लगभग एक सहस्त्र वर्ष तक विभिन्न पीढ़ियों द्वारा क्रमिक रूप से रचित किया गया है। इस प्रकार यह साहित्य लगातार संग्रहीत और वृद्धिगत होता चला गया।"[440] उनका यह मत है कि वेदों में आर्य जाति के विभिन्न मानव गणों की धार्मिक दृष्टि तथा उनके धार्मिक जीवन की छवि प्रस्तुत होती है। वेदों का यह साहित्यिक विस्तार समय के साथ हुआ और इसका प्रत्येक अंग उस काल के समाज की धार्मिक सोच, परंपरा और जीवन शैली का प्रतिक था। इस तरह, वैदिक वाङ्मय ने न केवल धार्मिक जीवन को परिभाषित किया, बल्कि समाज के व्यापक दृष्टिकोण को समाहित करके अपनी संरचना को निरंतर विकसित किया।

4.2.1 चार वेद

"विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति विचारयति सर्वे मनुष्याः सत्यविद्यां यै येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः।" [441] अर्थात् वेद वे हैं जिनके द्वारा सारी सत्य विद्याएँ जानी या प्राप्त की जाती हैं। सायण आचार्य के अनुसार वेद इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के अलौकिक उपाय को बताने वाले हैं-

'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः ।'[442]

---

[440] जोशी, लक्ष्मणशास्त्री, *"वैदिक संस्कृति का इतिहास"*, पृ.सं. 18

[441] ऋग्वेद भाष्य भूमिका

[442] सायण तैतरिय संहिता भाष्यभूमिका

अन्य विद्वानों के अनुसार वेद वह है जिसके द्वारा धर्मादि पुरुषार्थ जाने जाते हैं

'विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा धर्मादिपुरुषार्था एभिरिति वेदाः ।'[443]

कुछ मनीषियों ने वेद का वेदत्व इसी तथ्य में माना है कि वह प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा दुर्बोध तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान स्वयं कराता है

'प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।

एवं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ।।'[444]

इन सभी उपर्युक्त परिभाषाओं से सिद्ध होता है कि वेद ज्ञान के वे अक्षय कोश हैं जिनमें सभी विषयों का समावेश है। मनुस्मृति में कहा है- *'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'*[445] अर्थात् वेद समस्त धर्म का मूल है। वेद परमात्मा के निःश्वास माने गए हैं *'यस्य निःश्वासितं वेदाः'*[446] ।

सृष्टि की उत्पत्ति के समय धार्मिक, नैतिक व आध्यात्मिक ज्ञान के लिए इनका प्रादुर्भाव हुआ। ये मानव जाति के प्राचीनतम धर्मग्रन्थ हैं। अतः उस समय की संस्कृति, सभ्यता, धार्मिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों आदि को जानने के एकमात्र स्रोत हैं। वेद धर्म के स्तम्भ हैं।

वेद साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। महाकाव्य, गीतिकाव्य, गद्यकाव्य, नाटक, आख्यान और साहित्य की अन्य सभी काव्य विधाओं की उत्पत्ति में वेदों का सक्रिय योगदान रहा है। यही नहीं, चाहे वह वनस्पति विज्ञान हो, सृष्टि के उत्पत्ति सम्बन्धी विचार हों, अथवा नौका निर्माण की कथाएँ, सभी का प्रारंभ वेदों में ही मिलता है। वेदों का ज्ञान न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से, बल्कि साहित्यिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी सर्वथा सम्पूर्ण और बहु-आयामी है।

---

[443] वेदान्त-सार श्लोक 5

[444] सायण ऋग्वेद भाष्य भूमिका

[445] मनुस्मृति, 2/5

[446] श्रीमद्भागवत पुराण 3/12/37

इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति के स्थान वेद ही हैं। ये ही उचित और अनुचित के निर्देशक है, कर्त्तव्य के उद्‌बोधक, सुख-शान्ति के साधन, ज्ञानालोक के प्रसारक तथा निराशा के विनाशक हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार वेद निन्दक को नास्तिक कहा गया है *'नास्तिको वेदनिन्दकः'* [447]।

भाषाविज्ञान के दृष्टिकोण से भी वेद अत्यंत महत्त्व पूर्ण हैं। वैदिक भाषा की समझ बिना भारोपीय भाषाओं का अध्ययन संभव नहीं हो सकता। वेदों के उपदेश समय और स्थान से परे, सार्वकालिक और सार्वभौमिक हैं। वे भारतीय समाज को एक सूत्र में बांधने वाले हैं और भारतीय परंपरा में उन्हें शब्द प्रमाण के रूप में सम्मानित किया गया है। वेद चार हैं-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद-जो भारतीय सांस्कृतिक और भाषिक धरोहर के केंद्रीय स्तंभ हैं।

4.2.1.1 वैदिक साहित्य की विषय वस्तु

विषय-विचार की दृष्टि से, 'वेद' और 'वैदिक साहित्य' दोनों की अपनी-अपनी विशिष्ट श्रेणियाँ हैं। जहाँ 'वेद' शब्द से केवल चार मन्त्र संहिताओं का ज्ञान प्राप्त होता है, वहीं 'वैदिक' शब्द वेद से संबंधित विस्तृत सामग्री-जैसे ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्‌-का बोध कराता है। ये ग्रन्थ मन्त्र संहिताओं से भिन्न होते हुए भी, उनसे अटूट रूप से जुड़े हुए हैं। इसी संबंध में षड्‌वेदाङ्ग भी वैदिक साहित्य के अंतर्गत सम्मिलित हैं।

वैदिक युग को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। पूर्व वैदिक युग में केवल वेद की चार संहिताएँ सम्मिलित हैं, जबकि उत्तर वैदिक युग में ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर छः वेदांगों तक का साहित्य शामिल है। चूँकि वेद चार हैं, अतः उनकी संहिताएँ भी चार हैं। विशेष रूप से, संहिता वह भाग है, जिसमें

[447] मनुस्मृति, 2/11

वेदस्तुति से संबंधित मन्त्र वर्णित हैं और जिसे विभिन्न युगों में पठित किया जा सकता है। जहाँ तक संहिताओं की विषयवस्तु का प्रश्न है, कहा गया है-

"ऋक् यजुः सामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः।

शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चितं व्यधात् क्रमात्।।"[448]

अर्थात् ऋक् का विषय है- 'शस्त्र'। शस्त्र उसे कहते हैं जो मन्त्रों द्वारा उच्चरित होता है तथा जिसका गान नहीं किया जा सकता। यजुष् का विषय 'इज्या' अर्थात् यज्ञ है तथा 'साम' का विषय है- 'स्तुति स्तोम' अर्थात् स्तुति के लिए प्रयुज्यमान ऋक् समुदाय, जो उद्गाता द्वारा गाया जाता है। अथर्व का प्रतिपाद्य विषय है- 'प्रायश्चित'।

4.2.1.1.1 ऋग्वेद संहिता

ऋग्वेद विश्व साहित्य का प्राचीनतम और सर्वथा महत्त्व पूर्ण ग्रंथ है। यह विविध देवताओं के स्तुतिपरक मन्त्रों का संकलन है और इसकी उत्पत्ति विराट पुरुष के मुख से मानी गई है। 'ऋक्' शब्द का अर्थ है वह स्तुति या अर्चना जिससे देवताओं का आह्वान किया जाता है; अर्थात् *'ऋच्यते स्तूयते यया इति ऋक्'*।[449] इन्हीं ऋचाओं का संग्रह ही 'ऋग्वेद' कहलाता है, और इसका पुरोहित देवताओं के आह्वान करने वाला होता था। ऋग्वेद में ज्ञान की अत्यधिक महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। यह माना जाता है कि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने वेदों का ज्ञान चार प्रमुख ऋषि-अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा-को दिया। जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार "ऋषियों ने वेदों का दर्शन पाया था, 'मन्त्रद्रष्टा' थे।"[450] इन ऋषियों को 'मन्त्रदृष्टा' कहा जाता है, न कि 'स्रष्टा', अर्थात् ये ऋषि वे मन्त्रों के द्रष्टा हैं जिन्हें उन्होंने स्वयं देखा या अनुभवी किया, न कि स्रष्टा। इन मन्त्रों का गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से मौखिक रूप से

---

[448] मनुस्मृति, 1/23

[449] निरुक्त यास्काचार्य, 7/12

[450] विद्यालंकार, जयचन्द्र, *"इतिहास-प्रवेश"*, प्रारम्भिक काल से 18वीं शती तक, पृ.सं. 37

सम्प्रेषण हुआ। परिणामस्वरूप, इन मन्त्रों को श्रुति (जो सुने जाने योग्य हो) कहा गया।[451] जब समय के साथ यह ज्ञान धीरे-धीरे विस्मृत होने लगा और वेदों के मन्त्रों का मौखिक प्रसारण अवरुद्ध हुआ, तब इस ज्ञान को लिपिबद्ध किया गया। इस कारण वेदों को 'संहिता'[452] के नाम से जाना जाता है। "ऋग्वेद के कुल दस मण्डल हैं, जिन्हें 1017 सूक्तों के रूप में व्यवस्थित किया गया है ।"[453]

सूक्त दस मण्डलों में विभाजित हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने ऋग्वेद की 21 शाखाएँ मानी हैं- *'एकविंशतिधा वाहवृच्यम्।'*[454] जिसमें शाकल, वाष्कल, आश्वलायिनी, शांखायनी तथा माण्डूकायनी प्रमुख शाखाएँ है।[455]

यास्क ने निरुक्त में देवताओं को तीन भागों में रखा है

(i) पृथ्वी-स्थानीय देवता- अग्नि, सोम, पृथ्वी आदि।

(ii) अन्तरिक्ष-स्थानीय देवता- इन्द्र, रुद्र आदि।

(iii) द्यु-स्थानीय देवता- वरुण, मित्र, उषस्, सूर्य आदि।[456]

इस प्रकार ऋग्वेद में कुल 33 देवताओं की स्तुतियाँ की गई हैं; जिनमें इन्द्र तथा अग्नि का सर्वप्रमुख स्थान है। ऋग्वेद में लगभग 20 सूक्त ऐसे हैं, जिन्हें संवाद सूक्त कहा जाता है। इनमें प्रमुख सूक्त निम्नलिखित है

विषयवस्तु की दृष्टि से ऋग्वेद के समस्त सूक्तों को मुख्यतया दस वर्गों में रखा जा सकता है- देवता सूक्त, ध्रुवपद, कथा, संवाद, दानस्तुति, तत्त्वज्ञ संस्कार, मान्त्रिक, लौकिक तथा आप्रीसूक्त। कुछ विद्वानों ने इन्हें ऋषिसूक्त, देवतासूक्त, अर्थसूक्त तथा छन्दसूक्त, इन चार विभागों में रखा है। "ऋग्वेद की

---

[451] गैरोला, वाचस्पति, *"संस्कृत साहित्य का इतिहास"*, पृ.सं. 113

[452] पण्डित भगवद्दत्त, *"वैदिक वाङ्मय का इतिहास"*, प्रथम भाग, पृ.सं. 52

[453] विद्यालंकार, जयचन्द्र, *"भारतीय इतिहास की रूपरेखा"*, जिल्द 1, पृ.सं. 207

[454] ऐतरेय ब्राह्मण, 2/18

[455] सिंह, निरंजन, 'योगमणि', *"प्राचीन भारत का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहास"*, पृ.सं. 26

[456] निरुक्त, 7/2

प्रत्येक शाखा में दस ही मण्डल थे, अतः जब सब शाखाओं का वर्णन करना होता है, तो दाशतायी शब्द का प्रयोग किया जाता है।"[457]

इन विविध विषयों का सन्निवेश होने के कारण ऋग्वेद, अन्य वेदों की अपेक्षा अधिक गौरवमय है। यजुस्, साम एवं अथर्व संहिताओं, ब्राह्मण और आरण्यक के अन्तर्गत जिन विषयों का विवेचन किया गया है, वे सभी मूल रूप से ऋग्वेद में निहित हैं; चाहे वह प्राणविद्या या प्रतीकोपसना या ब्रह्मविद्या हो। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 164वें सूक्त में लगभग 52 ऋचाएँ प्रहेलिका के रूप में दी गई हैं। इन मन्त्रों में पहेलियाँ रहस्यात्मक और प्रतीकात्मक भाषाओं में दी गई हैं। कई स्थानों पर तो संकेत इतने गूढ़ हैं कि उनका अर्थ समझना असम्भव लगता है। इन प्रहेलिका त्रचाओं के ऋषि दीर्घतमा हैं। ऋग्वेद में 12 दार्शनिक सूक्त हैं; जिनमें मुख्यरूपेण पुरुषसूक्त (10/190); हिरण्यगर्भ सूक्त (10/121) तथा नासदीय सूक्त (10/129) सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में विस्तार से विचार करते हैं। इसमें कोई भी विषय ऐसा नहीं है जो कि ऋग्वेद से अछूता हो। ऋग्वेद का प्रारम्भ 'अग्निसूक्त' से तथा अन्त 'संज्ञानसूक्त' से किया गया है।

4.2.1.1.2 यजुर्वेद संहिता

यजुर्वेद का प्रतिपाद्य विषय याज्ञिक कर्मकाण्ड है तथा इसका ऋत्विक् अध्वर्यु है। यजुर्वेद संहिता के मुख्य देवता वायु और आचार्य-वेदव्यास के शिष्य वैशम्पायन हैं। महाभाष्य, चरणव्यूह एवं पुराणों के अनुसार यजुर्वेद की 100, 101, 109, 86 आदि शाखाओं का पता चलता है।[458] यजुर्वेद संहिता, यजुसों का संग्रह है। यजुर्वेद का अर्थ है- *'यजुषां वेदः'*। यजुष् का अर्थ है- *'इज्यतेऽनेनेति यजुः'* अर्थात् जिन मन्त्रों से यज्ञ यागादि किए जाते हैं, *'अनियताक्षरावसानो*

[457] पण्डित भगवद्दत्त, *"वैदिक वाङ्मय का इतिहास"*, प्रथम भाग, पृ.सं. 139
[458] वही, पृ.सं. 145-153

यजुः[459] अर्थात् जिसमें अक्षरों की संख्या नियत न हो। इसके अतिरिक्त *'गद्यात्मको यजुः' एवं 'शेषे यजुः शब्दः*[460] का भी तात्पर्य यही है कि ऋक् और साम से भिन्न गद्यात्मक मन्त्रों का अभिधान 'यजुष्' है। सत्यकेतु विद्यालंकार का मत है कि यजुर्वेद के दो प्रधान रूप मिलते है, शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेयी संहिता भी कहते है। शुक्ल यजुर्वेद एवं कृष्ण यजुर्वेद पर निम्नलिखित शाखाएँ प्रसिद्ध हैं-

(i) शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयी या माध्यन्दिन और काण्व शाखा।

(ii) कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ और कपिष्ठल शाखा।[461]

यजुर्वेद के वर्ण्य-विषय का ज्ञान मात्र वाजसनेयी संहिता के अध्ययन से हो सकता है, क्योंकि यह संहिता यजुर्वेद की प्रतिनिधि है। इसमें मुख्य रूप से वैदिक कर्मकाण्ड का ही प्रतिपादन है तथा इसमें 40 अध्याय हैं। इसमें 1 से 25 अध्याय तक महान यज्ञों का वर्णन है। लेकिन 14 अध्याय 'खिल' नाम से प्रसिद्ध होने के कारण अवान्तरयुगीन माने जाते हैं। इसका 34वाँ अध्याय 'शिवसंकल्पसूक्त' और 40वाँ अध्याय 'ईशावास्योपनिषद्' के नाम से प्रसिद्ध है। यही एकमात्र, वह सर्वप्राचीन उपनिषद है, जो संहिता का भाग है। इस विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि यजुर्वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय विभिन्न यज्ञों का सम्पादन ही है।

तैत्तिरीय शाखा में 7 काण्ड, 44 प्रपाठक और 631 अनुवाक हैं। मैत्रायणी शाखा में 4 काण्ड, 54 प्रपाठक और 2114 मन्त्र हैं। कठ शाखा में 40 स्थानक और 843 अनुवाक हैं। कपिष्ठल शाखा में 8 अष्टक और 48 अध्याय हैं।

---

[459] अष्टाध्यायी, 8/2/83

[460] जैमिनीय सूत्र, 2/1/37

[461] विद्यालंकार, सत्यकेतु, *"प्राचीन भारत"*, पृ.सं. 89

4.2.1.1.3 सामवेद संहिता

साम का अर्थ है- 'गान'। ऋग्वेद के मन्त्र जब विशिष्ट गान पद्धति से गाए जाते हैं तो उनको साम कहा जाता है। वस्तुतः ऋग्वेद की ऋचाओं का लयबद्ध गान ही साम है। सामवेद का प्रमुख विषय उपासना है। इसमें सोमयाग सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन है। इसका ऋत्विक् उद्गाता और देवता सूर्य है। पतञ्जलि अपने व्याकरणमहाभाष्य लिखते है *"सहस्त्रवर्त्मा सामवेदः"* अर्थात् सहस्त्र शाखा युक्त सामवेद है।[462]

वर्तमान में राणायनीय, कौथुमीय तथा जैमिनीय, ये तीन शाखाएँ उपलब्ध हैं।[463] सामवेद को दो भागों में विभक्त किया गया है- (1) पूर्वार्चिक तथा (2) उत्तरार्चिक । यहाँ पर आर्चिक से अभिप्राय ऋचाओं के संग्रह से है। पूर्वार्चिक में कुल छः प्रपाठक हैं तथा उत्तरार्चिक में नौ। इन प्रपाठकों का विभाजन अध्यायों और खण्डों में हुआ है।[464] प्रत्येक खण्ड में एक देवता या एक छन्दपरक ऋचाएँ हैं।

पूर्वाचिक का प्रथम प्रपाठक अग्नि से सम्बद्ध होने के कारण अग्निपर्व या आग्नेयपर्व भी कहा जाता है। द्वितीय से चतुर्थ प्रपाठक में इन्द्र से सम्बन्धित ऋचाएँ हैं, जो ऐन्द्रपर्व कहलाता है। पञ्चम प्रपाठक का सम्बन्ध पवमान (सोम) से है, जिसे 'पवमान पर्व' कहते हैं। षष्ठ प्रपाठक को 'अरण्यपर्व' की संज्ञा दी गई है क्योंकि इस प्रपाठक की ऋचाएँ अरण्यगान के ही योग्य है; जबकि प्रथम पाँच प्रपाठक तक की ऋचाओं को गाँवों में गाया जा सकता है, जिन्हें ग्रामगान कहते हैं। गान चार प्रकार के होते हैं- ग्राम या गेय गान, अरण्यगान, ऊहगान और ऊह्य (रहस्य) गान।

---

[462] पण्डित भगवद्दत्त, *"वैदिक वाङ्मय का इतिहास"*, प्रथम भाग, पृ.सं. 203

[463] विद्यालंकार, सत्यकेतु, *"प्राचीन भारत"*, पृ.सं. 89

[464] पण्डित भगवद्दत्त, *"वैदिक वाङ्मय का इतिहास"*, प्रथम भाग, पृ.स. 210

उत्तरार्चिक के अनेक मन्त्र पूर्वाचिक से लिए गए हैं। इसमें सात प्रमुख अनुष्ठानों का निर्देश है- दशरात्र, संवत्सर, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित और क्षुद्र। इसमें प्रत्येक मन्त्र की लय, तान को याद करने का वर्णन विद्यमान है। पूर्वार्चिक में कुल 650 मन्त्र और उत्तरार्चिक में 1125 मन्त्र हैं।

सामवेद में सामविकार भी पाए जाते हैं जिन्हें गान करते समय कुछ घटाया-बढ़ाया भी जाता है। ये छः प्रकार के होते हैं- विकार, विश्लेषण, विकर्षण, अभ्यास, विराम तथा स्तोभ। इसके अतिरिक्त यज्ञ सम्पादन के समय पाँच प्रकार के साम-मन्त्र भी गाए जाते हैं-

प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतीहार, उपद्रव, और निधन इसका गायन तीनों ऋत्विक् (प्रस्तोता, उद्गाता एवं प्रतिहर्ता) एक साथ करते हैं।

4.2.1.1.4 अथर्ववेद संहिता

अथर्व शब्द का अर्थ होता है- अकुटिल वृत्ति और अहिंसावृत्ति से मन की स्थिरता को प्राप्त वाला। इस व्युत्पत्ति के योग का प्रतिपादन करने वाले अनेक प्रसंग इस वेद में है । अथर्वन् ऋषि के नाम पर इस वेद का नाम अथर्ववेद पड़ा। इसे भृग्वंगिरा वेद, अथर्वांगिरोवेद, भिषग्वेद, क्षत्रवेद तथा ब्रह्मवेद के नाम से भी जाना जाता है। इसका ऋत्विक् ब्रह्मा है। इस वेद के देवता सोम तथा आचार्य सुमन्तु हैं। अथर्ववेद को वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) की अपेक्षा कम महत्त्व दिया गया है क्योकि इसमें अधिकांशतः अभिचारात्मक सूक्त ही हैं।

अथर्ववेद की नौ शाखाएँ हैं- पिप्पलाद, स्तोद, मोद, शौनकीय, जाजल, जलद ब्रह्मवेद, देवदर्श तथा चारणवैद्य।[465] इनमें से सम्प्रति पिप्पलाद और शौनकीय, ये दो शाखाएँ ही प्राप्त होती हैं। इसमें 20 काण्ड, 730 सूक्त और लगभग 6000 मन्त्र है।[466]

---

[465] पण्डित भगवद्दत्त, *"वैदिक वाङ्मय का इतिहास"*, प्रथम भाग, पृ.सं. 221

[466] विद्यालंकार, सत्यकेतु, *"प्राचीन भारत"*, पृ.सं. 89

इस जीवन को सुखमय तथा दुःखरहित बनाने के लिए जिन-जिन साधनों की आवश्यकता होती है; उनकी सिद्धि के लिए नाना प्रकार के अनुष्ठानों का विधान इस वेद में किया गया है। संहिता के प्रारम्भिक 13 काण्डों का विषय जरण, मरण, उच्चाटनादि से सम्बन्धित है। 14वें काण्ड में विवाह, 18वें काण्ड में श्राद्ध तथा 20वें काण्ड में सोमयाग से सम्बन्धित मन्त्र दिए गए हैं; जबकि 19वें काण्ड में राष्ट्रवृद्धि एवं अध्यात्मपरक सूक्त हैं। अथर्ववेद की विषय-वस्तु में कुछ सूक्त निम्नलिखित है-

भैषज्य सूक्त, आयुष्य सूक्त, पौष्टिक सूक्त, शृङ्गार सूक्त, प्रायश्चित सूक्त, स्त्रीकम सूक्त, राजकर्मा सूक्त, याज्ञिक सूक्त, कुन्ताप सूक्त, अभिचार सूक्त तथा दार्शनिक सूक्त । इसके अतिरिक्त भूमि सूक्त, प्रसाद सूक्त, सौमनास्य सूक्त आदि का भी वर्णन मिलता है।

4.2.2 ब्राह्मण ग्रन्थ

वेदों के संहिता भाग के संग्रह के पश्चात् वैदिक साहित्य में ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान है। ये ब्राह्मण ग्रन्थ वैदिक संस्कृति, धर्म और दर्शन को समझने के लिए अपरित्याज्य हैं। इनके महत्त्व और प्राचीनता का अनुमान इससे स्पष्ट है कि अनेक ग्रन्थों में वैदिक संहिताओं की भाँति इन्हें भी वेद कहकर पुकारा गया

'*मन्त्र- ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्*'[467] अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का नाम वेद है। यहाँ पर इनका शाब्दिक अर्थ ग्राह्य नहीं है। वास्तव में वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों का अस्तित्व पृथक् है। वेद तो मूल ग्रन्थ हैं और ब्राह्मण ग्रन्थ उनके व्याख्यापरक ग्रन्थ जो मन्त्र संहिताओं में दिए गए हैं, ब्राह्मण ग्रन्थ उनकी व्याख्या करते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद इसलिए कह दिया गया है क्योंकि इन

[467] आपस्तम्ब परिभाषा, 1/33

ग्रन्थों के बिना वेद को समझना कठिन है। प्रत्येक ब्राह्मण-ग्रन्थ का किसी वेद के साथ सम्बन्ध है, और उसे उसी वेद का ब्राह्मण माना जाता है।[468]

ब्राह्मण शब्द वृहु वर्धने से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है बढ़ाना। 'ब्रह्मण' का अर्थ मन्त्र भी है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार 'ब्रह्मन्' शब्द का अर्थ-मन्त्र है *'ब्रह्म वै मन्त्रः'*[469]। अतः वेदमन्त्रों की व्याख्या और विनियोग प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ को 'ब्राह्मण' कहते हैं। पुनः शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ही 'ब्रह्मन्' शब्द का दूसरा अर्थ 'यज्ञ' है *'ब्रह्म यज्ञः'*[470] भट्ट भास्कर का कथन है कि 'कर्मकाण्ड और मन्त्रों' के व्याख्यान ग्रन्थों को 'ब्राह्मण' कहते हैं। *'ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः।'*[471] *"समानार्थावेतौ ब्रह्मन् शब्द ब्राह्मणशब्दश्च"*[472] पतञ्जलि ने ब्रह्मण और ब्राह्मण का एक ही अर्थ लिया है चारों वेदों को जानने वाले ब्राह्मणों के द्वारा किया गया वेद का व्याख्यान। वस्तुतः ब्राह्मण शब्द का अर्थ है- 'यज्ञ के विविध-विधानों में पूर्ण निपुणता रखने वाले पुरोहित वर्गों के द्वारा यक्षों के अनुष्ठान के अवसर पर प्रयोग में लाई जाने वाली संहिता भाग की विधियों की व्याख्या का संकलन ।' यही अर्थ सबसे समीचीन है क्योंकि यह ब्राह्मणों के मुख्य विषय को अपने अन्दर समाहित कर लेता है।

ये ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्रों और प्रार्थनाओं के साथ याज्ञिक कर्मों का पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ते हुए स्वतन्त्र रूप से विधि-विधानों का निर्देश करते हैं। *"नैरुक्त्यं यत्र मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम्। प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं*

---

[468] विद्यालंकार, सत्यकेतु, *"प्राचीन भारत"*, पृ.सं. 90

[469] शतपथ ब्राह्मण, 7/1/1/5

[470] शतपथ ब्राह्मण, 3/1/4/15

[471] भट्ट-भास्कर भाष्य--तैत्तरीय संहिता 1/5/1

[472] श्रीमद्भगवत्पञ्जलिमुनिविचरितं, *"व्याकरणभाष्यम्"*, पृ.सं. 275

तदिहोच्यते॥"[473] वाचस्पति मिश्न के अनुसार ब्राह्मण ग्रन्थों का वर्ण्य-विषय निरुक्ति, मन्त्रों का विनियोग, अर्थवाद और विधि है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों का वर्ण्य विषय

वर्ण्य विषय की दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थों के तीन भाग हैं विधि, अर्थवाद और उपनिषद्। विधि विधि का अर्थ है नियम या सिद्धान्त। इस भाग में यज्ञानुष्ठान सम्बन्धी विधियों का कहुत है और तत्पश्चात् उससे प्राप्त होने वाले फल का भी निरूपण किया गया है। ये विधियाँ दो प्रकार की हैं- अप्रवृत्त-प्रवर्तनम् जो यज्ञ न करने वालों को यज्ञ करने के लिए प्रेरित करती है। अज्ञात-ज्ञापनम् जो अज्ञात का ज्ञान करवाती है। विधि-वाक्य धर्म के लिए प्रमाण माने गए है। अर्थवाद अर्थवाद का अर्थ है प्रशस्तिपूर्ण व्याख्या। ये व्याख्यात्मक अंश हैं। यह भाग बतलाता है कि अमुक यज्ञ करने से अमुक फल की प्राप्ति होगी। इसमें आख्यानों द्वारा गूढ़ से गूढ़ अर्थों को समझाया गया है।

4.2.3 आरण्यक

संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् वैदिक साहित्य के मुख्य अङ्ग हैं। ये सब परस्पर सम्बन्धित एवं अन्योन्याश्रित हैं। ये एक-दूसरे के पूरक भी है। इस दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद आरण्यक ग्रन्थों का नाम आता है। ये आरण्यक ग्रन्थ, ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के बीच की कड़ी हैं। कर्मकाण्ड की दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थ एवं आरण्यक ग्रन्थ परस्पर सम्बन्धित हैं जबकि ज्ञानकाण्ड की दृष्टि से आरण्यक ग्रन्थ एवं उपनिषद् सम्बन्धित है। ये ब्राह्मण ग्रन्थों के अन्तिम रूप हैं और उपनिषदों के पूर्व रूप।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ की कर्मकाण्डपरक व्याख्या है जबकि आरण्यक ग्रन्थों में यज्ञ की आध्यात्मिक व्याख्या दी गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों के यज्ञ सम्बन्धी विस्तार से ऊबकर कुछ विद्वान् आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हुए। उन्होंने यज्ञ

---

[473] वाचस्पतिमिश्रः, "*सर्वतन्त्र-स्वतन्त्रो*"

की आध्यात्मिक दृष्टि से व्याख्या करनी प्रारम्भ कर दी। इन ग्रन्थों ने ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषय की आध्यात्मिक शैली में व्याख्या की। सत्यकेतु विद्यालंकार का कथन है कि "अनेक आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के ही भाग है।"[474]

"अरण्य अर्थात् एकान्त जंगल में रह के यज्ञों के रहस्यों के बताने वाली जिस विद्या का पाठ किया जाता था, वह विद्या जिन ग्रन्थों में बन्द है, आरण्यक कहते है।"[475] आरण्यक ग्रन्थों को आरण्यक इसीलिए कहा जाता है कि ये नगरों और ग्रामों में नहीं, अरण्य या वनों में पढ़े जाते थे। सायणाचार्य ने इनके नामकरण के विषय में स्पष्ट किया है कि ये वनों में पढ़ाए जाने के कारण आरण्यक कहलाए *'अरण्ये एव पाठ्यत्वाद् आरण्यकम् इतीर्यते।'*[476]

श्री. वी. एस. आपटे अपने संस्कृत-अंग्रेजी कोश में लिखते हैं

'अरण्येऽनुच्यमानत्वाद् आरण्यकम्।'

एवं 'अरण्येऽध्ययनादेव आरण्यकम् उदाहृतम्।'[477]

ब्राह्मण और उपनिषद् के समान आरण्यक ग्रन्थों की संख्या भी बहुत थी। किन्तु वर्तमान में केवल आठ आरण्यक ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं।

4.2.4 उपनिषद्

वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत क्रमशः आरण्यकों के पश्चात् उपनिषदों को रखा जाता है। दार्शनिक विश्लेषण की दृष्टि से आरण्यकों में वर्ण्य विषयों की सांगोपांग व्याख्या उपनिषदों प्राप्त है। यदि मनुष्य जीवन को तीन भागों में विभक्त किया जाये, तो वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थ पूर्वार्ध, उपनिषद् उत्तरार्ध तथा आरण्यक इन दोनों ध्रुवों के मध्य दिखलाई देते है। सत्यकेतु विद्यालंकार का कथन है कि "उत्तर वैदिक युग के आर्य केवल याज्ञिक अनुष्ठानों में ही व्यावृत्त

---

474 विद्यालंकार, सत्यकेतु, *"प्राचीन भारत"*, पृ.सं. 91

475 पण्डित भगवद्दत्त, *"वैदिक वाङ्मय का इतिहास"*, द्वितीय भाग, पृ.सं. 223

476 "ऐतरेय आरण्यक", सायण भाष्य

477 शतपथ ब्राह्मण 14/1/1

नहीं थे, उनका ध्यान ब्रह्मविद्या तथा तत्त्वचिन्तन की ओर भी गया।"[478] "वस्तुतः समस्त सांसारिक विषय भोगों का भोग करके तथा अपनी तीनों एषणाओं- पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा की प्राप्ति करके मनुष्य दर्शन की ओर अग्रसर होता है। वह सोचता है कि सम्पूर्ण जीवन में उसने क्या किया, जीवन में उसने क्या खोया और क्या पाया। वह आत्म-विश्लेषण करता है और जीवन की सार्थकता का चिन्तन करता है। तब उसे अनुभव होता है कि उसके द्वारा भुक्त समस्त विषय भोग तो नश्वर और क्षणभंगुर है। उनका भोग करके तो कुछ भी उपलब्धि नहीं हुई। तब वह सुख-दुःख, राग-द्वेष, मोह-माया से मुक्त होना चाहता है।"[479] उपनिषदों में जीवन-मृत्यु के संसार से मुक्ति के लिए आवश्यकता ज्ञान सन्निहित है। उपनिषद् मनुष्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर एवं मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाते हैं।

उपनिषद् में ब्रह्मतत्त्व के बारे में विचार किया गया है। शाबर-भाष्य में ब्राह्मणों के प्रतिपाद्य विषय के रूप में विधि के अङ्गभूत कुल 10 वस्तुओं का उल्लेख किया गया है

'हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।

प्रक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण-कल्पना।

उपमानं दशैतेतो विधयो ब्राह्मणस्य तु।'[480]

परन्तु इनमें विधि, विनियोग, हेतु, अर्थवाद, निरुक्ति तथा आख्यान की ही प्रधानता है। इनमें से भी 'विधि' सर्वप्रमुख है।

4.2.4.1 उपनिषद् शब्द का अर्थ

उपनिषद् शब्द उप और नि उपसर्ग पूर्वक, षद्लू में क्विप् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न है। उप, नि और षद्लृ का अर्थ क्रमशः समीप, निश्चयपूर्वक तथा बैठना

---

[478] विद्यालंकार, सत्यकेतु, *"प्राचीन भारत"*, पृ.सं. 116

[479] विद्यालंकार, जयचन्द्र, *"भारतीय इतिहास की रूपरेखा"*, जिल्द 1, पृ.सं. 296

[480] शाबर भाष्य, 2/1/8

है। अतः उपनिषद् का अर्थ है- गुरु के समीप विनम्रतापूर्वक बैठकर ज्ञान की प्राप्ति करना। आचार्य शंकर के अनुसार, षद्लू-विशरण (नाश होना), गति (प्राप्त होना) तथा अवसादन (शिथिल करना) इन तीन अर्थों में प्रयुक्त है। इस प्रकार शंकराचार्य के अनुसार उपनिषद् वह विद्या है- "जिससे मनुष्य की अविद्या का नाश होता है, बुद्धि की प्राप्ति होती है और दुःखों का नाश होता है।"[481] मुण्डकोपनिषद् ने *वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः*[482] कहकर उपनिषद् के वेदान्त नाम का संकेत किया है। वैदिक साहित्य के अन्त में रचे जाने के कारण इन्हें वेदान्त भी कहा गया है। इसका दूसरा नाम रहस्यम् भी है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है- वेदान्ते परमं गुह्यम्[483]।

4.2.4.2 उपनिषदों की संख्या

इनकी संख्या 108 है। इनमें से 11 उपनिषद् मुख्य माने गए हैं। ऋग्वेद का ऐतरेय, सामवेद का केन और छान्दोग्य, शुक्ल यजुर्वेद का ईश और बृहदारण्यक, कृष्ण यजुर्वेद का कठ, तैत्तिरीय और श्वेताश्वर तथा अथर्ववेद का प्रश्न, मुण्डक और माण्डूक्य उपनिषद् हैं। शंकराचार्य ने उपनिषदों की संख्या 10 मानी है *'ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः। ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश ।।*[484]

4.3 वैदिक जन-जीवन का सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष

किसी भी सभ्यता और संस्कृति को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उससे सम्बन्धित सभी पहलुओं का समग्र अध्ययन किया जाये। किसी भी व्यवस्था को सर्वांगीण रूप मरण तथा सही परिप्रेक्ष्य में समझाने के लिए यह आवश्यक है कि तत्कालीन समय के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक पक्ष को देखा जाये। सामाजिक इतिहास जहाँ देश में रहने वाले लोगों

---

[481] ब्रह्मसूत्र, शाङ्करभाष्य, 1/1/2
[482] मुण्डकोपनिषद्, 3/2/6
[483] श्वेताश्वतरोपनिषद्, 6/22
[484] मुक्तिकोपनिषद् 1/30

के जन-जीवन का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करता है, उसी से सह-सम्बन्धित आर्थिक व्यवस्था भी होती है। किसी भी कालखण्ड की आर्थिक व्यवस्था लोगों द्वारा अपने जीवन को भौतिक दृष्टि से समृद्ध बनाने हेतु किये गये विभिन्न क्रिया-कलापों को अभिव्यक्त करती है। वैदिक सभ्यता और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष के विवेचन के लिए निम्न बिन्दुओं पर विचार करना समीचीन प्रतीत होता है-

- वर्ण व्यवस्था
- आश्रम व्यवस्था और
- पुरुषार्थ

इन तीनों के आलोक में वैदिक अर्थ व्यवस्था का क्रमानुगत विवेचन और विश्लेषण निम्नवत प्रस्तुत है-

4.3.1 वर्ण व्यवस्था

वैदिक कालखण्ड में आर्थिक पक्ष को समाज व्यवस्था से भिन्न नहीं किया जा सकता। वैदिक भारतीय मनीषियों ने समाज के आर्थिक तथा सामाजिक संचालनार्थ जिन व्यवस्थाओं का नियोजन किया उनमें वर्ण व्यवस्था का स्थान सर्वोपरी माना जाता है। सम्पूर्ण भारतीय समाज को चार वर्णाँ यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में बाँटकर प्रत्येक वर्ण के लिए कुछ आवश्यक नियमों एवं कर्त्तव्यों का निर्धारण किया गया ताकि प्रत्येक वर्ण उन नियमों को अपना धर्म और नैतिक कर्त्तव्य समझकर उनका पालन करें, उदाहरणार्थ ब्राह्मण का कार्य अध्ययन-अध्यापन तथा धार्मिक क्रिया-कलापों से सम्बन्धित कर दिया गया। क्षत्रिय को शासन संचालन तथा देश एवं समाज की रक्षा का भार सौंपा गया। वैश्य को कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के द्वारा लोगों की जीविका का प्रबन्ध करने का कार्य सौंपा गया और शूद्रों का कार्य सेवा से सम्बद्ध माना गया। इस

प्रकार समाज की मूलभूत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कार्य विभाजन किया गया जिससे व्यक्ति तथा समाज का समग्र विकास हो सके।

वर्ण का अर्थ एवं उद्‌भव

वर्ण शब्द भारतीय साहित्य में अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। विभिन्न भारतीय मनीषियों के दृष्टि से वर्ण शब्द के अनेक अर्थ निम्नवत है; यथा-

यास्क के अनुसार वर्ण शब्द 'वृञ् वरणे' या 'वरी' धातु से बना है जिसका अर्थ है वरण करना या चूनना अर्थात् वर्ण से अभिप्राय किसी विशेष व्यवसाय को अपनाने या चूनने से हैं।[485] पाणिनि ने वर्ण शब्द का उल्लेख ब्राह्मणादि वर्ण, लिंग या चिह्न तथा रंग इन तीन अर्थों में किया है। वर्ण शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है जहां उसका अर्थ अधिकांशतः 'रंग' से लिया गया है। [486] धर्म शास्त्र का इतिहास में पा. वा. काणे काम मत है कि "ऋग्वेद में वर्ण शब्द का प्रयोग अधिकांशतः गौरवर्ण आर्यों तथा कृष्ण वर्ण दासो के लिए हुआ है जो कि कार्य, व्यवहार, आचरण, सम्भाषण तथा रंग आदि में एक-दूसरे से भिन्न थे।"[487] महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने भी वर्ण को रंग के अर्थ में स्वीकार किया है। डी. एन. झा के अनुसार "संस्कृत में वर्ग के लिए वर्ण (रंग) शब्द का प्रयोग किया जाता है। यही वर्ण शब्द विभिन्न रूपों-रंगों और विजातीय संस्कृतियों के लोगों के साथ आर्यों के सम्पर्क के फलस्वरुप चार वर्णों के उद्‌भव की ओर इंगित करता है।[488] "शिवस्वरूप सहाय के अनुसार अनेक अर्थों में प्रयुक्त वर्ण शब्द से तात्पर्य "चातुर्वर्ण्य है, जो समाज के समुचित संचालन की एक व्यवस्था है।"[489]

---

[485] निरुक्त, प्रथम अध्याय

[486] ऋग्वेद, 1/164 /39

[487] काणे, पा. वा., "*धर्म शास्त्र का इतिहास*", प्रथम भाग, पृ.सं. 110

[488] झा, डी. एन., "*प्राचीन भारत*", पृ.सं. 24

[489] सहाय, शिवस्वरूप, "प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास", पृ.सं. 25

विभिन्न विद्वानों के मतों का विचार करते हुए प्रतीत होता है कि वर्ण शब्द के अनेक अर्थ होते हुए भी यह शब्द प्राचीन भारत में चातुर्वर्ण्य के लिए प्रयुक्त किया गया है।

वैदिक समाज में चार वर्णों का विभाजन किया गया था, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शामिल हैं। प्रत्येक वर्ण के लिए विशिष्ट कर्तव्यों का निर्धारण किया गया ताकि समाज में संतुलन और सहयोग बना रहे।

4.3.1.1 ब्राह्मण वर्ण: कार्य और सामाजिक प्रतिष्ठा

ब्राह्मणों को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था, जिनका प्रमुख दायित्व वेदाध्ययन, यज्ञ-संस्कार, शिक्षा तथा संयमित जीवनशैली का पालन करना था। महाभारत व श्रीमद्भागवतगीता में उनके शम, दम, तप, शौच, क्षमा एवं ज्ञान-संपन्न आचरण को उच्च स्थान प्रदान किया गया है।[490] कौटिल्य के अनुसार, अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन तथा दान-प्रतिग्रह उनके प्रधान कार्य थे।[491] मनुस्मृति के अनुसार, ब्राह्मणों के लिए अपार धनार्जन वर्जित था, क्योंकि इससे उनकी आध्यात्मिक साधना बाधित होती थी।[492] याज्ञवल्क्य ने भी आत्मनिर्भरता को प्राथमिकता देते हुए, विपन्न अवस्था में सीमित साधनों से जीवनयापन की संस्तुति की है।[493] अतः स्वाध्याय, त्याग व तपश्चर्या पर आधारित ब्राह्मण जीवन उन्हें विशिष्ट सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करता था।

ब्राह्मणों को धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षणिक व आर्थिक क्षेत्रों में विशेषाधिकार प्राप्त थे। राजसभा में वे नीतिगत परामर्शदाता तथा राज्याभिषेक विधियों के निर्णायक थे। शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें सर्वोच्च सम्मान प्राप्त था। आर्थिक दृष्टि से, वे दान के पात्र थे एवं उन्हें राजकर से विमुक्त रखा गया था। शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों पर कर-प्रणाली लागू न होने का कारण उनकी आध्यात्मिक

---

[490] महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 60; श्रीमद्भागवतगीता, अध्याय 18, श्लोक 42

[491] कौटिल्य, अर्थशास्त्र, अध्याय 1, खंड 3

[492] मनुस्मृति, अध्याय 4, श्लोक 186

[493] याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय 3, श्लोक 36

निष्ठा थी, जो राज्य की समृद्धि हेतु अनिवार्य मानी जाती थी। वसिष्ठ एवं कौटिल्य के अनुसार, राजा को ब्राह्मणों को प्रदत्त भूमियों पर करारोपण से बचना चाहिए।[494] मनुस्मृति का उल्लेख है कि श्रोत्रियों से कर वसूलना अनुचित था, जिससे वे निर्वाह संकट से बच सकें।[495] कालिदास ने भी ब्राह्मणों के तपस्या-जन्य पुण्य को कररूप में राजा को समर्पित करने की अवधारणा प्रस्तुत की।[496] परंतु जो ब्राह्मण कृषि आदि लौकिक कार्यों में प्रवृत्त होते थे, उन्हें कर देना अनिवार्य था। इस प्रकार, ब्राह्मणों के विशेषाधिकार न केवल धार्मिक अपितु राजनैतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक क्षेत्रों में विस्तारित थे। उनका कठोर तपोमय जीवन भारतीय संस्कृति के संवर्धन में अत्यंत योगदानकारी रहा, जिससे उन्हें विशिष्ट मान्यता प्राप्त हुई।

4.3.1.2 क्षत्रिय वर्ण: कार्य और समाज में उनका स्थान

प्राचीन भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत क्षत्रियों का महत्त्व पूर्ण स्थान था। उन्हें ब्राह्मणों के बाद दूसरा स्थान प्राप्त था, और उनकी उत्पत्ति परम पुरुष की भुजाओं से मानी गई, जो उनके रक्षक स्वरूप को दर्शाता है। ऋग्वेद में 'छत्र' शब्द का प्रयोग शूरता और वीरता के संदर्भ में किया गया है, जो क्षत्रियों के कर्तव्यों को स्पष्ट करता है।[497] उनके प्रमुख दायित्वों में युद्ध करना, प्रजा की रक्षा करना, शासन करना और यज्ञ का सम्पादन करना शामिल था। महाभारत में स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है कि शासन और दंड देने का अधिकार केवल क्षत्रियों को प्राप्त था।[498] धर्मशास्त्रों में आपातकाल में क्षत्रियों को वैश्यवृत्ति अपनाने की अनुमति दी गई, किंतु कृषि कार्य उनके लिए वर्जित माना गया। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय समाज में क्षत्रियों की भूमिका

---

[494] वसिष्ठ धर्मसूत्र, अध्याय 5, श्लोक 42
[495] मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक 133
[496] कालिदास, रघुवंशम्, सर्ग 5
[497] ऋग्वेद, मंडल 4, सूक्त 38
[498] महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 60

स्पष्ट रूप से परिभाषित थी, जो समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रही।

4.3.1.3 वैश्य वर्ण: कार्य और समाज में उनका स्थान

प्राचीन भारतीय समाज में वैश्य वर्ण को तीसरा स्थान प्राप्त था, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में केवल एक बार हुआ है। उनका मुख्य कार्य पशुपालन, कृषि और व्यापार था, जो समाज की आर्थिक समृद्धि के लिए आवश्यक थे। महाभारत और मनु स्मृति के अनुसार, दान देना, यज्ञ करना, और वेदाध्ययन भी उनके कर्तव्यों में शामिल थे।[499] हालांकि, समाज में उन्हें ब्राह्मणों और क्षत्रियों से निम्न माना जाता था, और अपराधों के मामले में उन्हें अधिक कठोर दंड दिया जाता था। आपत्तिकाल में, वे अन्य वर्णों के कार्य कर सकते थे, लेकिन ब्राह्मणों की तरह अध्यापन या यज्ञ करने की अनुमति नहीं थी। पालि त्रिपिटक में वैश्य के लिए 'गहपति', 'कुटुम्बिक' और 'सेट्ठी' जैसे शब्दों का उल्लेख मिलता है, जो उनके सामाजिक और आर्थिक महत्त्व को दर्शाते हैं।[500] कई समृद्ध वैश्यों ने धार्मिक स्थलों के निर्माण में महत्त्व पूर्ण योगदान दिया, जिससे उनकी दानशीलता और समाज में उनकी भूमिका स्पष्ट होती है। इस प्रकार, वैश्य वर्ग ने भारतीय समाज में आर्थिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से महत्त्व पूर्ण योगदान दिया।

4.3.1.4 शूद्र वर्ण: कार्य और समाज में उनका स्थान

वर्ण व्यवस्था में शूद्रों का स्थान सबसे निचला था, और उनकी उत्पत्ति को लेकर विभिन्न विद्वानों के भिन्न मत हैं। पा.वा. काणे के अनुसार, शूद्रों का सम्बन्ध दास और दस्युओं से था, जिन्हें आर्यों ने पराजित कर अपने सेवक बना लिया ।[501] रामशरण शर्मा मानते हैं कि शूद्रों का उदय सामाजिक और आर्थिक

---

[499] मनुस्मृति, अध्याय 1, श्लोक 90

[500] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"* भाग 2, पृ.सं. 93

[501] काणे, पा. वा., *"धर्म शास्त्र का इतिहास"*, प्रथम भाग, पृ.सं. 112

विषमताओं के परिणामस्वरूप हुआ, और वे श्रमिक वर्ग के रूप में विकसित हुए।[502] ऋग्वेद में शूद्रों को समाज की शारीरिक श्रम आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले के रूप में देखा गया, जिससे उनका महत्त्व स्पष्ट होता है।

प्रारंभिक वैदिक काल में शूद्रों को तीनों उच्च वर्णों की सेवा करने का अधिकार था, और वे दान देने में भी सक्षम थे। उदाहरणस्वरूप, बल्बूथ नामक दास ने एक ब्राह्मण को 100 गायों का दान दिया था।[503] हालांकि, समय के साथ शूद्रों के अधिकार सीमित कर दिए गए, और उनका कार्य मुख्य रूप से सेवा तक रह गया। मनु और कौटिल्य के अनुसार, शूद्रों का निर्वाह द्विजों की सेवा से होता था, लेकिन वे आपत्तिकाल में व्यापार, पशुपालन और शिल्प कार्यों में संलग्न हो सकते थे।[504] महाभारत में भी शूद्रों के योगदान और समाज में उनके सम्मानजनक स्थान के उदाहरण मिलते हैं। इस प्रकार, समय के साथ शूद्रों की सामाजिक भूमिका में परिवर्तन आया, और उन्होंने समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

4.3.2 आश्रम व्यवस्था

भारतीय समाज में जीवन को एक सुनियोजित एवं संतुलित दिशा प्रदान करने हेतु आश्रम व्यवस्था की संकल्पना की गई थी। यह व्यवस्था व्यक्ति के चार अवस्थाओं में विभक्त जीवन को न केवल अनुशासित करती है, बल्कि उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लक्ष्यों की प्राप्ति के योग्य भी बनाती है। वैदिक परंपरा में आश्रम व्यवस्था को अत्यंत महत्त्व पूर्ण माना गया है, क्योंकि यह समाज के संतुलित संचालन तथा व्यक्तित्व के बहुआयामी विकास में सहायक होती है।

---

[502] शर्मा, रामशरण, "*शूद्रों का प्राचीन इतिहास*", पृ.सं. 30-31

[503] ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 102

[504] काणे, पा. वा., "*धर्म शास्त्र का इतिहास*", प्रथम भाग, पृ.सं. 148

महर्षि वेदव्यास, महर्षि याज्ञवल्क्य, मनु, एवं अन्य प्राचीन ऋषियों ने इस व्यवस्था को अत्यंत वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें प्रत्येक आश्रम का अपना विशिष्ट उद्देश्य एवं कर्तव्य निर्धारित है। यह व्यवस्था व्यक्ति को एक क्रमबद्ध जीवन जीने की प्रेरणा देती है, जिससे वह न केवल व्यक्तिगत उन्नति कर सके, बल्कि समाज एवं राष्ट्र के उत्थान में भी योगदान दे सके। "मानव-जीवन के अस्तित्व के चार लक्ष्य माने गये हैं- धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष।"[505] चार आश्रमों का विस्तृत विवेचन निम्नवत प्रस्तुत है-

4.3.2.1 ब्रह्मचर्य आश्रम: आत्मानुशासन एवं विद्या-अर्जन की अवस्था

ब्रह्मचर्य आश्रम मानव जीवन का प्रारंभिक चरण होता है, जिसमें व्यक्ति को विद्या-अर्जन एवं आत्मानुशासन का अभ्यास कराया जाता है। इस अवस्था में शिष्य गुरुकुल में रहकर अध्ययन करता है, वेदों एवं शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करता है तथा गुरु की सेवा द्वारा विनम्रता एवं अनुशासन का पालन करता है। मनुस्मृति में ब्रह्मचर्य आश्रम के संबंध में कहा गया है-

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपागमन्।"[506]

अर्थात्, ब्रह्मचर्य के तप से ही देवताओं ने अमरत्व को प्राप्त किया। यह उद्धरण ब्रह्मचर्य की महत्ता को दर्शाता है और इंगित करता है कि यह अवस्था व्यक्ति को जीवन के उच्चतम आदर्शों की ओर उन्मुख करती है। इस अवस्था में व्यक्ति को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह जैसे नैतिक मूल्यों का अभ्यास कराया जाता है। यह अवस्था मानसिक और शारीरिक संयम पर आधारित होती है। इसी कारण यह कहा गया है कि ब्रह्मचर्य जीवन की जड़ है, यदि यह दृढ़ हो तो व्यक्ति अपने समस्त लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकता है।

---

[505] काणे, पा. वा., "*धर्म शास्त्र का इतिहास*", प्रथम भाग, पृ.सं. 266

[506] मनुस्मृति, 2/5

4.3.2.2 गृहस्थ आश्रम: समाज एवं कर्तव्य परायणता की अवस्था

गृहस्थ आश्रम जीवन की सबसे महत्त्व पूर्ण अवस्था मानी जाती है, क्योंकि इसमें व्यक्ति अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करता है। यही वह अवस्था है, जहाँ व्यक्ति धर्म, अर्थ एवं काम की साधना करता है और समाज की उन्नति में योगदान देता है।महाभारत में गृहस्थाश्रम को धर्म का मूल कहा गया है-

"*गृहस्थाश्रमो हि धर्मस्य मूलं।*"[507]

अर्थात्, गृहस्थाश्रम ही संपूर्ण धर्मों का मूल है। इस अवस्था में व्यक्ति विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है और अपनी संतान को उत्तम संस्कार प्रदान करता है। इस आश्रम में व्यक्ति की मुख्य जिम्मेदारियाँ होती हैं; यथा- अपने माता-पिता, गुरु एवं अतिथियों की सेवा करना। पत्नी एवं संतान का पालन-पोषण करना।समाज के प्रति अपने दायित्वों का पालन करना। दान, यज्ञ एवं परोपकार के कार्यों में संलग्न रहना। गृहस्थ जीवन केवल भौतिक सुखों तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह त्याग, सेवा और संयम का भी प्रतीक होता है। यही कारण है कि इसे सभी आश्रमों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

4.3.2.3 वानप्रस्थ आश्रम: आत्मचिंतन एवं समाज-सेवा की अवस्था

जब व्यक्ति अपने पारिवारिक दायित्वों को पूर्ण कर लेता है, तब उसे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए। यह अवस्था व्यक्ति को सांसारिक मोह-माया से धीरे-धीरे मुक्त कर आत्मचिंतन एवं आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करती है।महाभारत में वानप्रस्थ आश्रम की आवश्यकता को इस प्रकार वर्णित किया गया है- "*यदा पश्यति पुत्रस्य पुत्रान्, निवृत्तः स्याद्गृहाश्रमात्।*"[508]

---

[507] महाभारत, शांतिपर्व 261/35

[508] महाभारत, वानप्रस्थ धर्म

अर्थात्, जब व्यक्ति अपने पुत्र के पुत्र को देख ले, तब उसे गृहस्थ जीवन से निवृत्त हो जाना चाहिए। वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति को निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए- समाज एवं परिवार से धीरे-धीरे दूरी बनाकर वनगमन करना। आध्यात्मिक साधना एवं स्वाध्याय में संलग्न रहना। तप, ध्यान एवं योग द्वारा आत्मशुद्धि करना।समाज में नैतिकता, धर्म एवं शिक्षा का प्रसार करना। वानप्रस्थ आश्रम का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को संन्यास आश्रम की ओर ले जाना होता है। इस अवस्था में व्यक्ति गृहस्थ आश्रम के बंधनों से मुक्त होकर केवल आत्मज्ञान एवं लोक कल्याण की भावना से कार्य करता है।

4.3.2.4 संन्यास आश्रम: मोक्ष प्राप्ति की अवस्था

संन्यास आश्रम जीवन की अंतिम अवस्था होती है, जिसमें व्यक्ति समस्त सांसारिक बंधनों का परित्याग कर केवल आत्म-साक्षात्कार एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहता है। भगवद्गीता में संन्यास की महिमा इस प्रकार वर्णित की गई है- *"अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः, स संन्यासी च योगी च।"*[509] अर्थात्, जो व्यक्ति कर्मफल की आसक्ति को त्यागकर केवल कर्तव्य करता है, वही वास्तविक संन्यासी एवं योगी है। संन्यास आश्रम में व्यक्ति को निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए- पूर्ण रूप से सांसारिक जीवन का त्याग करना। एकांत में रहकर ध्यान एवं आत्मचिंतन करना। केवल भिक्षा पर निर्वाह करना एवं किसी भी प्रकार के संग्रह से मुक्त रहना। ईश्वर-भक्ति एवं ध्यान-साधना में संलग्न रहना।

संन्यास आश्रम का उद्देश्य केवल आत्मकल्याण नहीं है, बल्कि यह समाज को आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान करने का भी कार्य करता है।

---

[509] भगवद्गीता, 6/1

4.3.3 पुरुषार्थ

भारतीय मनीषियों द्वारा प्रतिपादित पुरुषार्थ सिद्धांत मानव जीवन के नैतिक एवं भौतिक विकास का मेरुदंड है। 'पुरुषार्थ' शब्द का शाब्दिक अर्थ 'बुद्धिमान प्राणी का लक्ष्य' है, जो लौकिक एवं पारलौकिक दोनों संतुलनों को सुनिश्चित करता है। इसका उद्देश्य केवल भोग-संपन्नता नहीं, अपितु आध्यात्मिक उत्थान भी है। भौतिक सुख क्षणिक होते हैं, जबकि आध्यात्मिक चेतना स्थायी तृप्ति प्रदान करती है। इस दृष्टि से, पुरुषार्थ चार प्रमुख तत्वों- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-में विभाजित है। इनमें मोक्ष परम लक्ष्य है, जबकि शेष तीन उसके साधन रूप हैं।

4.3.3.1 धर्म: नैतिकता एवं सामाजिक व्यवस्था का आधार

धर्म को पुरुषार्थ चतुष्टय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, जो मानव जीवन को आदर्श, नैतिकता एवं सत्यनिष्ठा की ओर प्रेरित करता है। वेदों में वर्णित धर्म लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। मनु के अनुसार, धर्म की रक्षा करने वाला स्वयं धर्म द्वारा संरक्षित होता है।[510] याज्ञवल्क्य ने धर्म को वेद, स्मृति और श्रेष्ठ आचरण पर आधारित बताया है। [511] भारतीय परंपरा में धर्म केवल धार्मिक आस्थाओं तक सीमित नहीं, अपितु यह सामाजिक व्यवस्था एवं व्यक्तिगत कर्तव्यों का भी मार्गदर्शन करता है।

4.3.3.2 अर्थ: भौतिक समृद्धि का अनिवार्य तत्व

पुरुषार्थ का दूसरा प्रमुख आयाम 'अर्थ' है, जिसे केवल धनार्जन तक सीमित नहीं किया जा सकता। वात्स्यायन और शुक्रनीति के अनुसार, अर्थ में विद्या, भूमि, धन, एवं अन्य संसाधन सम्मिलित हैं।[512] महाभारत में कहा गया है कि अर्थ ही धर्म का आधार है, क्योंकि बिना साधनों के धार्मिक कर्तव्य निर्वहन

---

[510] मनुस्मृति 8/15

[511] याज्ञवल्क्य स्मृति 1/1/2

[512] वात्स्यायन, कामसूत्र 1/2/10

संभव नहीं।[513] कौटिल्य ने अर्थ को त्रिवर्ग का मूल माना, जबकि नारद के अनुसार समस्त लौकिक क्रियाएं अर्थ पर आधारित होती हैं।[514] मनु ने स्पष्ट किया कि अधर्म से अर्जित धन त्याज्य है एवं धर्मानुसार उपार्जित संपत्ति ही यथार्थ अर्थ है।[515]

4.3.3.3 काम: जीवन की इच्छाओं का संतुलन

'काम' शब्द व्यापक अर्थ में समस्त लौकिक इच्छाओं को समेटता है। यह केवल इंद्रिय-संतोष का प्रतिनिधित्व नहीं करता, अपितु मनोवैज्ञानिक एवं आत्मिक आनंद की अनुभूति को भी इंगित करता है। महाभारत में कहा गया है कि काम मानसिक संकल्प का परिणाम है और यदि यह अनुशासित न हो तो पतन का कारण बन सकता है।[516] गीता के अनुसार, विषयों के प्रति आसक्ति कामजनित विकारों को जन्म देती है।[517] कौटिल्य एवं मनु ने काम को धर्म एवं अर्थ के अधीन माना, ताकि यह सामाजिक और नैतिक मर्यादाओं के भीतर रहे।[518]

4.3.3.4 मोक्ष: परम पुरुषार्थ

पुरुषार्थों में मोक्ष परम लक्ष्य है, जो पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति का प्रतीक है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में इसे जीवन का चरम उद्देश्य माना गया है। उपनिषदों के अनुसार, आत्मज्ञान एवं वैराग्य मोक्ष की अनिवार्य शर्तें हैं।[519] गीता में कृष्ण ने मोक्ष को निष्काम कर्मयोग से संबद्ध किया है, जिससे व्यक्ति लौकिक बंधनों से मुक्त होकर आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करता है।[520]

---

[513] महाभारत, उद्योग पर्व 33/50
[514] नारद स्मृति 1/12
[515] मनुस्मृति 4/16
[516] महाभारत, शांतिपर्व 178/20
[517] श्रीमद्भगवद्गीता 2/62-63
[518] कौटिल्य, अर्थशास्त्र 1/3/13
[519] छांदोग्य उपनिषद 6/14/2
[520] श्रीमद्भगवद्गीता 3/19

इस प्रकार, पुरुषार्थ जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक संतुलन को स्थापित करने की प्रणाली है, जो व्यक्ति को संयमित एवं अनुशासित जीवन जीने हेतु प्रेरित करती है।

4.4 वैदिक और बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की समीक्षा

प्राचीन भारतीय इतिहास में वैदिकयोग और तत्पश्चात् बुद्धयुग अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इन कालखण्डों में इतिहास के अनेक तथ्य विद्यमान है जिनका अवलोकन करने से प्राचीन भारतीय सामाजिक, राजनैतिक, भौगोलिक और आर्थिक दशा का ज्ञान होता है। प्रस्तुत अध्याय के शीर्षकानुसार वैदिक आर्थिक व्यवस्था और बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की समीक्षा प्रतिपाद्य है। आर्थिक व्यवस्था में मुख्य रूप से कृषि-पशुलालन, व्यापार और वाणिज्य, उद्योग एवं श्रम, विनिमय प्रक्रिया, कर-महसूल व्यवस्था इत्यादि का समावेश होता है। तद्नुसार वैदिक और बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की समीक्षा निम्नवत प्रस्तुत है-

4.4.1 पशुपालन एवं कृषि

वैदिक सभ्यता के आरम्भ में आर्यों की कबीलाई जीवन वृत्ति दिखलायी पड़ती है। वैदिक जीवन के सन्दर्भ में डी.एऩ झा. का मत है कि "आर्य अर्धखानाबदोस और चरवाहे थे। वे संस्कृत बोलते थे और इन्द्र आदि देवताओं की पूजा करते थे।"[521] प्रारम्भ के आर्य अधिवासी सिन्धु और उसकी प्रमुख सहायक नदियों का प्रतिनिधित्व करने वाले सप्तसिन्धव-क्षेत्र अर्थात् सात नदियों के क्षेत्र पर अपना आधित्य स्थापित करने में संलग्न थे। इससे आर्यों के विभिन्न कबीलों में अक्सर लड़ाइयाँ छिड़ जाती थी। ऋग्वेद में आर्यों के जिस कबीलों के युद्धों का वर्णन है, उनमें सबसे प्रमुख दसराज (दस राजाओं का) युद्ध है। कहा जाता है कि सुदास भरत नामक कबीले का राजा था। यह कबीला पश्चिमी पंजाब में बस गया था। इसके मुख्य पुरोहित का नाम विश्वामित्र था, जिसकी

[521] झा.डी.एन., "*प्राचीन भारत एक रुपरेखा*", पृ. सं. 17

प्रेरणा से उसने विपास और शतुद्री को जीत लिया। बाद में सुदास ने विश्वामित्र को हटाकर वसिष्ठ को अपना पुरोहित नियुक्त किया, जिसे याजिकी विद्या की काफी अधिक जानकारी थी। उपेक्षित विश्वामित्र ने दस कबीलों को मिलाकर एक संघ बनाया, जिनमें से पाँच कबीलों का विशेष महत्त्व था और ऋग्वेद में पंचजन के रूप में जिनका बार-बार उल्लेख किया गया है। पुरूष्णी के तट पर युद्ध में सुदास को विजय मिली। सम्भव है कि वहां इस तरह के दूसरे कबीलाई युद्ध भी हुए हों, जिसकी हमें जानकारी नहीं है।[522]

डॉ. शिवस्वरूप सहाय ने प्राचीन भारतीय आर्थिक विकास के क्रम को निम्न सोपानों में बाँटकर उसकी और विशेषताओं का अध्ययन कर सकते है। इस प्रकार निर्देशित करते हुए उन सोपानों को निम्नवत विभाजित किया है- आखेट युग (पाषाण काल-आदिकाल), कांस्य प्रयोक्ता प्रथम शहरी सभ्यता (सैंधव सभ्यता का काल-2500 से 1500 ई.पू.), पशुचारण कृषक समाज (ऋग्वैदिक काल-1500 से 1000 ई.पू.),हल आधारित खेतिहर समाज (उत्तर वैदिक काल-1000 से 600 ई.पू.), द्वितीय शहरी सभ्यता विकासमान युग (बौद्ध काल-600 से 322 ई.पू.), राज्यनियंत्रित अर्थव्यवस्था काल (मौर्य युग 322 से 185 ई.पू.) ,विकसित व्यापारिक काल (मौर्योत्तर और कुषाण काल 202 ई.पू. से 300 ई.), वाह्य विकास और आर्थिक ह्यस का प्रारम्भ युग (गुप्त काल-300 ई.से 600 ई.), आर्थिक ह्यस युग (प्रारम्भिक मध्यकाल-600 से 1200 ई.)[523]

यहाँ प्राचीन भारतीय आर्थिक विकास के क्रम में ऋग्वैदिक काल को पशुचारन कृषक समाज और उत्तर वैदिक काल को हल आधारित खेतिहर समाज के रूप में बाँटा गया है। निश्चिय ही वैदिक काल में जीविका के साधन के रूप में पूर्वोक्त साधनों की प्रधानता थी। देवेन्द्र कुमार गुप्ता के अनुसार ''आर्यों की संस्कृति मूलतः ग्रामीण थी अतः कृषि एवं पशुपालन उनकी जीविका

---

[522] झा.डी.एन., "*प्राचीन भारत एक रुपरेखा*", पृ. सं. 19-20

[523] सहाय शिवस्वरूप, ''*प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास*'', पृ.सं.301

के प्रमुख साधन थे। लेकिन प्रारम्भ मे आर्यों ने कृषि की अपेक्षा पशुपालन को अधिक महत्त्व दिया।''[524] इससे स्पष्ट होता है कि ऋग्वैदिक काल में पशुपालन की प्रधानता थी, उत्तरवैदिक काल तक आते-आते आर्य कृषि भी करने लगे। यह भी विचारणीय है कि विद्वानों ने वैदिक काल को ग्रामीण सभ्यता कहा है किन्तु सैन्धव सभ्यता के अनुरूप बौद्ध काल को 'द्वितीय शहरी सभ्यता विकासमान'[525] युग कहा है।

पशुपालन के साथ-साथ कृषि भी ऋग्वैदिक आर्यों का मुख्य व्यवसाय था। श्रीराम गोयल अपने विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ इस पुस्तक में लिखते है कि ''ऋग्वैदिक आर्य मुख्यतः कृषक और पशुपालक थे।''[526] ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर पशुधन की वृद्धि के लिए देवताओं से प्रार्थनाएँ की गई है। ऋग्वेद के एक मंत्र के अनुसार गाय, घोड़े तथा अच्छे पुत्र धन-सम्पत्ति माने जाते थे। इससे सिद्ध होता है कि इस काल में लोगों की समृद्धि का अनुमान उनके पशुओं की संख्या के आधार पर किया जाता था। पालतू पशुओं में गाय का सबसे अधिक महत्त्व था। इसके महत्त्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि 'गविष्टि', 'गवेषण' तथा 'गव्यु' (गायों की खोज) जैसे शब्दों को युद्धों का पर्याय माना जाता था। चूँकि लोग बड़ी संख्या में गाय पालते थे इसलिए विभिन्न लोगों की गायों की पहचान के लिए उनके कानों तथा शरीर के अन्य अंगों पर चिन्ह अंकित कर दिये जाते थे। जिन गायों के कानों पर आठ चिन्ह बने होते थे वे 'अष्टकर्णी कहलाती थी। गायों की प्राप्ति के लिए बराबर देवताओं से प्रार्थनाएँ की जाती थी। पुत्री के लिए 'दुहितृ' शब्द से संकेत मिलता है कि दूध दूहने का कार्य घर में प्रायः पुत्रियाँ करती थी। गाय के दूध से दही, मक्खन तथा घी

---

[524] गुप्ता देवेन्द्र कुमार, *"प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था"*, पृ.सं.453

[525] सहाय शिवस्वरूप, ''प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास'', पृ.सं.301

[526] गोयल श्रीराम, "विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ" भाग 01, पृ.सं. 565

आदि बनाये जाते थे।[527] साधारण मनुष्य की नहीं वरन् राजा भी पशुधन की कामना करते थे। अथर्ववेद में एक स्थान पर राजा द्वारा गाय, बैल तथा घोड़ों की प्राप्ति के लिए इन्द्र से प्रार्थना करने का उल्लेख मिलता है।[528] साधारण मनुष्य ही नहीं वरन् राजा भी पशुधन की कामना करते थे। अथर्ववेद में एक स्थान पर राजा द्वारा गाय, बैल तथा घोड़ों की प्राप्ति के लिए इन्द्र से प्रार्थना करने का उल्लेख मिलता है। गाय इस काल में भी महत्त्व पूर्ण पशु थी। शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर स्पष्ट रूप से कहा गया है कि गाय और बैल पृथ्वी को धारण करते हैं अतएव उनका मांस नहीं खाना चाहिए। इस काल में भी गाय दक्षिणा की महत्त्व पूर्ण वस्तु समझी जाती थी। काल के परिवर्तन के साथ भौतिक उन्नयन की साक्ष्य भी प्राप्त होती है। वैदिक सभ्यता के अनन्तर बुद्ध काल तक मानव के आर्थिक जीवन में व्यापक उन्नयन की झलक स्पष्ट दिखाती है। त्रिपिटक के वर्णनों से इस पर प्रकाश पड़ता है। सुत्तनिपात में कहा गया है कि पशुओं का संरक्षण आवश्यक है क्योंकि वे लोगों को अन्त, बल, सौन्दर्य और सुख देते हैं। दीघनिकाय में पशुपालकों, कृषकों एवं व्यापारियों की सहायता करने पर बल दिया गया है। तथागत ने तो यहाँ तक कहा है कि माता-पिता तथा भाई आदि बन्धुओं की तरह पशु भी हमारे परम मित्र है। एक जातक कथा में मनुष्यों का जीवन पशुओं पर निर्भर बताया गया है। पशुओं के समूह को व्रज (वय), गोकुल अथवा संगिल्ल कहा गया है। एक व्रज में दस हजार गायें रहती थी। ग्राम्य पशुओं में गाय, भैंस, भेड़ तथा बकरी आदि की गणना की जाती थी। जिन्हें पेशेवर ग्वाले जंगल में चराते थे और वे ही जंगली जानवरों और चोरों से उनकी रक्षा करते थे। इनके अतिरिक्त हाथी, ऊँट, घोड़े, गधे तथा कुत्ते पालते थे। जंगली पशुओं में व्याघ्र, भैंसे, सिंह, भेड़िये, लकडबग्घे, भालू, चीता तथा गैंडा

---

[527] गुप्ता देवेन्द्र कुमार, *"प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था"*, पृ.सं.454

[528] अथर्ववेद, 4/22/2

आदि के उल्लेख मिलते हैं जो बहुत भयानक होते थे। परन्तु उनका उपयोग भी किसी न किसी रूप में नियन्त्रित करके किया जाता था।

डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार अपने प्राचीन भारत इस पुस्तक में ऋग्वैदिक आर्य समाज के सम्बन्ध में लिखते है कि "खेती उन लोगों का स्वाभाविक ही मुख्य उद्यम था। आज के किसानों की भाँति ही वे हल और बैलों की जोड़ियों की सहायता से खेत जोतते थे। सिंचाई एवं खेती-सम्बन्धी अन्य कार्य पिछले तीन-चार हजार वर्षों से आज तक ज्यों-के त्यों होते चले आ रहे है। परवर्ती सहिताओं में बड़े और चौबीस-चौबीस बैल भी जोते जाते थे। अभी लोग पशुचार की व्यवस्था में ही थे, फलतः गाय और बैल ही उनकी मुख्य सम्पत्ति थे। पशु-पालन की ओर स्वाभाविक रूप से अधिक ध्यान दिया जाता था और अनेक ऋचाओं में गाय को उपभोग के लिए 'इन्द्र-प्रदत्त सभी सुन्दर वस्तुओं का सार' कहा गया है। [529]"

ऋग्वैदिक काल से उत्तरवैदिक काल तक आते-आते पशुपालन के साथ-साथ कृषि भी आर्यों का प्रमुख उद्यम बन गया था। यद्यपि ऋग्वैदिक काल में अन्नों में केवल यव और धान्य का ही उल्लेख मिलता है परन्तु इन दोनों शब्दों के अर्थ में भी स्पष्ट नहीं है।[530] साधारणतया कृषक सिंचाई के लिए वर्षा पर निर्भर रहते थे। ऋग्वेद के एक मंत्र में

"या आपो दिव्या उत वा सर्वान्त खनित्रिमा उत वा या स्वयज्जाः।

समुद्रार्था यः शुचय पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।[531]"

जल के दो प्रकार बताये गये है- खनित्रिमा और स्वयंजा। खनित्रिमा वह जल होता था जिसे खोदकर प्राप्त किया जाता था जैसे कुएँ का जल। नदी, नालों एवं वर्षा के जल का स्वयंजा कहते थे। उत्तरवैदिक काल में सम्भवतः हल

---

[529] मजूमदार, रमेशचन्द्र, *''प्राचीन भारत''*, पृ.सं.32

[530] ऋग्वेद, 5/53/13 'तेन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं बहहवे अक्षितम्"

[531] वही, 7/49/2

तथा बैलों की सहायता से कृषि कर्म किया जाता था अथर्व वेद में पृथ्वीवैन्य को हल का अन्वेषक कहा गया है।[532] इस काल में ऐसे भारी हल भी प्रयोग में आने लगे थे जिन्हें छह, आठ या बारह बैल मिलकर खींचते थे।[533] पूर्वोक्त है कि ऋग्वेद में तो केवल दो ही अन्नों 'यव' और 'धान्य' का उल्लेख मिलता है, लेकिन इस काल में सभी प्रकार के अनाजों, दालों एवं तिलहनों का उत्पादन किया जाने लगा था। अथर्ववेद में पशुओं की प्राकृतिक खाद को अधिक मूल्यवान बताया गया है। कृषि सम्बन्धी आपदाओं जैसे अतिवृष्टि तथा विद्युत्पाद आदि से फसल को बचाने के लिए वे तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग करते थे।[534] इस काल में कृषकों ने सिंचाई के कृत्रिम साधनों की भी पर्याप्त व्यवस्था कर ली थी। ये लोग प्राकृतिक साधनों जैसे नदी, झील, झरना और वर्षा के अतिरिक्त कुओं, नहरों तथा जलाशयों जैसे कृत्रिम साधनों का प्रयोग सिंचाई के लिए करते थे।

उत्तरवैदिक का से बुद्धकाल तक आते-आते कृषि अत्यन्त समृद्ध व्यवसाय के रूप में स्थापित हो गया था। सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास, व्यवहारिक अनुभव एवं तकनीक के कारण बुद्ध-काल तक आते-आते कृषि को एक निश्चित रूप प्राप्त हो गया था। कृषि योग्य भूमि को कृषि कहा जाने लगा। जिसमें विभिन्न फसले उगाई जाती थी। कृषि के लिए अनुपयुक्त एवं अयोग्य भूमि को ऊसर कहा जाता था। पालि त्रिपिटक में कृषि कार्य जैसे- भू-कर्षण, बीज-वपन, सिंचाई, खेतों के चतुर्दिक सुरक्षार्थ बाड़ों का निर्माण, घास-फूस तथा मोथा, आदि को निराना, पक जाने पर फसलों को काँटकर तथा गट्ठरों में बाँधकर बैलगाड़ियों द्वारा खल्यभूमि, जिसे खल-मण्डल कहते थे, तक ले जाने तथा वहाँ

---

[532] अथर्ववेद, 8/10/24

[533] वही, 8/9/16

[534] वही, 7/11/1

पर भूसा और अन्न को अलग कर लेने के पश्चात् अनाज को अन्न कोठारों में भेजने के विस्तृत वर्णन प्राप्त होते है।

त्रिपिटक साहित्य में कृषि से सम्बन्धित अनेक महत्त्व पूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती है। जातक कथाओं तथा अन्य सुत्तों से कृषि की प्रमुख क्रियाओं से सम्बन्धित धार्मिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त कृषि उत्सवों तथा विभिन्न फसलों के लिये उपयुक्त ऋतुओं का वर्णन मिलता है। बुद्धकालीन कृषि उत्पादन में बाजरा, चना, मटर, मूगं, उडद, सालि, तण्डुल, ईख तथा नारियल इत्यादि की कृषि का उल्लेख प्राप्त है। कतिपय जातक कथाओं में गन्ने के खेतों के अनेक उल्लेख प्राप्त है। गन्ने के रस का भरपूर उपयोग किया जाता था। इससे गुड तथा शक्कर के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के मद्य बनाने का उल्लेख है।

मिर्च, अदरक, राई, लहसन तथा जीरा इत्यादि भी उत्पन्न किये जाते थे। आम, जम्बूफल, अंजीर, अंगूर, केला तथा खजूर इत्यादि अनेका-अनेक फल उत्पादन की भी सूचना प्राप्त होती है। त्रिपिटक के अनेक स्त्रात्रों से कपास की कृषि के प्रमाण मिलते है, किन्तु वैदिक साहित्य से इसके विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती परवर्ती सूत्र साहित्य में कपास का सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है। संयुक्त निकाय में "मेघराज से बार-बार वर्षा के लिये प्रार्थना की गई है[535]" इसके अतिरिक्त सिंचाई के लिये नदियों, नहरों, कुओं, पुष्करणियों तथा जलाशयों इत्यादि का प्रयोग किया जाता था। कुणाल जातक के अनुसार सिंचाई के लिये रोहिणी नदी के जल को लेकर कभी-कभी शाक्य एवं कोलिय गणराज्यों के बीच विवाद, झगड़े होने का उल्लेख प्राप्त है।[536] जातक कथाओं में घड़ों से पानी भरकर सिंचाई करने का उल्लेख मिलता है।

---

[535] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*संयुत्तनिकायपालि*", भाग 2, पृ.सं. 281

[536] अनु. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*जातक अट्ठकथा-षष्ठम भाग*" (कुणाल जातक), पृ.सं.180

4.4.2 उद्योग एवं व्यवसाय

पशुपालन युग के उपरान्त कृषि युग में आर्थिक विकास का स्वरूप विकसित हुआ। यह क्षेत्र आर्थिक विकास का विस्तृत क्षेत्र सिद्ध हुआ। इसमें छोटे-छोटे कारोबार उद्योग आदि का जन्म हुआ, जैसे-बढईगिरी, लुहारी, मिट्टी के बर्तन इत्यादि । कृषि युग के पश्चात् औद्योगिक क्रांति का युग आर्थिक विकास को समृद्ध बनाया। औद्योगिक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में अर्थिक परिवर्तन को बहुआयामी बना दिया।

समाज में व्यावसायिक स्वतंत्रता थी, जिससे व्यक्ति अपनी रुचि एवं क्षमता के अनुसार किसी भी कार्य का चयन कर सकता था। ऋग्वेद में एक श्लोक में उल्लेख है कि कोई व्यक्ति शिल्पकार हो सकता है, उसके पिता वैद्य और माता अनाज पीसने का कार्य कर सकती है।[537] ऋग्वेद में वस्त्रों के लिए प्रयुक्त 'वास', 'वस्त्र' और 'वसन' जैसे शब्दों का अभाव है, जिससे यह स्पष्ट नहीं है कि उस समय सूती वस्त्रों का उपयोग किया जाता था या नहीं। उत्तरवैदिक साहित्य में 'ऊर्णा' (ऊन) शब्द का बार-बार उल्लेख मिलता है, जो इंगित करता है कि ऊनी वस्त्र अधिक प्रचलित थे।[538] मिट्टी के बर्तन बनाने का व्यवसाय भी इस युग में महत्त्व पूर्ण था। शतपथ ब्राह्मण में 'कुलाल-चक्र' (कुम्हार का चाक) का उल्लेख मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि बर्तन निर्माण तकनीक उन्नत थी।[539] ऋग्वेद में सिन्धु नदी को 'हिरण्यमयी' कहा गया है, जो इंगित करता है कि वहाँ से सोना प्राप्त किया जाता था । चिकित्सा के क्षेत्र में 'भिषक' (वैद्य) की भूमिका उल्लेखनीय थी, किंतु समाज में इस व्यवसाय को अत्यधिक सम्मान नहीं प्राप्त था। तंत्र-मंत्र का उपयोग भी चिकित्सा में किया जाता था । यजुर्वेद एवं तैत्तिरीय संहिता में विभिन्न शिल्पों का उल्लेख मिलता

---

[537] ऋग्वेद 10/90/12

[538] शतपथ ब्राह्मण 1/1/2/3

[539] वही, 2/3/4/5

है, जिनमें सूत (बुनकर), कर्मार (धातुकर्मी), कोलाल (कुम्हार), इषुकार (धनुर्धर), गोपाल (गोपालक), तथा वणिक (व्यापारी) प्रमुख थे।[540]

उत्तरवैदिक काल में उद्योगों व्यवसायों का विस्तार हुआ और समाज आर्थिक दृष्टि से अधिक संगठित हुआ। व्यवसायों में विशेषज्ञता एवं वंशानुक्रम की अवधारणा विकसित हुई। इस युग के कुटीर उद्योग, धातु निर्माण, वस्त्र उद्योग, चिकित्सा, और शिल्प उद्योगों ने भारतीय समाज की आर्थिक नींव को सुदृढ़ किया और औद्योगिक प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त किया। छठी से चौथी शताब्दी ईसा पूर्व का काल उद्योगों के विकास की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण था। पालि त्रिपिटक में इस युग के उद्योगों का विस्तृत वर्णन मिलता है। जिनका यथातथ्य विवेचन पूर्ववर्ती अध्याय में किया गया है। काल के निरन्तर गतिशीलता से उत्तरोत्तर विकास स्पष्ट दिखलाई पड़ता है।

4.4.3 व्यापार और विनिमय प्रणाली

वैदिक वाङ्मय के साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में व्यापार प्रचलित था। मुद्राओं का पूर्णतः विकसित स्वरूप भले ही उस समय उपलब्ध न हो, लेकिन सोने और चाँदी जैसी धातुओं का उपयोग विनिमय में किया जाता था। ऋग्वेद में राजा भावव्यय द्वारा कक्षीवान को सौ निष्क (स्वर्ण मुद्राएँ) प्रदान करने का उल्लेख मिलता है।[541] इसके अतिरिक्त, ऋग्वेद में रुद्र को स्वर्ण निष्कों की माला पहनाने का उल्लेख भी मिलता है,[542] जिससे यह स्पष्ट होता है कि धातु मुद्राएँ उस काल में प्रचलित थीं। व्यापार और सैन्य अभियानों के लिए परिवहन महत्त्व पूर्ण भूमिका निभाता था। ऋग्वेद में बैलगाड़ियों, घोड़ों के रथों और गधों की गाड़ियों का उल्लेख मिलता है।[543] समुद्री व्यापार की दृष्टि

---

[540] तैत्तिरीय संहिता 4/3/10

[541] ऋग्वेद,1/126/2

[542] वही, 2/33/10

[543] वही, 3/53, 2/36, 8/61, 10/60

से, ऋग्वेद में सौ पतवारों से चलने वाली नौकाओं का वर्णन किया गया है,[544] जिससे यह संकेत मिलता है कि नौवहन कला विकसित थी। ऋग्वेद में वशिष्ठ और वरुण के समुद्र में नौका यात्रा करने का विवरण मिलता है।[545]

वैदिक काल की आर्थिक व्यवस्था में पशुपालन एवं कृषि, उद्योग एवं व्यवसाय, व्यापार और विनिमय प्रणाली का उत्तरोत्तर विकास ही हुआ है । इस काल से भारतवर्ष के भौतिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाला तत्वों के बीज दिखलाई देते है। जिसने बुद्धयुग तक आते आते सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संरचना को प्रभावित किया। प्राचीन भारतीय आर्थिक जीवन में समृद्धि का प्रमुख कारण कलानुरूप विकसित आर्थिक संसाधन और तकनीकी व्यापक रूप से उपयोग था।

[544] वही, 1/116/5

[545] वही, (7.78/3,4)

पञ्चम अध्याय
आधुनिक समाज को बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की देन

बौद्ध धर्म अपने स्थापना के काल से ही जन उन्नयन करता रहा। भगवान् बुद्ध के उपदेशों ने तत्कालीन भारतीय समाज को प्रभावित किया। भगवान् बुद्ध की विचारधारा में व्यक्ति और समाज का अभिन्न सम्बन्ध है और दोनों अपने विकास के लिये एक दूसरे से जुड़े हुए है। समाज की स्वयं में अपनी कोई सत्ता नहीं है; प्रत्युत मानव ही अपने तरह-तरह के प्रयासों से इसके विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। भगवान् बुद्ध के उपदेश न केवल व्यक्ति के आन्तरिक जीवन को प्रभावित करते है अपितु उसके व्यवहारिक जीवन को भी समृद्ध करते है। उनके उपदेशों में तत्कालीन समय के समाज जीवन के महत्त्व पूर्ण विधायी तथ्यों के साथ-साथ आर्थिक जीवन की झलक दिखलायी पड़ती है। उनके उपदेश तत्कालीन समाज आर्थिक जीवन को प्रभावित करते है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "संसार के अधिक भागों में सफलतापूर्वक प्रसार और अब भी मानव जाति के एक बड़े भाग को अपने द्वारा प्रभावित करते देखने से मालूम होता है कि बुद्ध अपने समय से स्वतंत्र विचारकों में सबसे अधिक शक्तिशाली थे।"[546]

प्रस्तुत अध्याय में भगवान् बुद्ध द्वारा आर्थिक समन्वयन के लिए उपदेशित विचारों को और उसके प्रभाव को प्रस्तुत किया गया है। समाज में व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता। वह सुख-दुःख और जीवन के अन्य अनुभव को अपने सामाजिक एवं आर्थिक सम्बन्धों के आधार पर जीता है। भगवान् बुद्ध के विचारों में सुखपूर्वक जीवन यापन करने पर बल दिया गया है। वस्तुतः बौद्ध दृष्टि में सम्यक् आजीविका का तात्पर्य परस्पर कल्याण की भावना और एक-दूसरे का

[546] सांकृत्यायन राहुल, "महामानव बुद्ध", पृ. सं. 153

दुःख-दर्द बाँटकर जीवन यापन करना है। बुद्ध विचारों की मान्यता है कि परस्पर कल्याण का कार्य करके ही हम समाज में उत्थान का कार्य कर सकते है। धम्मपद की एक गाथा में कहा है- *''अत्तानं उपमं कत्वा''*[547] अर्थात् सभी को अपने जैसा समझे। इन्हीं कल्याणकारी मूल्यों पर समाज में आर्थिक व्यवहार कैसे हो इस पर आधुनिक परिवेश के आलोक में बौद्ध आर्थिक व्यवस्था के सन्दर्भ में विचार किया गया है।

5.1 बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का परिचय

बौद्ध आर्थिक व्यवस्था एक आधुनिक अवधारणा है। पूर्ववर्ती अध्यायों में बुद्धकालीन आर्थिक व्यवस्था की यथातथ्य विवेचना प्रस्तुत की है। प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक परिवेश तथा बुद्ध के उपदेशों के साथ विश्लेषण करने का यत्न है। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का उद्देश्य एक मानक उद्यम के रूप में एक वैकल्पिक व्यवस्था निर्माण करना है, जो बौद्ध धर्म के मूल उद्देश्य का समर्थन करता है। मानवीय दुःखों से मुक्ति एवं जनकल्याण ही इसका मूल उद्देश्य है । इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, बौद्ध आर्थिक व्यवस्था पश्चिमी अर्थशास्त्र की मुख्य धारणाओं को चुनौती देता है। जबकि पश्चिमी आर्थिक व्यवस्था तर्कसंगत, स्वार्थी व्यवहार, अधिकतम लाभ, प्रतिस्पर्धी बाजार और पर्यावरण के शोषण पर आधारित है। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था में प्रतीत्यसमुत्पाद को अपनी नींव के रूप में स्वीकार करता है। 'इमस्मिं सति इदं भवति' कारण से कार्य की उत्पत्ति, जिसमें आश्रित उत्पत्ति का कार्य-कारण सिद्धान्त है। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का दृष्टिकोण व्यक्तियों को एक-दूसरे और पृथ्वी दोनों के साथ एक अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के रूप में देखता है। परोपकारिता को प्रोत्साहित करता है। पर्यावरण का संवर्धन एवं संरक्षण पर बल देता है। ब्राउन के अनुसार, संक्षेप में इसका लक्ष्य 'न्यूनतम कष्टों के साथ एक टिकाऊ दुनिया में साझा समृद्धि' है।

---

[547] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "धम्मपदं", पृ.स. 34

बौद्ध आर्थिक व्यवस्था बुद्ध धम्म के उच्चतम आदर्शों को विश्व भर के बौद्धों के सांसारिक जीवन से जोड़ता है। बुद्ध धम्म का सर्वोच्च आदर्श सभी संवेदनशील प्राणियों के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्र में कल्याण करना है। बौद्ध अर्थशास्त्र इन दो क्षेत्रों के मध्यम मार्ग के रूप में उपस्थापित है। Ernest C.H. Ng अपने पुस्तक 'Introduction to Buddhist Economics' (The Relevance of Buddhist Values in Contemporary Economy and Society) की भूमिका में बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की अवधारणा और उद्देश के सम्बन्ध में लिखते है "Buddhist Economics as an interdisciplinary subject at the fundamental level to audi ence with limited background in the field of either Buddhism or econom ics. It elaborates some core concepts in Buddhist teachings, their relevance to economy and society, and means of achieving sustainability for individuals, society and the environment through the cultivation of ethical living and well-being. It is also unique in its attempt to bridge traditional spiritual theories with contemporary applications, showcasing the great potential of the Buddhist and spirituality perspectives for reinventing economics and business practices".[548] बौद्ध अर्थशास्त्र एक व्यक्ति की पीड़ा को सभी लोगों की पीड़ा से जोड़ता है, और सामाजिक कल्याण प्रत्येक व्यक्ति और प्रकृति की भलाई पर निर्भर करता है।

5.1.1 आधुनिक बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की संकल्पना का उद्भव

बौद्ध आर्थिक व्यवस्था (Buddhist Economics) एक ऐसी अवधारणा है जो आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों के आधार पर आर्थिक नीतियों और व्यवहारों को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास करती है। इस संकल्पना को मुख्य रूप से जर्मन के अर्थशास्त्री ई. एफ. शूमकर (E. F. Schumacher) ने प्रस्तुत किया।

[548] Ernest C.H. Ng, "Introduction to Buddhist Economics", p. xxiii

ई. एफ. शूमकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Small is Beautiful: A Study of Economics as if People Mattered" (1973) में बौद्ध अर्थशास्त्र की अवधारणा को विस्तार से प्रस्तुत किया।[549] In his essay on Buddhist economics Mr. Schumacher looks to the Buddhist teaching of the Noble Eightfold Path to make his case. He affirms that the inclusion of the factor of Right Livelihood in the Eightfold Path, in other words the Buddhist way of life, indicates the necessity of a Buddhist economics.[550] उन्होंने यह विचार बौद्ध धर्म के सिद्धांतों से प्रेरित होकर विकसित किया, विशेष रूप से 'मध्यम मार्ग' (Middle Path) और 'संतोष' (Contentment) पर आधारित है । ई. एफ. शूमकर ने एक अर्थशास्त्री के रूप में सम्यक् विचार प्रस्तुत किया कि पारंपरिक आर्थिक व्यवस्थाएँ प्रायः केवल उपभोग, उत्पादन, और लाभ पर केंद्रित है। वे मानवीय मूल्यों, पर्यावरणीय स्थिरता, और सामाजिक कल्याण का विचार नहीं करती है।

5.1.2 आधुनिक बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की संकल्पना का विकास

ई. एफ. शूमकर ने भारत और एशिया के अन्य देश-विदेशों की यात्रा के दौरान बौद्ध धर्म के विचारों का गहराई से अध्ययन किया। उन्होंने महसूस किया कि पश्चिमी पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था, जो अनियंत्रित उपभोग और लाभ के केन्द्रित होकर भ्रमण करती है, प्रायः मानवीय मूल्यों और पर्यावरणीय स्थिरता को नहीं देखती। उन्होंने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को आर्थिक दृष्टिकोण में क्रियान्वयन करने का विचार सर्वप्रथम प्रस्तुत किया। जिसमें व्यक्तिगत और सामुदायिक कल्याण को सर्वोपरि माना गया है। इस प्रकार आधुनिक समय में बौद्ध आर्थिक व्यवस्था यह संकल्पना स्थापित की गयी। यह एक नवीन अवधारणा होने पर भी विश्व पटल पर अध्ययन का एवं मानवीय कल्याण के रूप में दिग्दर्शित हुई है।

---

[549] Phra Bhrahmagunabhorn (P.A. payutto), "Buddhist Economics" p. 1
[550] Ibid, p.2

5.2 आर्थिक विकास एवं बौद्ध सिद्धान्त

"किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चानं जीवितं।"[551] अर्थात् लोक में मानव जीवन की प्राप्ति अत्यधिक दुर्लभ है। मानव जीवन की प्राप्ति होने पर भी सुखी व निरोगी जीवन की प्राप्ति सर्वाधिक दुर्लभ होती है। मानव जीवन की सच्चाई यह है कि यह जीवन दुःखमय है। मानव जीवन में सर्वत्र दुःख विद्यमान है। मानव जीवन केवल समस्याओं का घर प्रतीत होता है। जीवन में कुछ ऐसी समस्याएँ होती हैं, जो व्यक्ति के जीवन में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होतीं हैं। इन स्वाभाविक समस्याओं को टाला नहीं जा सकता है। व्यक्ति के जीवन में जरा, एवं व्याधि के रूप में अत्याज्य समस्याएँ होतीं हैं। मानव जीवन में कुछ ऐसी भी समस्याएँ होतीं हैं, जो व्यक्ति स्वयं उत्पन्न करता है, तथा उन समस्याओं को बुलावा देकर व्यक्ति अपने जीवन को पहले की अपेक्षा और अधिक कष्टमय, एवं पीड़ादायक बना लेता है। "मुझे गाली दी, मुझे मारा, मुझे हराया, मुझे लूट लिया जो ऐसी बातें सोचते रहते है, उनका वैर कभी शान्त नहीं होता।"[552] मानव जीवन में अधिकतर समस्याओं की उत्पत्ति व्यक्ति की बुरी व निन्दनीय प्रवृत्तियों के कारण होती है। व्यक्ति अपनी बुरी व पापमय प्रवृत्तियों के कारण निरन्तर कुशल व प्रशंसित कर्मों से कोसों दूर चला जाता है, और वह अपने आपको केवल बुरे कमों के सम्पादन में फंसाकर रखता है। अतिशय निन्दनीय, एवं पापकर्मों के कारण व्यक्ति के जीवन में दुःखों, एवं कष्टों के काले बादल मंडराने लगते हैं। तब वह अपनी अकुशल मानसिकता के कारण न केवल स्वयं के लिए समस्याएँ उत्पन्न करता है, बल्कि समाज के अन्य व्यक्तियों, एवं प्राणिमात्र के लिए दुःखों व समस्याओं को भी उत्पन्न करता है। धम्मपद के मलवग्ग से ज्ञातव्य है कि "लोहे से उत्पन्न मोर्चा लोहे से पैदा होकर लोहे को ही खा डालता है । उसी प्रकार अति चंचल के अपने ही कर्म उसे दुर्गति को ले

---

[551] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "धम्मपदं" पृ.सं. 45

[552] वही, पृ.सं. 1

जाता है।"[553] जीवन में उत्पन्न एक समस्या दूसरी समस्या को जन्म देती है, फिर इसी क्रम में बढ़ते-बढ़ते व्यक्ति का जीवन केवल समस्याओं के जंजालों से परिपूर्ण हो जाता है। व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है। व्यक्ति के जीवन में उसकी स्वयं की व्यक्तिगत समस्याएँ अत्यधिक महत्त्व पूर्ण, एवं पीड़ादायक होतीं हैं। जीवन में विद्यमान व्यक्तिगत समस्याएँ सर्वाधिक जटिल, और गम्भीर होतीं हैं, जो अन्य तमाम समस्याओं की उत्पत्ति का हेतु होतीं हैं। व्यक्तिगत समस्याओं के कारण मानव जीवन में पारिवारिक समस्याएँ, सामाजिक समस्याएँ, राजनीतिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ, राष्ट्रीय समस्याएँ, एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ उत्पन्न होतीं हैं। इन्हीं तमाम समस्याओं के आविर्भाव के कारण मानव जीवन में सुख की झलक देख पाना या अनुभव कर पाना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव सा हो जाता है। व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याएँ इतना विकराल रूप धारण कर लेतीं हैं, जिससे अन्य अनेक लोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो जाते हैं। आधुनिक भौतिकतावादी युग में मानव जीवन में सुख-शान्ति निवास नहीं करती है, बल्कि सर्वत्र समस्याएँ ही रहतीं हैं। जीवन में समस्याओं की बाहुल्यता के कारण व्यक्ति का जीवन नीरस, निरर्थक, एवं उद्देश्यहीन सा जान पड़ता है। मानव जीवन में विद्यमान कुछ महत्त्व पूर्ण व जटिल समस्याओं को व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक-आर्थिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के रूप में देख जा सकता है। आर्थिक जीवन के उन्नयन एवं उनसे सम्बन्धित समस्याओं के निदान में बौद्ध सिद्धांन्तों की विवेचना निम्नवत प्रस्तुत है-

5.2.1 मध्यम मार्ग (Middle Path)

अत्यधिक उपभोग और पूर्ण त्याग के बीच मध्यमार्ग का अनुसरण एक स्थायी आर्थिक विकास के प्रतिमान का आधार बन सकता है। सम्बोधि लाभ के

---

[553] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"धम्मपदं"*, पृ.सं. 59

पश्चात् भगवान् बुद्ध ने विभिन्न क्षेत्र में चारिका करते हुए जो कुछ उपदेश दिये वह त्रिपिटक में संगृहित है। बुद्ध उपदेशों में सबसे महत्त्व पूर्ण सिद्धान्त,चार आर्य सत्य और मध्यम मार्ग *"चत्तारि अरियसच्चानि"*[554] अपना एक विशेष स्थान रखता है। इसी के ज्ञान के प्रवर्तन उपरान्त वे लोक में सम्यक् सम्बुद्ध के नाम से ख्यात हुए। बोधिसत्व सिद्धार्थ गोतम ने गृहत्याग करने से पूर्व जीवन में अनुभूत नाना प्रकार के दुःखों को जो देखा था, उसी का निदान उन्हें बोधि ज्ञान के प्राप्ति पश्चात् प्राप्त हुआ। विनय पिटक के महावग्ग से ज्ञातव्य है कि भगवान् बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को इन्हीं चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया था। वस्तुतः यह बुद्ध के जीवन का प्रथम धर्मोपदेश था। जिसे पालि त्रिपिटक साहित्य में *'धम्मचक्कपवत्तनं'*[555] कहा जाता है। जो महत्ता की दृष्टि से भी सर्वाधिक महत्त्व पूर्ण कहा जा सकता है। भगवान् बुद्ध अपने प्रथम उपदेश में जिन सत्यों को उद्घटित किया उसके चार विभाग किए गए हैं अत: इन्हें 'चार आर्य सत्य' कहा जाता है। वह चार आर्य सत्य है यथा; दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध तथा दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य ।[556]

भगवान् बुद्ध के वचनों में इन चारों आर्य सत्यों की व्याख्या संक्षेप में निम्न प्रकारेण की जा सकती है -

दुःख आर्य सत्य- भगवान् बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा- *"इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्ख अरियसच्चं जाति पि दुक्खा जरा पि दुक्खा, व्याधि पि दुक्खो, मरणम्पि दुक्खं, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं संखित्तेन पञ्च उपादानक्खन्धा दुक्खा*[557]*"* अर्थात् जन्म लेना दुःखकारक है, वृद्धावस्था भी दुःख है, रोग भी दुःख है, मृत्यु भी दुःख है, अप्रिय वस्तुओं या व्यक्तियों का मिलना भी दुःख है, प्रिय वस्तुओं या

---

[554] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"पालि-हिन्दी कोश"*, पृ.सं. 37
[555] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"महावग्गपालि"*, पृ.सं. 18
[556] वही, पृ.सं. 19
[557] वही, पृ.सं. 18

व्यक्तियों का बिछुड़ना भी दुःख है, जिस वस्तु की इच्छा हो उसका न मिलना भी दुःख है और संक्षेप में कहा जाय तो पञ्चस्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) से निर्मित सत्त्व का जीवन ही दुःख है। सब वस्तुओं या परिस्थितियों के मूल में जो यह 'दुःख' विद्यमान है, वह वस्तुतः है क्या? इसके उत्तर में भगवान् बुद्ध ने कहा है- *'पटिकूलवेदना ति दुक्खं' या 'दुक्करेन खमति इति दुक्खं'।* दूसरे शब्दों में, प्रतिकूल वेदना ही दुःख है या फिर जिसका दुष्करता या कठिनाई से वहन किया जाए वही दुःख है।

दुःख समुदय आर्य सत्य- भगवान् बुद्ध ने द्वितीय आर्य सत्य के स्पष्टीकरण में कहा- *"इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दिरागसहगता तत्र तत्राभिनन्दिनी सेय्यमिद-कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा।"*[558] अर्थात् यह जो विविध तृष्णा या इच्छा है यही सभी प्रकार के दुःखों की जड़ है। यहाँ कामतृष्णा से तात्पर्य है, हमारी छः इन्द्रियों से सम्बन्धित सुख भोगने की इच्छा, भवतृष्णा से तात्पर्य है इस संसार में बारम्बार पुनर्जन्म लेते रहने की इच्छा एवं विभवतृष्णा से तात्पर्य है जन्म पुनर्जन्म लेने की प्रक्रिया से मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा। इन्हीं तीन प्रकार की तृष्णाओं से प्रेरित होकर व्यक्ति विभिन्न प्रकार के कुशल अकुशल कार्य करता है तथा नानाविध दुःखों को भोगता है।

द्वितीय आर्य सत्य के सम्बन्ध में हम कह सकते है कि भगवान् बुद्ध ने मनुष्य के दुखों का कारण तृष्णा को बतलाया। वह तृष्णा जो हमारे स्वयं की होती है।

अनेकजातिसंसारं सन्धाविसं अनिब्बिसं।
गहकाराकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं।।
गहकारक! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।

---

[558] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"महावग्गपालि"*, पृ.सं. 18

सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखितं।

विसंङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा।।[559]

अर्थात् गृहकारक को ढूंढते हुए मैं अनेक जन्मों तक लगातार संसार में मैं दौड़ता रहा। बार बार जन्म लेना दुःख है। गृहकारक! तू दिखाई दे गया। अब फिर घर नहीं बन सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गयी। घर का शिखर बिखर गया।चित्त संस्कार रहित हो गया। तृष्णाओं का क्षय हो गया। बुद्ध अनीश्वरवादी थे। उन्होंने किसी भी ऐसी ईश्वर जैसी सत्ता को मानने से इन्कार कर दिया जो कि अजर, अमर, अविनाशी हो और सृष्टि का सृजन करता है। ऐसा मानने के चलते बुद्ध ने दुःख को अकारण या ईश्वर जैसी किसी भी अलौकिक सत्ता द्वारा प्रदत्त नहीं माना। भगवान् बुद्ध ने कहा है कि

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो पयो सिया।

अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं।।[560]

अर्थात् मनुष्य अपना स्वामी आप है, दूसरा और कौन स्वामी हो सकता है? अपने को दमन करने वाला दुर्लभ स्वामित्व को प्राप्त करता है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि दुःख होने के पीछे कोई-न-कोई कारण होता है और वह कारण है 'तृष्णा' जो तीन प्रकार की होती है-कामतृष्णा, भवतृष्णा एवं विभवतृष्णा। वह तृष्णा भी किन्ही दूसरों के कारन नहीं अपितु हमारे कारण होती है।

दुःखनिरोध आर्य सत्य- तृतीय आर्यसत्य में बुद्ध ने स्पष्ट किया कि *"इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं यो तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधो चागो पटिनिस्सग्गो मुत्ति अनालयो।* [561]"दुःख निरोध आर्यसत्य पर प्रकाश डालते हुए बुद्ध कहते हैं चूँकि दुःख कारण उद्भूत है, अतः इन कारणों को दूर करना भी

---

[559] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"धम्मपदं"*, पृ.सं. 38

[560] वही, पृ.सं. 40

[561] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"महावग्गपालि"*, पृ.सं. 19

सम्भव है। इन तृष्णाओं को दूर करने से ही दुःख को रोका जा सकता है। तृष्णाएँ जितनी ही कम होंगी, दुःख की मात्रा भी उतनी ही कम होगी। इस क्रम में तृष्णाओं के बिल्कुल समाप्त हो जाने की स्थिति में दुःख भी बिल्कुल ही समाप्त हो जाएगा। दुःखों के स्थायी रूप से समाप्त हो जाने को अवस्था को ही निर्वाण की अवस्था कहते हैं।

भगवान् बुद्ध ने इस बात पर बल देकर कहा कि दुःख का विनाश उसके कारणों के विनाश से ही सम्भव है। अतः वे जब तृष्णा के समूल नाश, उस पर रोक, उसका त्याग, उससे मुक्ति आदि की बात करते हैं तो उनका स्पष्ट निर्देश दुःख से सर्वथा मुक्ति अर्थात् निर्वाण की ओर होता है। इस प्रकार तृतीय आर्य सत्य में दुःख निरोध की सम्भावना पर प्रकाश डाला गया है।

दुःखनिरोधगामिनीप्रतिपदा आर्यसत्य- यदि दुःख के कारणों की उत्पत्ति एवं उनका विनाश सम्भव है, तो उसके लिए कोई न कोई उपाय या मार्ग अवश्य होना चाहिए और यही मार्ग 'दुःखनिरोधगामिनीपटिपदा' (मार्ग) कहलाता है। इसे 'मध्यममार्ग' भी कहा गया है, क्योंकि यह 'कामेसुकामसुखल्लिकानुयोग' (अर्थात् सांसारिक सुखों में अत्यधिक लिप्त रहना) एवं 'अत्तकिलमथानुयोग' (आत्मशुद्धि के नाम पर शरीर को अत्यधिक कष्ट देना) जैसे दो अतियों या अन्तों का त्याग कर मध्य का मार्ग है। इसमें आठ चरण या अंग हैं, जिनके चलते इसे 'आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग भी कहा जाता है। ये आठ अंग हैं-सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि ।' इन आठ अंगों तीन भागों मे विभाजित कर भी संक्षिप्त किया जाता है यथा; प्रज्ञा, शील तथा समाधि के। इसके अनुसार प्रज्ञा के अन्तर्गत सम्यक् दृष्टि तथा सम्यक् संकल्प आते हैं। शील के अन्तर्गत सम्यक् वचन,सम्यक् कर्मान्त तथा सम्यक् आजीव एवं समाधि के अन्तर्गत सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि।

इन आठों अंगों को संक्षिप्त रूप में विवेचन निम्न प्रकार से है-

सम्यक् दृष्टि- 'दृष्टि' का अर्थ है ज्ञान है। सत्कार्य के लिए ज्ञान की भित्ति आवश्यक होती है। आचार और विचार का परस्पर सम्बन्ध नितान्त घनिष्ट होआ है। विचार की भित्ति पर आचार खड़ा होता है। इसलिए इस आचार मार्ग में सम्यक् दृष्टि पहला अंग है।[562] "सम्यक् दृष्टि का शीर्ष स्थान है, क्योंकि सम्यक् दृष्टि से विशोधित शील और समाधि इष्ट है।[563]" सम्यक् दृष्टि का अर्थ है कि वस्तु को उसके यथार्थ रूप में देखें अर्थात् यह अच्छी तरह समझें कि वस्तु अनित्य, दुःख तथा अनात्म है। इन त्रिलक्षणों की दृष्टि से देखने पर किसी भी वस्तु में राग या तृष्णा उत्पन्न नहीं होती और पहले से होने पर भी वह समाप्त हो जाती है।

सम्यक् संकल्प- यदि हमारी दृष्टि सम्यक् है, तभी हम अपने द्वारा लिये जाने वाले संकल्प को सम्यक् कह सकते हैं। सम्यक् रूप से लिये गए संकल्प से हम अपने लिए कुशल व कल्याणकारी कार्य करने की दिशा में दृढ़ता से बढ़ सकते हैं। "सम्यक् ज्ञान होने पर ही सम्यक् निश्चय होता है। निश्चय किन बातों का ? निष्कामना का, अद्रोह का तथा अहिंसा का। कामना ही समग्र दुःखों की उत्पादिका है। अतः प्रत्येक पुरुष को इन बातों का दृढ़ संकल्प करना चाहिए की वह कामना न करेगा, प्राणियों से द्रोह न करेगा और किसी जीव की हिंसा न करेगा। [564]"

सम्यक् वाचा (वचन)- सम्यक् वचन का अर्थ है मिथ्यावचन से विरत रहकर उचित तथा मधुर वचन बोलना। झूठ बोलना, चुगली करना, कठोर वचन बोलना तथा व्यर्थ की बकवास करना-ये चार प्रकार के मिथ्या व निन्दनीय वचन कहे

---

[562] उपाध्याय, बलदेव, *"बौद्ध-दर्शन-मीमांसा"*, पृ.सं. 54

[563] आचार्य नरेन्द्रदेव, *"बौद्धधर्म-दर्शन"*, पृ.सं. 22

[564] उपाध्याय, बलदेव, *"बौद्ध-दर्शन-मीमांसा"*, पृ.सं.55

गए हैं। "मृषावाद, पैशुन्य, परुषता, सम्प्रलाप इनसे विरति सम्यग्वाक् है।[565]" अतः सत्य बोलना, परनिन्दा न करना, मृदुवचन बोलना तथा आवश्यकतानुसार उचित बोलना ही सम्यक् वचन है।

सम्यक् कर्मान्त - हिंसा, चोरी, व्यभिचार इत्यादि अकुशल कर्मों से विरत रहकर कुशल कर्म करना ही सम्यक् कर्मान्त कहलाता है। "यह हिंसा, द्वेष और दुराचरण का त्याग तथा सत्कर्मों का आचरण है।"[566]

सम्यक् आजीव- अन्य बातों के साथ-साथ भगवान् बुद्ध ने आजीविका के साधनों की पवित्रता पर भी बहुत बल दिया। अपनी जीविका के लिए दूसरों के समक्ष झूठ मूठ ही अलौकिक शक्ति का दावा या प्रदर्शन करना, किसी भी स्त्री-पुरुष का संवाद अन्य स्त्री-पुरुष के पास पहुँचाना, अपनी या किसी अन्य की बीमारी का बहाना कर भोजन पाना इत्यादि भिक्षुओं के लिए मिथ्या आजीव माने गए है। शस्त्रों-व्यापार, पशु-व्यापार, मांस-व्यापार, मद्य-व्यापार एवं विष-व्यापार आदि का व्यापार इत्यादि गृहस्थों के लिए मिथ्या आजीव माने गए।[567] इन सबों से विरत रह कर उचित ढंग से जीविका चलाना ही सम्यक् आजीव है।

सम्यक् व्यायाम - इन्द्रियों पर संयम करना तथा मन में उठने वाली उत्पन्न हो चुकी बुरी भावनाओं को समाप्त करना, अच्छी भावनाओं को उत्पन्न करने का प्रयास करना, अभी तक उत्पन्न नहीं हुई बुरी भावना को उत्पन्न होने से रोकना एवं अभी तक उत्पन्न हो चुकी अच्छी भावना को बढ़ाने एवं सशक्त करने का प्रयत्न करना यही सम्यक् व्यायाम है।[568]

सम्यक् स्मृति- स्मृति का सामान्य अर्थ होता है-स्मरण करना। पालि त्रिपिटक में इसका प्रयोग अधिक व्यापक है। महासतिपट्ठान सुत्त में कहा गया है "भिक्षुओं! यह चार स्मृति-प्रस्थान है, वह सत्त्वों के शोक कष्ट की विशुद्धि के लिए,

---

[565] पाण्डेय, गोविन्द चन्द, "*बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास*", पृ.सं. 93

[566] शर्मा, चन्द्रधर, "*भारतीय दर्शन*", पृ.सं. 49

[567] मेधंकर, भदन्त सावंगी, "*पालि वाङ्मय में बोधिसत्व सिद्धान्त*", पृ.सं. 129

[568] उपाध्याय, बलदेव, "*बौद्ध-दर्शन-मीमांसा*", पृ.सं. 57

दुःख=दौर्मनस्य के अतिक्रमण कर लिए न्याय की प्राप्ति के लिए निर्वाण की प्राप्ति और साक्षात् करने के लिए, एकायन मार्ग है।"[569] यहाँ स्मृति का अर्थ है मानसिक जागरुकता। यह मन रूपी द्वार पर स्थित सतत जागरुक द्वारपाल की भाँति है जो अवाञ्छित धर्मों को मन में प्रवेश करने से रोकती है तथा वाच्छित धर्मों को ही वहाँ प्रवेश करने देती है काया, वेदना, चित्त और मन के धर्मों की ठीक ठीक स्थितियों अर्थात् उनके मलिन होने, क्षणभंगुरता आदि का सतत ध्यान रखना सम्यक् स्मृति है।

सम्यक् समाधि- *"कुसलचित्तस्स एकग्गता समाधि"*[570] अर्थात् कुशल चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। अलोभ, अद्वेष तथा अमोह-ये तीन कुशल मूल हैं। इनसे सम्प्रयुक्त चित्त या कर्म को ही कुशल चित्त या कुशल कर्म कहते हैं। इन्द्रियों के यत्र-तत्र भटकाव को रोककर चित्त को किसी एक विषय पर एकाग्र करना ही समाधि या सम्यक् समाधि है।

प्रो. जगन्नाथ उपाध्याय के अनुसार "जीवन के तथ्य ये चार सत्य या यथार्थ हैं। इस यथार्थ को देखना होगा और यह धरातल है। भगवान् बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग का, वही मध्यम मार्ग है। इस मध्यम मार्ग के द्वारा जब व्यक्ति व्यवहार में जाएगा, तो उसके सामाजिक व्यवहार, धार्मिक व्यवहार, पारिवारिक व्यवहार की दिशा क्या होगी? उसकी दिशा होगी-काम सुखल्लिका का विरोध। काम सुखल्लिका विलासिता की दृष्टि है, विलास और भोग करने की जो आकांक्षा है मन के अन्दर या समाज में वह नहीं रहनी चाहिए। किन्तु जीवन में विलासिता नहीं रहनी चाहिए, तो जो कष्ट और दरिद्रता है वह भी नहीं रहनी चाहिए। भगवान् बुद्ध के शब्दों में क्लमथ भी नहीं रहना घाहिए। इस प्रकार जितनी बुरी है गरीबी, उतनी ही बुरी है अमीरी। गरीबी और भोग-विलास दोनों

---

[569] सांकृत्यायन, राहुल, *"बुद्धचर्या"*, पृ.सं. 157

[570] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"विसुद्धिमग्गपालि"*, पृ.सं. 129

ही समान रूप से मनुष्य को यथार्थ से हटाते हैं।"[571] इस प्रकार बौद्ध आर्थिक व्यवस्था के सिद्धान्त में मध्यम मार्ग का सिद्धान्त उपयुक्त है।

5.2.2 त्रिलक्षण

यह भी बौद्ध धर्म का महत्त्व पूर्ण सिद्धान्त है । जिसमे मुख्यत: अनित्य, दु:ख, अनात्म को प्रतिपादित किया गया हैं । महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार "अनित्य, दु:ख, अनात्म इस एक सूत्र में बुद्ध के सारे दर्शन आ जाते है।"[572] भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त जीवन मूल्यों की बात तो करता हैं लेकिन वह अपने आप में सभी मानवों को सृष्टि के समीप लाकर एक आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान करता हैं । मानवीय जीवन की कठिनाईया इसलिए भी बढ़ गयी है क्योंकि हम निरन्तरता से साधनो मे विकास को बढाया न कि मूल्यों को । जीवन में उन मूल्यों कि सबसे ज्यादा आवश्यकता होती हैं जो हमे प्रज्ञावान बनाए । बिना प्रज्ञा के हमारा ज्ञान वैसे ही जैसे बिना पहियों के गाड़ी । त्रिलक्षण सिद्धांत उसी प्रज्ञा को अग्रसारित करता है जो मानव को अपने अन्तः जगत और बाह्य जगत के प्रति सचेत करता हैं ।

सब्बे सङखारा अनिच्चा ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दन्ति दुक्खे, एसमग्गो विसुद्धिया ।।[573]

सभी संस्कार अनित्य हैं - जब आदमी इस बात को प्रज्ञा से देखता है, तभी उसे संसार से विराग होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है ।

सब्बे सङखारा दुक्खा ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दन्ति दुक्खे, एसमग्गो विसुद्धिया ।।[574]

---

[571] उपाध्याय, जगन्नाथ, "*भगवान् बुद्ध, बौद्ध धर्म और उनका दर्शन*", पृ.सं. 49
[572] सांकृत्यायन, राहुल, "*महामानव बुद्ध*", पृ.सं. 97
[573] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*धम्मपदं*", पृ.सं. 65
[574] वही, पृ.सं. 66

सभी संस्कार दु:ख हैं – जब आदमी इस बात को प्रज्ञा से देखता है, तभी उसे संसार से विराग होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है ।

सब्बे धम्मा अनत्ता ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।

अथ निब्बिन्दन्ति दुक्खे, एसमग्गो विसुद्धिया ।।[575]

सभी धर्म(पदार्थ) अनात्म हैं – जब आदमी इस बात को प्रज्ञा से देखता है, तभी उसे संसार से विराग होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है ।

5.2.3 ब्रह्मविहार

ब्रह्मविहार आर्थिक नीति में भी महत्त्व पूर्ण भूमिका निभा सकती हैं, जिससे गरीबी, भूख और सामाजिक भेदभाव को समाप्त करने की दिशा में काम किया जा सकता है । वर्तमान में विभिन्न आर्थिक समस्याओं के निदान के रूप में ब्रह्मविहार का विश्लेषण निम्नवत प्रस्तुत है-

ब्रह्मविहार दो शब्दों के योग से बना है; यथा- ब्रह्म+विहार। ब्रह्म शब्द का अर्थ श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम पुद्गल होता है। विहार का तात्पर्य पवित्र एवं निष्पाप जीवन-शैली होता है। जो पुद्गल निरन्तर सत्य मार्ग का अनुशीलन करके समस्त सत्त्वों का हित-कल्याण करता हुआ निर्वाणाभिमुख होकर धर्माचरणयुक्त पवित्र, निष्पाप एवं परिशुद्ध जीवन जीता है, तो उस पुद्गल के निवास करने को ब्रह्मविहार कहा जाता है। आर्य पुद्गल पवित्र एवं परिशुद्ध जीवन जीते है, वे धीरे-धीरे कुशल कर्मों निरन्तर सम्यक् अभ्यास से अपने चित्त को कुशल, निर्मल बना लेते है। इस प्रकार के इस निर्दोष एवं पापरहित को ब्रह्मविहार कहते है। आर्य पुद्गलों की जीवन-शैली सम्यक् व्यवहार से परिपूर्ण होने के कारण भी ब्रह्मविहार कहलाती है। *"विहरन्ति एतेही'ति विहारा, ब्रह्मानो विहारा ब्रह्मविहारा।"*[576] अर्थात् जिन मैत्री, करुणा आदि धर्मों द्वारा सत्पुरुष विहरण

---

[575] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*धम्मपदं*", पृ.सं. 66

[576] त्रिपाठी, रामशङ्कर, "*अभिधम्मत्थसङ्गहो* "दुतियो भागो, पृ .सं. 884

करते है, उन्हें ब्रह्मविहार कहते है। ब्रह्मविहार की विस्तृत परिभाषा देते हुए आचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि *"सेट्ठट्ठेन ताव निद्दोसभावेन चत्थ ब्रह्मविहारता वेदितब्बा। सत्तेसु सम्मापटिपत्तिभावेन हि सेट्ठा एते विहारा। यथा च ब्रह्मानो निद्दोसचित्ता विहरन्ति, एवं एतेहि सम्पयुत्तायोगिनो ब्रह्मासमा हुत्त्वा विहरन्ती'ति सेट्ठट्ठेन निद्दोसभावेन च ब्रह्मविहारा'ति वुच्चन्ति।"*[577] अर्थात् श्रेष्ठ होने से, निर्दोष होने से उनका ब्रह्मविहार होना जानना चाहिए। क्योंकि सत्वों के प्रति सम्यक् प्रतिपत्ति रूप होने से ये विहार श्रेष्ठ हैं। एवं जैसे ब्रह्मा निर्दोष चित्त से साधना करते हैं; वैसे ही इनसे युक्त योगी ब्रह्मा के समान होकर साधना करते हैं। अतः श्रेष्ठ होने से, निर्दोष होने से ब्रह्मविहार कही जाती है।

ब्रह्मविहार-भावना चित्त को निर्मल, पवित्र, एवं क्लेशरहित बनाने का महत्त्व पूर्ण साधन है, जिसके निरन्तर सम्यक् अनुशीलन से सत्व के चित्त में परिशुद्धता, एवं सादगी का आविर्भाव होता है। यह भावना परहित का साधन है। इसीलिए ब्रह्मविहार-भावना का अभ्यास दूसरे सत्वों को आलम्बन बनाकर की जाती है। इस लोक में विभिन्न प्रकार के सत्व विद्यमान हैं, जिनमें अधिकतर दुःखी, एवं परेशान हैं, कुछ सुखी एवं सम्पन्न हैं, जिसके के कारण इन सत्वों के प्रति की जाने वाली ब्रह्मविहार-भावना के उपायों में भी विभिन्नता आ जाती है। साधक कुछ सत्वों को देखकर उनके हित-सुख की कामना करता है; कुछ दुःखी एवं परेशान सत्वों को देखकर उनके दुःख के विनाश हेतु प्रयास करता है, या कामना करता है; कुछ सुखी एवं सम्पन्न सत्वों को देखकर उनके प्रति चित्त में प्रसन्नता की भावना प्रादुर्भूत करता है, और कुछ सत्वों के प्रति समभाव रखते हुए सम्यक् व्यवहार करता है। इस प्रकार से आलम्बनों की विविधता के

---

[577] *"विसुद्धिमग्गो" दुतियो भागो पृ.187*

आधार पर ब्रह्मविहार-भावना को चार उपायों (साधन) के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, जो "मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा"[578] हैं।

बुद्धकालीन समाज में भगवान् बुद्ध द्वारा उपदेशित शिक्षा से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन भारतवर्ष में सुख-शान्ति, एवं आर्थिक सम्पन्नता को प्राप्त करने के लिए वास्तुकला, चित्रकला, मूर्तिकला, कृषि, व्यापार, एवं कुटीर उद्योग इत्यादि में ब्रह्मविहार के चार उपायों (साधन) के रूप में प्रयुक्त करने की शिक्षा दी जाती थी। वर्तमान समस्याओं के निदान स्वरुप इसका अवलम्बन करने पर यह अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकती है।

5.2.4 शील एवं सन्तोष

गृहस्थ या भिक्षु की भी कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकार की सत् क्रियाएँ शील के अन्तर्गत आती है। कायिक-वाचिक संवर, इन्द्रिय संवर, भोजन में मात्रज्ञता एवामी आजीव विशुद्धि के लिए शील अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। शील बौद्ध-नैतिकता की आधारशिला है। शील नहीं तो कुछ भी सिद्ध नहीं होता है। बीना शील के प्रज्ञा भी नहीं उत्पन्न होती है। भगवान् ने सात धनों को बतलाया है। अङ्गुत्तर निकाय से ज्ञातव्य है कि *"सद्धा धनं सील धनं हिरिओत्तप्पियं धनं, सुत्त धनं चागं च पञ्ञा वे सत्तमं धनं"*[579] अर्थात् श्रद्धा, शील, भय एवं लज्जा, श्रुति, त्याग तथा प्रज्ञा ये सात धन है। पाँच सम्पदाओं का भी उल्लेख है; यथा- ज्ञाति, भोग, आरोग्य, शील एवं दृष्टि सम्पदा। तीन मूल धर्मों में शील, समाधि एवं प्रज्ञा में शील का अनिवार्य रूप से अग्रस्थान है। शील के बिना गृहस्थ या उपासक धम्म के किसी गुण का अधिकारी नहीं हो सकता।

शील चार प्रकार का है- चेतना शील, चेतसिक शील, संवर शील और व्यतिक्रम शील।[580] प्राणी हिंसा आदि से विरति की भावना चेतना शील है तथा

---

[578] शाक्य ज्ञानादित्य, बौद्ध धर्म-दर्शन में ब्रह्मविहार- भावना, पृ.सं. 78

[579] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं.194

[580] भिक्खु जगदीसकस्सपो, *"पटिसम्भिदामग्गपालि"*, पृ. 49

उनसे विरति यह चेतसिक शील है। संवर शील भी पाँच प्रकार का है; यथा- पतिमोक्ख संवरो अर्थात् प्रतिमोक्ष संवर, सति संवरो अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियों का संवर, ञाण संवरो अर्थात् प्रत्ययों के प्रति सेवन का संवर, खन्ति संवरो अर्थात् शीत-उष्णादि की सहनशीलता और विरिय संवरो अर्थात् उत्पन्न काम वितर्क को चित्त में प्रश्रय न देना।

पाप भीरू के लिए प्राप्त वस्तुओं में विरक्ति सर्वांश में संवर शील है। स्वीकृति शील सदाचार के कायिक, वाचिक एवं मानसिक अनतिक्रम को अव्यतिक्रम शील कहते है। अङ्गुत्तर निकाय में काय, वचन एवं मन की पवित्रता को शील कहा गया है। विसुद्धिमग्ग से ज्ञातव्य है कि अनुशीलन, कायिक कर्मों की एकाग्रता, सुशीलता अर्थात् उनमें चंचलता का विखराव न होने देना ही शील कहा गया है। शील दो प्रकार का होता है; यथा- वारित्र शील एवं चारित्र शील।[581]

वारित्र शील : वारित्र शील का अर्थ है- सभी प्राणियों के प्रति दयालु चित्त होना, स्वप्न में भी प्राणियों का अहित का चिन्तन न करना। स्वयं परोपकार में निरत रहना, कभी भी किसी को किसी भी प्रकार से न सताना और प्रव्रजित होने पर ब्रह्मचर्य का पालन करना। काय वाक् मन के गरहित से विरत रहना। यदि अप्रव्रजित हो तो कभी भी परस्त्री को पाप दृष्टि से नहीं देखना, सत्य, हितकारी, प्रिय एवं मितभाषी होना और कालानुसार धर्म कार्य करना। संक्षेप में यहीं का वारित्र शील है।

चारित्र शील : कल्याण मित्रों को उनके सम्मान योग्य स्थान पर रखकर उनका अभिवादन, सेवा सुश्रुषा एवं समय समय पर अञ्जलि बद्ध प्रमाण करना चरित्र धर्म है। योगियों की सेवा, सुभाषित सुनकर साधुकार देना, गुणवानों का गुणगान्, अपकारी को प्रति भी सहनशीलता, उपकारी का स्मरण, पुण्य का अनुमोदन और

---

[581] मेधंकर, भदन्त सावंगी, *"पालि वाङ्मय में बोधिसत्व सिद्धान्त"*, पृ.सं. 173

निजार्चित पुण्य का सम्यक् सम्बोधि के लिए समर्पण, कुशल धर्मों में निरंतर अप्रमत्तता, अपराध कर्म में अपराध देखकर उसकी वास्तविकता अपने सह धर्मियों को बताना और सम्यक् आचरण तथा अपने अनुरूप प्राणियों के स्वभाव को परिवर्तित करने में दक्षता यह सब चारित्र धर्म है। राग, द्वेष, मोह सभी प्रकार की बुराइयों के मूल हैं। शिक्षा पद इनसे मुक्ति दिलाते हैं।

अहिंसा

बौद्ध धर्म अहिंसा पर बल देता है, जो न केवल शारीरिक हिंसा को रोकने में सहायक है, बल्कि आर्थिक शोषण, पर्यावरणीय क्षति और सामाजिक असमानता के खिलाफ भी प्रेरित करता है। तथागत बुद्ध ने अपनी शिक्षा में शील का उपदेश दिया है। ब्रम्हजाल सुत्त में 'आरम्भिक शील, मध्यम शील एवं महाशील' की चर्चा प्राप्त है।[582] तथागत ने पाणातिपात से विरत रहने की शिक्षा दी हैं । तथागत बुद्ध द्वारा उपदेशित पंचशील मे प्रथम शील यही हैं । जिसके अनुसार मनुष्य ने किसी भी प्राणी की हत्या नहीं करना चाहिए , उन्हे नुकसान नहीं पहुचना चाहिए या दु:ख देने का कारण नहीं बनना चाहिए ।

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो ।

अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये । ।[583]

अर्थात्- सभी दण्ड से डरते हैं, सभी को मृत्यु से भय लगता है । इसलिए सभी को अपने जैसा समझ न किसी को मारे, न मरवाये ।

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं ।

अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये । ।[584]

अर्थात्- सभी दण्ड से डरते हैं, सभी को जीवन प्रिय हैं । इसलिए सभी को अपने जैसा समझ न किसी को मारे, न मरवाये ।

---

[582] सांकृत्यायन, राहुल, "*बुद्धचर्या*", पृ.सं. 652

[583] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*धम्मपदं*", पृ.स. 33

[584] वही,

तथागत बुद्ध द्वारा उपदेशित गाथाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अन्य प्राणिमात्राओं को अपने जैसा समझ कर उनकी रक्षा करे न कि उनको नष्ट करे । बल्कि यह विचार करना चाहिए कि जैसे मुझे दु:ख होता हैं वैसे अन्य प्राणिमात्राओं को भी होता हैं। इसलिए उन्हे अपने स्थान पर रख कर हिंसा से विरत होना चाहिए ।

संतोष (Contentment)

पालि त्रिपिटक में 'सन्तुट्ठी' शब्द का प्रयोग अनेकत्र दिखलाई देता है। अङ्गुत्तरनिकाय निकाय के 'सन्तुट्ठीसुत्त' से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को चार निश्रयों के उपयोग में संतुष्ट रहने का उपदेश दिया। भगवान् बुद्ध के अनुसार तृष्णा नदी के सामान है। जीवन में यदि संतुष्टि का अभ्यास न किया जाये तो तृष्णारूपी नदी सदैव प्रवाहमान ही रहती है। धम्मपद से ज्ञातव्य है कि *"आरोग्य परमा लाभा, सन्तुट्ठीपरमं धनं। विस्सासापरमा ञाति निब्बाणं परमं सुखं।।"* [585] अर्थात् निरोग रहना परम लाभ है, संतुष्ट रहना परम धन, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है और निर्वाण सबसे बड़ा सुख। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भगवान् बुद्ध की देशना में 'सन्तुट्ठीपरमं धनं' से धनार्जन में अथवा अपने जीवन के भौतिक पक्ष में संतुष्ट रहने को प्रधानता दी है। अपने जीवन में यदि हम इनका पालन करे तो भौतिकवाद के बजाय संतोष और आत्मसंयम के मूल्य से आर्थिक संसाधनों के सतत उपयोग और संतुलित वितरण को बढ़ावा दे सकते है।

5.2.5 प्रतीत्यसमुत्पाद

प्रतीत्यसमुत्पाद भगवान् बुद्ध द्वारा उपदेशित एक महत्त्व पूर्ण सिद्धांत है, जिसे सामान्यतः "प्रत्यक्ष कारणता" या "आश्रयजन्य उत्पत्ति" कहा जाता है। आचार्य नरेन्द्रदेव का कथन है कि "यह हेतु-प्रत्ययता का वाद है। इसके होने

---

[585] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, *"धम्मपदं"*, पृ.स. 50

पर, इस हेतु, इस प्रत्यय से; वह होता है। इसके उत्पाद से, उसका उत्पाद होता है। इसके न होने पर वह नहीं होता; इसके निरोध से वह निरुद्ध होता है; यह हेतु-फल-परम्परा है।[586] इसका अर्थ है कि सभी घटनाएँ एक-दूसरे पर निर्भर होकर उत्पन्न होती हैं- कोई भी वस्तु या घटना स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में नहीं होती। सभी घटनाएँ और परिस्थितियाँ एक-दूसरे पर निर्भर होती हैं। किसी भी चीज़ का अस्तित्व स्वतंत्र रूप से नहीं होता, बल्कि वह अन्य कारकों के कारण उत्पन्न होती है। यह विचार कर्म (Cause and Effect) और परस्पर निर्भरता (Interdependence) को समझाने में सहायक होता है।

पालि इसे "पटिच्चसमुप्पादो"[587] कहा जाता है। पटिच्च अर्थात् आश्रित होना, निर्भर होना एवं समुप्पाद अर्थात् उत्पन्न होना, प्रकट होना। इसका तात्पर्य है कि कोई भी वस्तु या घटना किसी अन्य वस्तु या घटना पर निर्भर होकर उत्पन्न होती है। इसे बौद्ध धर्म में "निरंतर परिवर्तन" और "अनात्मवाद" के सिद्धांत से जोड़ा जाता है। 'बारह निदान अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति तथा जरामरण। इन निदानों कार्य-कारण की दृष्टि से वर्गीकरण; यथा- पूर्व का कारण और वर्तमान का कार्य, वर्तमान का कारण और भविष्य का कार्य तथा भविष्य का कार्य।'[588]

प्रतीत्यसमुत्पाद से यह ज्ञात होता है कि कोई भी समस्या अपने आप में स्वतंत्र नहीं होती, बल्कि वह अन्य कई कारकों से जुड़ी होती है। यदि हम जड़ों तक पहुँचें और सही दृष्टिकोण अपनाएँ, तो समस्याओं का स्थायी समाधान संभव है। इस दृष्टिकोण को अपनाकर व्यक्तिगत, सामाजिक और वैश्विक स्तर पर सकारात्मक परिवर्तन लाया जा सकता हैं।

---

[586] आचार्य नरेन्द्रदेव, "*बौद्धधर्म-दर्शन*", पृ.सं. 224

[587] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*महावग्गपालि*", पृ.सं. 3

[588] उपाध्याय, बलदेव, "बौद्ध-दर्शन-मीमांसा", पृ.सं. 65

बौद्ध आर्थिक व्यवस्था स्वरुप बौद्ध सिद्धान्तों का परिपालन व्यक्तिगत आर्थिक परिवेश तथा व्यापार-उद्योगों में किया जाये तो वैश्विक स्तर पर प्रादुर्भूत पर्यावरण संकट, सामाजिक, मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ, राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक असमानता, तस्करी की समस्या एवं काला धन की समस्या इत्यादि जैसी आर्थिक समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है।

5.3 आर्थिक समन्वय एवं बुद्धोपदेश

भगवान् बुद्ध के उपदेशों में मानवीय जीवन के समुचित विकास के लिए आवश्यक तत्त्व विद्यमान है। भगवान् बुद्ध के उपदेश जीवन में आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नति के उत्कर्ष में अत्यन्त सहायक है। बुद्धोपदेशों में मानव जीवन में आचरण सम्बन्धित गुण-दोष की विवेचना है। बुद्ध वचनों में पारिवारिक जीवन का सुख-दुःख, आचरण, व्यवहार एवं आपसी सम्बन्धो की चर्चा है। अपने परिवार तथा समाज के उत्थान के लिए गृहस्थों ने किस प्रकार का आचरण एवं व्यवहार करना चाहिए, उसकी विवेचना निम्नवत प्रस्तुत है-

5.3.1 गृहपति का जीवन

भगवान् बुद्ध के उपदेशों में बुद्धयुगीन समाज के पारिवारिक जीवन और गृहस्थ के जीवन की विस्तृत चर्चा की गई है। शास्ता ने अनेक स्थानों पर यह उपदेश दिया है कि जिसका व्यवहार मृदु एवं सहज होगा, उसका पारिवारिक व सामाजिक जीवन भी उतना ही सुखद एवं समृद्धशाली होगा। परिवार और समाज में एकता तभी आती है जब पारिवारिक जन एवं आत्मीय जनों में परस्पर विश्वास और समर्पण की भावना काम करने लगती है। गृहस्वामी का यह कर्त्तव्य था वह पारिवारिक सदस्यों के प्रति एक सा व्यवहार करे और सभी के भरण-पोषण के दायित्व का निर्वाह करे। खुद्दकपाठ में आगत मङ्गलसुत्त से ज्ञातव्य है-

''मातापितु उपट्ठानं, पुत्तदारस्स सङ्गहो।

अनाकुला च कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं''।।[589]

अर्थात् माता-पिता की सेवा करना, पुत्र-स्त्री (परिवार) और आकुल-उद्विग्न न करने वाला (निष्पाप) व्यवसाय करना उत्तम मङ्गल है।

बौद्ध विचार में व्यक्ति अपने परिवार के प्रति जिस सीमा तक अनुरक्त होता है, वह उसके दायित्व एवं कर्त्तव्य की परिधि में आने वाली वस्तु है; पर समाज को भी व्यक्ति से उस व्यवहार की अपेक्षा होती है, जो सहज और अपने सम्पूर्ण परिवेश में कल्याण की भावना से ओतप्रोत हो। भगवान् बुद्ध ने अपने अधिकांश उपदेशों मे भिक्षुओं को ही सम्बोधित किया है। इस क्रम में धर्म प्रचार में गतिरोध को दूर करने एवं जन-जन में प्रिय बनने हेतु उन्होंने बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की अवधारणा से अभिप्रेरित हो अपनी धर्म देशना ऐसे लोगों के लिए भी की, जो जन अपने घर-परिवार नहीं छोड़ सकते थे। अर्थात् जो गृहस्थ थे। गृहस्थ जो पारिवारिक जीवन व्यतीत करता है सभी सांसारिक भोगों के साधनों से सम्पन्न होता है। कुछ धनी गृहपतियों के पास अतुलनीय सम्पत्ति और भोगों के रूप में विशाल भूखण्ड तथा दास-दासियों की बड़ी जमात रहती है। सुन्दर स्त्रियों के साहचर्य के अतिरिक्त उसके पास उपभोग के सभी साधन उपलब्ध होने से वह इच्छानुसार आनन्द का जीवन व्यतीत करता है। पाणिनि के अनुसार गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने वाले व्यक्ति के लिये प्राचीन व्यतीत करता है। पाणिनि के अनुसार गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने वाले व्यक्ति के लिये प्राचीन संज्ञा गृहपति थी।[590] गृहस्थ जीवन की एक आचार संहिता थी जिसका अनुपालन सभी के लिए आवश्यक था।

प्रव्रजित संन्यासी या गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे किसी भी व्यक्ति के लिए माता-पिता की आज्ञा के अनुसार कोई कार्य करना अनिवार्य था। बौद्ध संघ

---

[589] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"खुद्दकपाठपालि"*, पृ.सं.6

[590] अग्रवाल, वासुदेव शरण, *"पाणिनिकालीन भारतवर्ष"*, पृ.सं.

में माता-पिता की आज्ञा के बिना प्रव्रजित होने की अनुमति नहीं थी। यदि कोई व्यक्ति माता-पिता की आज्ञा लिये बिना प्रव्रजित होने की अपनी इच्छा व्यक्त करता था तो उसे यह अधिकार नहीं था। बुद्ध स्वयं माता-पिता की आज्ञा को प्रव्रजित होने के लिए आवश्यक मानते थे और आज्ञा प्राप्त व्यक्ति को ही संघ में प्रवेश की अनुज्ञा प्रदान करते थे। महावग्गपालि से ज्ञातव्य है कि *"न भिक्खवे अननुञ्ञातो मातापितूहि पुत्तों पब्बाजेतब्बो।"*[591] पारिवारिक जीवन में माता-पिता क्रमशः गृहपति या गृहस्वामिनी का सम्मान पाते थे। पिता अपने पुत्र का हर तरह से कल्याण चाहता था और उसे पुत्र से इस बात की अपेक्षा रहती थी कि वह भी वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हुए वंश की वृद्धि करे। प्रत्येक पिता की यह कामना थी कि उसका पुत्र उनके और पितामह के धन का एकमात्र स्वामी बनकर उसका उपभोग करे और गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए पुण्य का कार्य करता रहे।

त्रिपिटक में गहपति की परिभाषा यह है अपने पारिवारिक जीवन में सभी भौतिक संसाधनों का प्रबन्ध करके, उनके उपभोग की इच्छा करे, बुद्धिमत्ता का परिचय दे, सभी शिल्पों में पारंगत हो, घरेलू काम काज को सम्पन्न करने का अभिलाषी हो और जो काम हाथ में हो उसे पूरा कर ही छोड़े, यही गृहस्थ जीवन की सच्ची उपयोगिता है।

त्रिपिटक साहित्य में विभिन्न स्थानों पर गृहस्थ के कर्त्तव्यों की चर्चा की गई है। अङ्गुत्तरनिकाय से ध्यातव्य *"इध गहपति अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि अत्तानं सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति। मातापितरो सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति। पुत्तदारदासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति सम्मा*

[591] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"महावग्गपालि"*, पृ.सं. 131

सुखं परिहरति। मित्तामच्चे सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति। [592]"अर्थात् गृहपति ! वह आर्यश्रावक वीर्य से सम्पन्न (अधिगत) होनेवाले, बाहुबल से प्राप्त होने वाले, पसीना बहाने से वह वीर्य से, बाहुबल से, कठोर परिश्रम द्वारा पसीना बहाने से अधिगत होने वाले कामभोगों से स्वयं को सुखी करता है, माता पिता को सुखी रखता है, अपने मित्र एवं साथियों को, पुत्र पत्नी एवं नौकर चाकरों को सुखी रखता है। अङ्गुत्तरनिकायनिकाय के पुत्त सुत्त से ज्ञातव्य है कि "भिक्षुओ ! इन पाँच कारणों से माता पिता अपने कुल में पुत्र उत्पन्न हुआ देखना चाहते हैं। कौन से पाँच ? यथा- बुढ़ापे में हमारा भरण-पोषण करेगा; हमारे अधूरे (अवशिष्ट) कार्यों को पूर्ण करेगा; हमारी कुलपरम्परा चलती रहेगी; हमारा उत्तराधिकार अक्षुण्ण रहेगा; हमारे देहपात के बाद, मरणानन्तर भी हमारी चलायी दानक्रियाओं को चलाता रहेगा। भिक्षुओ! ये पाँच कारण हैं, जिनको देखकर, सभी माता पिता अपने कुल में पुत्र उत्पन्न हुआ देखना चाहते हैं।"[593] "पाँच कारणों से बुद्धिमान् लोग अपने कुल में पुत्रोत्पत्ति देखना चाहते हैं- यथा- समर्थ होने पर यह हमारा भरण-पोषण करेगा; हमारे अधूरे कार्यों को पूर्ण करेगा, हमारी कुलपरम्परा बनी रहेगी; हमारा अधिकार अक्षुण्ण रहेगा तथा यह हमारे देहपात के बाद भी हमारी दानक्रियाओं को चलाता रहेगा इन पाँच कारणों को देखते हुए बुद्धिमान् लोग अपने कुल में पुत्र की कामना करते हैं। अतः कृतज्ञ एवं कृतवेदी सत्पुरुष माता पिता के पूर्वकृत उपकारों को स्मरण करते हुए उनके द्वारा चलायी गयी कुल-परम्परा को आगे बढ़ाते रहते हैं। "वे पुत्र उन (माता पिता) के आज्ञाकारी होते हैं, कुल की मर्यादा का त्याग नहीं करते। श्रद्धा एवं शील से सम्पन्न पुरुष ही लोक में प्रशंसा पाता है।"[594] ऐसे पुत्र के होने से माता-पिता, पुत्र-स्त्री, नौकर-चाकर मित्र-शुभेच्छु सभी के काम सिद्ध होते है और

---

[592] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"* भाग 2, पृ.सं. 93

[593] वही, पृ.सं. 396

[594] वही, पृ.सं. 397

ऐसे पुत्र उनका हितैषी बनकर उन्हें तरह-तरह से सुख प्रदान करते है। गृहस्थ जीवन में जो व्यक्ति अपने पुरूषार्थ से समृद्धि का अर्जन करता है वह उत्तम चावल और अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यजनों के साथ भोजन करता है और पूर्ण संतुष्टि का अनुभव करते हुए सुखपूर्वक विहार करके आनन्द के साथ जीवन जीता है। गृहपति या उसके पुत्रों को उपभोग के सभी साधन उपलब्ध होने से सुसज्जित शय्या पर सोने और तरह-तरह के सांसारिक सुखों को प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

5.3.1.1 गृहस्थ और उपासक में अन्तर

सामान्य गृहस्थ और उपासक में यह अन्तर है कि वह बुद्धोपदिष्टत धर्म के अनुसार आचारण करता है। महानाम शाक्य के प्रश्न करने पर भगवान बुद्ध ने किसे उपासक कहा जाता है बतलाया *"यतो खो महानाम, बुद्धं सरणं गतो होति, धम्मं सरणं गतो होति, सङ्घं सरणं गतो होति; एतावत्ता खो, उपासको होती ति।"*[595] महानाम! जो बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण में आता जाता है, इस कारण वह उपासक कहलाता है। उसके उपरान्त उपासक का कर्त्तव्य बताते हुए कहा कि उपासक का दायित्व है कि वह स्वयं प्रज्ञा, शील, समाधि, त्याग आदि भावनाओं को धारण करे तथा दूसरों को भी धारण कराए। उपासक को आत्महित तथा परहित दोनों में रत रहना चाहिए। प्राणातिपात से विरत रहते हुए सर्वोत्तम दर्शन, श्रवण, लाभ, शिक्षा परिचार्य और अनुश्रुति का अभ्यास करें। अनित्य संज्ञा का, अनित्य के प्रति दुःखसंज्ञा का व विरोध संज्ञा का अभ्यास करे। इस अभ्यास के द्वारा राग, द्वेष मोह, मान, क्रोध, मत्सर आदि दोष परिक्षीण हो जाते है।[596]

---

[595] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अङ्गुत्तरनिकायपालि"* भाग 3, पृ.सं. 407

[596] वही,

बौद्ध भिक्षु के लिए दिया गया उपदेश तो गृहस्थों के लिए लाभकारी हो सकता है, परन्तु गृहस्थों हेतु कुछ विशेष बातों की तार्किक व्याख्या की गई, जिनका वर्णन पालि साहित्य में मिलता है। गृहस्थों को ही पालि त्रिपिटक साहित्य में उपासक[597] अभिहित करते है। भगवान् बुद्ध के प्रथम उपासक होने का गौरव वाराणसी के ''यश'' नामक गृहपति को मिलता है। "*सो व लोके पठमं उपासको अहोसि तेवाचिको।*"[598] यश को भगवान् बुद्ध ने दान, शील, स्वर्गकथा, कामवासनाओं का दुष्परिणाम, निष्कामना का महात्म्य तथा चार आर्य सत्य का उपदेश किया था।[599] मज्झिमनिकाय में गहापति वग्ग का उल्लेख प्राप्त होता है। जिसे यह सिद्ध होता है कि भगवान् ने गृहपतियों को उनके आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के लिए उपदेश दिये थे। तत्कालीन समाज में कृषि एवं पशुपालन मुख्य रूप से समृद्धि का कारण दिखलायी पड़ता है। बुद्धकालीन समाज में व्याप्त कर्मकाण्ड से इसके बृहद रूप से हानि होने के सन्दर्भ है। इसलिए भगवान् बुद्ध ने यज्ञ व बलिकर्म का विरूद्ध किया था। दीघनिकाय के कूटदन्त सुत्त से ज्ञातव्य है कि उस समय कूटदन्त ब्राह्मण एक महायज्ञ करने जा रहा था, जिसके लिए बहुत अधिक संख्या में बैल, बछडे, बकरियाँ तथा अन्य पशु यज्ञ स्थूण पर बलि के लिए लाये गये थे। इसलिए भगवान् ने कहा अश्वमेघ, वाजपेय्य, पुरूषमेध आदि महारम्भी यज्ञों का फल महाफलदायी नहीं होता क्योंकि इनमें गायों, बकरी-भेड़ों आदि पशुओं की घनघोर हिंसा होती है तथा इन यज्ञों में सम्यग् मार्गगामी महर्षिजन नहीं जाते है।[600]

व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलु समाज के पारस्पारिक सम्बन्ध पर निर्भय होते है। उसकी जीविका, व्यापार-वाणिज्य, खान-पान, उत्सव और संस्कृति यह समाज के अन्तर्गत आती है। यह सर्वविदित है कि व्यक्ति के बिना

---

[597] कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, "*पालि-हिन्दी कोश*", पृ.स.72
[598] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*महावग्गपालि*", पृ.सं. 31
[599] सांकृत्यायन, राहुल, "*बुद्धचर्य्या*", पृ. स. 60
[600] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*दीघनिकायपालि*", भाग 1, पृ.सं. 137

समाज और समाज के बिना व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। त्रिपिटक में व्यक्ति को समाज के प्रति किस प्रकार का व्यवहार और आचरण करना चाहिए इसका निर्देशन दिया गया है। त्रिपिटक में समाज और व्यक्ति के आपसी सम्बन्धों को कई रूपों में दिखलाया गया है। उनके अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है के सामाजिक सम्बन्धों के निर्वाह में व्यक्ति को सिद्धान्तवादी से अधिक व्यवहारवादी होना आवश्यक है। भगवान् बुद्ध न केवल सिद्धान्तों की बात करते है, उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का पालन करने का उपदेश देते है। उनकी मान्यता अनुसार कोरे सिद्वान्तों को लेकर समाज का कल्याण नहीं किया जा सकता।

5.3.2 गृहस्थ जीवन के लिए कल्याणकारी आर्य विनय

मज्झिमनिकाय के पोतलिय सुत्त से ज्ञातव्य है कि व्यवहार-समुच्छेद पर गृहपति का भगवान् से संवाद हुआ था। "गृहपति ! तुम्हारा भी इस समय वही रूप है, वही वेशभूषा है, वही छाता आदि चिह्न है, जो किसी गृहपति के हुआ करते हैं।" "भो गौतम! (क्या आप नहीं जानते कि) मैंने (अपने गृहस्थ धर्म के) सभी कर्म-व्यवहार या तो पूर्ण कर लिये हैं या उन्हें त्याग दिया है।" "गृहपति! कैसे तुमने अपने सभी कर्म-व्यवहार पूर्ण कर लिये हैं या त्याग दिये हैं?" "भो गोतम! यहाँ मेरे पास जो कुछ भी धन धान्य था, चाँदी-सोना था, वह सब कुछ मैंने अपने पुत्रों को उत्तराधिकार के रूप में सौंप दिया। अब मेरा उस गृहस्थी में कोई हस्तक्षेप नहीं है। मेरा केवल खाने पीने, ओढ़ने पहनने भर से सम्बन्ध रह गया है। भो गौतम! इस तरह मैंने अपने सभी कर्म-व्यवहार या तो पूर्ण कर लिये या फिर त्याग दिये हैं।" "गृहपति ! तुम अपने गृहस्थ-त्याग की बात जैसे सिद्ध कर रहे हो, हमारे आर्यविनय में वैसी मान्यता नहीं है।"[601]

[601] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"मज्झिमनिकायपालि"*, भाग 2, पृ.सं. 499

"भन्ते! आपके आर्यविनय में यह व्यवहारसमुच्छेद किस प्रकार बताया गया है? अच्छा हो, भन्ते! यदि आप मुझे वैसा उपदेश करें, जिससे मैं भी आर्यविनय में बताये व्यवहारसमुच्छेद को भलीभाँति जान सकूँ।" तत्पश्चात् भगवान् ने आर्यविनय के अनुसार व्यवहारसमुच्छेद निम्नवत स्पष्ट किये। यथा- आर्यविनय में ये आठ बातें 'व्यवहारसमुच्छेद' के रूप में बतायी गयी हैं। कौन सी आठ? (१) अप्राणातिपात (अहिंसा) का सहारा लेकर प्राणातिपात से (२) दत्तादान का सहारा लेकर अदत्तादान (चौरी) से (३) सत्यवाद का सहारा लेकर असत्य (झूठ) से (४) अपैशुन्य (चुगली न करना) का सहारा लेकर पैशुन्य (चुगली) से (५) अगार्ध्य (निर्लोभ) का सहारा लेकर गार्ध्य (लाभ) से (६) अनिन्दा एवं अकोप का सहारा लेकर निन्दा एवं कोप से (७) अक्रोध का सहारा लेकर क्रोध से और (८) अनभिमान (नम्रता) का सहरा लेकर अभिमान से दूर रहना चाहिये। गृहपति! ये आठ बातें, जिनके विषय में अभी हमने तुमको संक्षेप में ही बताया, अधिक विस्तार नहीं किया, आर्यविनय में 'व्यवहारसमुच्छेद' के रूप में कही गयी हैं।"[602] इस प्रकार आर्य विनय में ये आठ प्रकार के व्यवहार ऐसे है, जिनका उच्छेद गृहस्थजीवन के लिये कल्याणकारी होता है।

5.3.3 आर्थिक समन्वयक के लिए बुद्धोपदेश

गृहस्थ जीवन में अपने वैभव की वृद्धि सभी चाहते हैं, पर जो आर्यश्रावक हैं, वे ही आर्य धम्म और विनय का अनुसरण करते हुए अपनी सारदायिनी एवं वरदायिनी वृद्धि को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। अङ्गुत्तरनिकाय निकाय के वृड्ढिसुत्त से ज्ञातव्य है कि ये वृद्धियाँ दस प्रकार की होती हैं। ये दस वृद्धियाँ क्रमशः कृषि योग्य भूमि, धन और अन्न के विपुल भंडार, पुत्र-स्त्री का सुखद साहचर्य, दास दासी एवं अन्य कामगारों की अनुशासित टोली तथा चौपाये पशुओं के संग्रह के माध्यम से प्राप्त होती हैं। ये वृद्धियाँ व्यक्ति को उस समय

[602] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"मज्झिमनिकायपालि"*, भाग 2, पृ.सं. 499-500

प्राप्त होती हैं जब उसमें श्रद्धा, शील, धन का उपभोग करने वाला पुत्र, त्याग एवं पवित्र आचरण तथा विवेक एवं बुद्धि का समभाव हो।[603]

अङ्गुत्तरनिकाय के सामकसुत्त से ध्यातव्य है कि अधःपतन के छः कारण होते है; यथा- कार्य बहुलता, वचन बहुलता, निद्राबहुलता तथा मण्डली बाहुल्य (अत्यधिक सामाजिकता) दुर्वचनीयता एवं कुसंगति। इन छः कारणों पर अत्यन्त व्यावहारिक बुद्धि से विचार करते हुए तथागत ने इन्हें उन्नति के मार्ग में बाधक बताया है।[604] पुनः अङ्गुत्तरनिकायनिकाय के दुतियपरिहानिसुत्त अनुसार किसी भी उपासक की हानि के लिए सात धर्मों का उल्लेख प्राप्त है। वे सात धर्म निम्नवत है-यथा ; भिक्षुओं का दर्शन छोड़ना, सद्धर्म श्रवण में प्रमाद करना, पंचशीलों का अभ्यास न करना, अश्रद्धावान होना, भिक्षुओं की निन्दा करना, छिद्रान्वेषी होना तथा बौद्धेत्तर साधुओं को दान देना। यह सात धर्म उपासक के लिए त्याज्य है।[605] दरिद्रता, ऋण, सूद व दोषारोपण आदि भी सारे जीवन के लिए दुखदायी बताए गए हैं।

पत्तनिकुज्जसुत्त से ज्ञातव्य है कि भगवान् बुद्ध ने व्यक्ति की अवनति के कारण बताते हुए कहा कि जो भिक्षुओं की हानि का, भिक्षुओं को वासविहीन करने का प्रयन्त करता है, भिक्षुओं की निन्दा या उनको अपशब्द बोलता है, एक भिक्षु का दूसरे भिक्षु से कलह कराता है, बुद्ध की निन्दा करता है, धम्म की निन्दा करता है, संघ की निन्दा करता है।[606] ये आठ दुर्गुण जिस उपासक में होते हैं उसकी अवनति अवश्यभावी है। धर्म व कर्तव्य में सुप्रतिष्ठित रहने के लिए व्यक्ति बड़ों का आदर करे, सम्मान के साथ धर्मकथा सुने, ईर्ष्यालु न हो, विनम्रता का आचरण करे, अर्थ, धर्म, संयम तथा ब्रह्मचर्य का आचरण करे, धर्मोपदेश को सुस्थिर हो श्रवण मनन करे, अट्टहास, विलाप, कपट, लोलुपता,

---

[603] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "अंगुत्तरनिकायपालि", भाग 4, पृ.सं. 250-251
[604] वही, भाग 3, पृ.सं. 36-37
[605] वही, भाग 3, पृ.सं. 217-218
[606] वही, पृ.सं. 529

अभिमान मोह आदि दुर्गुणों से दूर रहकर स्थिरचित्त से विचरण करे, ज्ञान और श्रुति की वृद्धि करे। समागत अतिथि का प्रसन्न मन से उठकर स्वागत करना चाहिए। अभिवादन के उपरान्त बैठने के लिए आसन देते हुए उससे कोई रखी हुई वस्तु नहीं छिपाना चाहिए। बहुत रहने पर अल्प प्रस्तुति नहीं करनी चाहिए। उत्तम पदार्थों के होते हुए घटिया पदार्थ नहीं देना चाहिए तथा जो कुछ भी हो, आदरपूर्वक देना चाहिए।

वाणिज्जासुत्त से ज्ञातव्य है कि तथागत ने उपासक रत्न हेतु पाँच प्रकार के व्यापार को वर्जित बताया है -यथा ;1.शस्त्रों का व्यापार, 2.प्राणियों का व्यापार, 3. मांस का व्यापार, 4. मद्य का व्यापार 5. विष का व्यापार, तथा विषमिश्रित वस्तुओं का व्यापार।[607] उपासक की जीवन चर्या उसके प्रारम्भिक कर्त्तव्य, साधारण जीवन चर्या उसके ऐहिक जीवन को सुधारते हुए उसे उत्थान की दायित्व, आचार विचार व उत्थान की श्रेणियों के विवेचन के बाद हम विभिन्न भागों की ओर क्रमिक रूप से दृष्टिपात करेंगेभगवान उसके और की - बुद्ध ने अपने विनयी उपासकों को अलभ्य निर्वाण प्राप्ति के उपदेशों के अतिरिक्त नितांत भौतिक लक्ष्यों की ओर प्रेरणा देने वाले उपदेश भी दिये है। तथागत ने इसी क्रम के सम्पादन में व्यापारी को व्यापार में सफलता प्राप्ति के लिए साधन बताए हैं।

अङ्गुत्तरनिकाय के पठमपापणिकसुत्त व्यापार के तीन अंगों को स्पष्ट किया है। "भिक्षुओ! तीन अङ्गों से युक्त व्यापारी (दुकानदार) अप्राप्त भोगों को प्राप्त करने में असमर्थ होता है तथा प्राप्त भोगों का उपयोग करने में असमर्थ होता है। कौन से तीन ? जो व्यापारी प्रातः काल अपना कार्य सावधानी से आरम्भ नहीं करता, जो व्यापारी मध्याह्न काल अपना व्यापार सावधानी से आरम्भ नहीं करता, सायङ्काल अपना व्यापार सावधानी से आरम्भ नहीं करता, ऐसा

[607] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "अंगुत्तरनिकायपालि", भाग 2, पृ.सं. 579

व्यापारी, भिक्षुओ! इन तीन अङ्गों से युक्त होने के कारण अप्राप्त भोग प्राप्त नहीं कर पाता तथा प्राप्त भोगों का उपभोग नहीं कर पाता। [608]"

"भिक्षुओ ! तीन अङ्गों से युक्त व्यापारी अप्राप्त भोगों को प्राप्त कर सकता है तथा प्राप्त भोगों का उपभोग (विस्तार) कर सकता है। कौन से तीन ? यहाँ कोई व्यापारी प्रातःकाल अपना कार्य सावधानी से आरम्भ करता है, मध्याह्नकाल अपना कार्य सावधानी से आरम्भ करता है, सायङ्काल अपना व्यापार सावधानीपूर्वक आरम्भ करता है वह अप्राप्त भोगों को प्राप्त कर सकता है तथा प्राप्त भोगों का विस्तार कर सकता है।"[609] पुनः भगवान् ने तीन अंगों से युक्त व्यापार को स्पष्ट किया है। "भिक्षुओ ! तीन अङ्गों से युक्त व्यापारी शीघ्र ही अपने व्यापार में अतिशय विस्तार पा लेता है। किन तीन से? भिक्षुओ! यहाँ कोई व्यापार में समझदार (चक्षुष्मान्) होता है, विधुर (कुशल) होता है, तथा निःश्रयसम्पत्र होता है। [610]"

"कैसे, भिक्षुओ! कोई व्यापारी व्यापार में इतना समझदार होता है? वह जानता है कि यह वस्तु इतने में खरीदी जाय, इतने में बेची जाय, इससे इतना मूलधन निकल आयगा, इतना लाभ मिल जायगा। "कैसे, भिक्षुओ! वह व्यापारी 'विधुर' (कुशल) होता है? वह वस्तु के बेचने एवं खरीदने में ऐसा कुशल होता है कि उसकी समानता कोई नहीं कर पाता, अतः वह 'विधर' कहलाता है।" "कैसे, भिक्षुओ! वह व्यापारी निःश्रय (आश्रय) सम्पन्न होता है? यहाँ, भिक्षुओ! उस व्यापारी को वहाँ के अन्य व्यापारी यों जानते हैं कि यह व्यापारी स्वयं इस व्यापार से अपने परिवार का पालन-पोषण कर लेता है तथा अपने व्यापार में वृद्धि भी करता है, अतः उसके व्यापार में अपना धन भी लगा देते हैं और कहते हैं- 'भो सौम्य! हमारे इस धन से अपने बाल बच्चों का पोषण करिये तथा समय

---

[608] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "अंगुत्तरनिकायपालि", भाग 1, पृ.सं. 154

[609] वही,

[610] वही, पृ.सं. 155

समय पर हमें भी इसका कुछ लाभ देते रहिये।' इस तरह, भिक्षुओ! इन तीन अङ्गों से युक्त वह व्यापारी शीघ्र ही अपने व्यापार में अतिशय विस्तार कर लेता है।"[611]

श्रावस्ती के 'महासेट्ठि सुदत्त' जो 'अनाथपिण्डक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भगवान बुद्ध ने दरिद्रता में धन्यता मान लेना अनुचित बतलाया। स्व-परिश्रम से दरिद्रता का निर्मूलन करने की मानवीय क्षमता को उन्होंने समर्थन किया। ऐश्वर्य प्राप्ति के मुख्य उद्देश्य बताते हुए धन व ऐश्वर्य का सदैव स्वागत किया। जीवन में उचित धन का व्यय, सीमित उपयोग एवं इच्छाओं पर अंकुश ही ऐहिक सुख प्रदान करने वाला एक मात्र साधन है। भगवान् बुद्ध ने 'अनाथपिण्डक गृहपति' को उपदेशित करते हुए कहा कि "गृहपति! लोक में इष्ट कान्त एवं मनाप चार धर्म दुर्लभ हैं। वह इष्ट कान्त एवं मनाप चार धर्म दुर्लभ चार धर्म- 1. प्रसंगोपात्त कामभोग मुझको उपलब्ध होते रहें, 2.कामभोग प्राप्त कर प्रसंगोपात्त यश भी मुझे मिलता रहे, 3. कामभोग प्राप्त कर, यश प्राप्त कर अपने नाती रिश्तेदारों तथा उपाध्यायों के साथ दीर्घकाल तक अपनी लम्बी आयु प्राप्त करूँ, तथा 4. भोगों को प्राप्त कर, साथ ही यश प्राप्त कर, साथ ही अपने नाते रिश्तेदारों एवं उपाध्यायों के साथ चिरकाल तक जीवित रहकर, दीर्घ आयु प्राप्त कर, मरणानन्तर स्वर्ग में उत्पन्न होऊँ।[612] संक्षिप्त रूप से कहा जा सकता है कि न्यायतः धन प्राप्त करना, यश प्राप्त करना, दीर्घ जीवी होना एवं सगे-सम्बन्धियों के साथ न्यायपूर्वक साहचर्य से सुगति को प्राप्त करने का उपदेश तथागत ने दिया है। तदुपरान्त भगवान् ने उपदेशित करते हुए कहा कि इन चारों इष्ट, कान्त, मनाप दुर्लभ धर्मों की प्राप्तिहेतु ये चार धर्म होते हैं। वे धर्म निम्नवत है- (१) श्रद्धासम्पदा, (२) शीलसम्पदा, (३) त्यागसम्पदा, एवं (४)

---

[611] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "अंगुत्तरनिकायपालि", भाग 1, पृ.सं. 155-156
[612] वही, भाग 2, पृ.सं. 90-91

प्रज्ञासम्पदा।[613] उक्त चार सम्पदाएँ जो गृहस्थ द्वारा स्वागतार्थ हैं, गृहस्थी के अनुकूल हैं और गृहस्थ को अच्छी लगने वाली हैं। "श्रद्धा रूपी सम्पदा से तात्पर्य - गृहपति यहाँ कोई आर्यश्रावक तथागत के प्रति श्रद्धा रखता हुआ तथागत की सम्बोधि के लिये यों श्रद्धा प्रकट करता है- वे भगवान अर्हत् हैं; सम्यक्, सम्बुद्ध हैं; विद्या तथा आचरण से युक्त हैं; सुगत हैं, लोक (विश्व) के जानकार हैं। अनुत्तर है; दुर्दमनीय पुरुषों का दमन करने वाले सारथी हैं तथा वे देव मनुष्यों के शास्ता है।"[614]

इसी प्रकार शील रूपी सम्पदा से तात्पर्य गृहपति ! यहाँ कोई आर्यश्रावक प्राणातिपात से विरत, अदिन्नादान (चोरी), काम मिथ्याचार (व्यभिचार), मृषावाद (असत्य) तथा नशीली वस्तुओं के त्याग में हैं। त्यागसम्पदा से तात्पर्य यहाँ गृहपति! कोई आर्यश्रावक मात्सर्य मल से रहित होकर गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ, खुले हाथों से त्यागवृत्ति से मुक्त दान करता है. गृहपति! यह कहलाती है त्यागसम्पदा। भगवान् ने कहा कि गृहपति! प्रज्ञासम्पदा किसे कहते हैं। ई पुरुष विषम लोभाभिभूत चित्त से अकृत्य करता है, सुकृत्य से घृणा करता है। ऐसे अकृत्य करते हुए तथा सुकृत्य न करते हुए वह यश एवं सुख-दोनों से वञ्चित होता है। गृहस्थ का मन लोभ के वशीभूत रहता है, द्वेष के वशीभूत रहता है, आलस्य के वशीभूत रहता है, तन्द्रा के वशीभूत रहता है तथा चित्त की व्यग्रता के वशीभूत रहता है उस चित्त से, गृहपति ! कोई अकृत्य में उत्साहित रहता है, सुकृत्य से घृणा करता है, इस प्रकार अकृत्य करता हुआ एवं सुकृत्य न करता हुआ वह अपने यश एवं सुख- दोनों से वञ्चित हो जाता है।[615]

---

[613] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "अंगुत्तरनिकायपालि", भाग 2, पृ.सं. 90-91

[614] वही,

[615] वही, पृ.सं. 91-92

भगवान् बुद्ध ने बताया कि लोभ, लालच, द्वेष, आलस्य, तन्द्रा, चित्त की अस्थिरता तथा संशयालुपन, ये सभी मानव के चित्त को आच्छादित कर उस पर लगे धब्बे के समान हैं। इस चित्त को ढकने वाले धब्बों से जो गृहस्थ मुक्त हो जाता है, उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, वह बहुत प्रज्ञ हो जाता है, पृथुल प्रज्ञ होने के साथ-साथ वह पूर्ण ज्ञानी हो जाता है। इस प्रकार न्यायतः बड़े परिश्रम से, बाहुबल से, पसीना बहाकर जो धन कमाता है वह बड़ा सौभाग्यशाली है। ऐसा गृहस्थ अपने आपको सुखी व आनन्दित करता है तथा आनन्द मग्न रहता है। वह अपने माता-पिता, स्त्री-बच्चों, अपने नौकरों और कामचरों तथा यार दोस्तों के साथ सुखी और आनन्दित रहता है तथा सभी को आनन्द निमग्न रखता है।

वीर्य से सम्पन्न, बाहुबल से तथा पसीना बहाकर अत्याधिक परिश्रम करने पर गृहस्थ को समय-समय पर यथोचित का में चार सुखों की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए। वे चार सुख है; अस्तिसुख, भोगसुख, आनृण्यसुख एवं अनवद्यसुख। विस्तार से बताया है कि "कुलपुत्र के पास स्वबाहुबलवीर्य से पसीना बहाकर अर्जित किये गये धार्मिक धर्म से प्राप्त कामभोग हों। वह में पास स्वबाहुबलवीर्ययुक्त धर्मलब्ध कायसुख हैं- ऐसी यह सुखों की अस्तिता-ज्ञान का सुख एवं सौमनस्य ही 'अस्तिसुख' कहलाता है।" "जब कोई कुलपुत्र स्वबलवीर्यबाहुपार्जित, पसीना बहाकर प्राप्त किये धार्मिक धर्मलब्ध अपने कामभोगों का उपभोग करता है। उस समय उत्पन्न हुआ सुख ही 'भोगसुख' कहलाता है।"[616]

"गृहपति! कोई कुलपुत्र व किसी से कुछ भी थोड़ा या बहुत धन उधार (ऋण रूप में) नहीं लेता। उस समय उसको हुआ यह सौमनस्य ही-'मैंने किसी से कुछ भी थोड़ा या बहुत धन ऋणरूप में नहीं लिया'- ऐसा बिनान सुख ही

[616] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"अंगुत्तरनिकायपालि"*, भाग 2, पृ.सं. 95-96

'आनृण्यसुख' कहलाता है। गृहपति! कोई आर्यश्रावक अनवद्य कायकर्म से, अनवद्य वाक्कर्म से, अनवदय मनः कर्म से समन्वित होता है। वह मैं अनवद्य कार्यकर्म, अनवद्य वाक्कर्म एवं अनवद्य मनः कर्म से समन्वित हूँ ऐसा सुख अनुभव करता है, सौमनस्य अधिगत करता है। यह 'अनवद्यसुख' कहलाता है।"[617]

भगवान् राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में विराजमान थे। उस समय सिङ्गालक नाम का गृहपतिपुत्र प्रातः काल उठकर राजगृह नगर सर बाहर निकल कर गीले कपड़ों एवं गीले केश से युक्त हो पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर, ऊपर-नीचे- सभी दिशाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहा था। उसी समय भगवान् भिक्षा के लिये राजगृह में प्रवेशहेतु चले। भगवान् ने उस समय देखा कि सिङ्गालक गृहपतिपुत्र को सभी दिशाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहा था। यह देखकर भगवान् ने उससे पूछा- गृहपतिपुत्र! सभी दिशाओं को हाथ जोड़कर क्यों नमस्कार कर रहे हो। प्रत्युत्तर में सिङ्गालक गृहपतिपुत्र ने देहपात के समय पिता के द्वारा किये गये अनुशासन को विस्तार से भगवान् को बतलाया। तथागत ने तत्पश्चात सिङ्गालक गृहपतिपुत्र को धम्म के वास्तविक स्वरुप एवं मनुष्य जीवन के लिये आचरण योग्य उचित विधि को बतलाया। सिङ्गालक गृहपतिपुत्र को भगवान् द्वारा दिया गया यह उपदेश दीघनिकाय के पथिकवग्ग में सिङ्गालसुत्त नाम से वर्णित है। धम्म के वास्तविक स्वरुप एवं मनुष्य जीवन के लिये आचरण योग्य उचित विधि निम्नलिखित रूप से विवेचित है-

भगवान् ने सिङ्गालक गृहपतिपुत्र उपदेशित करते हुए कहा कि गृहपतिपुत्र! आर्यधर्मानुयायी श्रावक के चार कर्मक्लेश प्रहीण (नष्ट) हो गये रहते हैं। इसके कौन से चार कर्मक्लेश प्रहीण हुए रहते हैं? गृहपतिपुत्र! जीवहत्या

[617] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "अंगुत्तरनिकायपालि", भाग 2, पृ.सं. 95-96

कर्मक्लेश है, चौरी करना कर्म-क्लेश है, काम (मैथून) सम्बन्धी दुराचार कर्मक्लेश है एवं असत्य भाषण कर्मक्लेश है- उसके ये चार कर्मक्लेश नष्ट हो गये रहते हैं। प्राणातिपात, अदत्तादान, मृषावाद एवं परस्त्रीगमन-इन चार दुष्कर्मों का विद्वज्जन अनुमोदन नहीं करते। पुनः भगवान् सिङ्गालक से कहते है कि गृहपतिपुत्र! चार स्थानों से वह पापकर्म नहीं करता। "किन चार कारणों (स्थानों) से वह पापकर्म नहीं करता? वह राग (छन्द) के मार्ग पर जाकर, न द्वेष के, न मोह के न भय के मार्ग पर जाकर पापकर्म नहीं करता। गृहपतिपुत्र! वह आर्यश्रावक क्योंकि छन्द, द्वेष, मोह एवं भय के कारण उपस्थित होने पर भी पापकर्म नहीं करता, अतः कहा जाता है कि वह चार स्थानों से पापकर्म नहीं करता।" छन्द, द्वेष, मोह और भय के कारण जो धर्म का अतिक्रमण करता है; कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह उसका यश क्षीण होता जाता है। यह कर कर भगवान् शास्ता सुगत ने फिर यह भी कहा- छन्द, द्वेष, मोह और भय के कारण भी जो धर्म का अतिक्रमण नहीं करता, उसका यश शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह निरन्तर वृद्धिङ्गत होता रहता है।[618]

भगवान् ने सिङ्गालक गृहपतिपुत्र सम्पत्तिविनाशकारण कारणों का उपदेश दिया।

सम्पत्तिनाश के छह कारणों का असेवन-"इन भोगों के छह अपायमुख (सम्पत्तिविनाशकारण) कौन से हैं। गृहपतिपुत्र! सम्पत्तिविनाश का कारण होता है; यथा-(1) मद्यपान आदि का सेवन, (2) विकाल (सन्ध्या या रात्रि में) विशिखा (चौराहे) पर अकारण घूमना, (3) समज्या (सामाजिक नृत्योत्सव) में भाग लेना, (4) द्यूत (जुआ) और प्रमाद की तरफ ले जाने वाले खेलों में में सम्मिलित होना (5) पाप-मित्रों का सङ्ग भी सम्पत्ति (भोग) नाश का कारण, एवं (6) आलस्य में पड़े रहना भी सम्पत्तिनाश का कारण होता है। "अतिनिद्रा, परस्त्रीगमन, वैर पैदा

[618] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, *"दीघनिकायपालि"*, भाग 3, पृ.सं. 736-737

करना, अहित करना, पापी मित्रों का संग एवं लोभ- ये छह दुर्गुण मनुष्य के नाश के कारण हैं।" "पापी मित्रों का संग करने वाला, पाप कर्मों में लिप्त रहने वाला, पापाचरण के अनुरक्त पुरुष अपना यह लोक एवं परलोक दोनों ही नष्ट-भ्रष्ट कर बैठता है।" "जुआ, परनारी, मद्य, नृत्य-गीत, दिवास्वाप (दिन में सोना), असमय के कृत्य, पापी मित्रों का संग एवं अत्यधिक कञ्जूसी ये छह दुर्गुण मनुष्य को नष्ट कर देते हैं।" "जो पासों से (जूआ) खेलते हैं, मद्य पीते हैं, जो अपनी स्त्री की तरह परस्त्रीके साथ रमण करते हैं, जो हीनों का साथ करते हैं, वृद्धों का साथ नहीं करते, वे उसी तरह क्रमशः क्षीण होते जाते हैं, जैसे कृष्णपक्ष का चन्द्रमा।" "जो निरन्तर मद्यसेवी है, निर्धन है, चरित्र है, पियक्कड़ है, प्रमादी है, जल की तरह ऋण में डूबा हुआ है-ऐसा पुरुष शीघ्र ही स्वयं को व्याकुलता से घिरा पाता है।" (1) जो दिन में भी जब चाहे तब सोया रहता है (2) रात्रि में, कभी आवश्यकता पड़ने पर कोई कार्य नहीं करना चाहता और (3) जो सदा शराब के नशे में मस्त रहता है-चे तीनों ही प्रकार के आदमी घर-परिवार नहीं चला सकते। 'बहुत सन्ध्याकाल हो गया', 'बहुत गर्मी है', 'बहुत ठण्ढ है', यह कहकर कार्य में ढील करने वाले मनुष्य अन्त में निर्धन हो जाते हैं। "इसके विपरीत जो पुरुष शीत-उष्ण आदि कठिनाइयों को तृणवत् हीन समझता हुआ अपने कार्यों में लगा रहता है, वह कभी निर्धन नहीं होता।"[619]

तथागत सिङ्गालक गृहपतिपुत्र को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि किसी व्यक्ति के मित्र रूप में शत्रु होते है; यथा- 1. परधनहारक, 2. बातूनी, 3. अनुप्रियभाणी तथा 4. हानिकारक कृत्यों में स्वेच्छया सहायक।[620]

इनमें से परधर्महारक को अपना शत्रु समझना चाहिये क्योंकि यह परधनहारक होता है। यह अल्पमात्र देकर अधिक की आशा रखता है, दूसरों के लिये भयोत्पादक कृत्य करता रहता है । यह केवल धनप्राप्ति के लिये मैत्री

[619] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*दीघनिकायपालि*", भाग 3, पृ.सं. 737-738
[620] वही, पृ. सं. 740-741

करता है इन चार स्थानों से परधनहारक पर मित्रता का विश्वास नहीं करना चाहिये।[621]

किसी बातूनी को मित्र होते हुए भी अमित्र ही समझना चाहिये क्योंकि वह बीती हुई बातों की; या आगे होने वाली बातों की ही प्रशंसा दिखाता रहता है, निरर्थक बातों की प्रशंसा करता है, वर्तमान के कार्यों में अनेकविध भय दिखता है। अनुप्रियभाणी को मित्र होते हुए भी अमित्र ही समझना चाहिये क्योंकि वह कृत्सित कृत्यों में अनुमति दे डालता है, अच्छे कार्यों में भी अनुमति देता है, सामने प्रशंसा करता है और पीठ पीछे निन्दा करता है । सम्पत्तिनाश में सहायक को अमित्र ही समझना चाहिये क्योंकि यह शराब पीने और प्रमादयुक्त कार्य करने में सहायक होता है, असमय में चौरास्ता पर घुमने में साथ देता है, नृत्यएवं है रहता सम्मिलित में सहायकरूप उसके में उत्सवों गीत- जुआ आदि दुष्कृत्यों के विधान में सहायक होता है। परधनहारी, बातूनी, अनुप्रियभाणी, पापकर्मों में सहायक ये चार मित्र होते हुए भी वस्तुतः अमित्र ही हैं। भगवान् सिङ्गालक गृहपतिपुत्र को कहते है कि इन चारों मित्रों को उसी तरह दूर से ही छोड़ देना चाहिये, जैसेछोड़ ही से दूर को मार्ग भयानक आदमी समझदार- देता है।

तथागत ने सिङ्गालक गृहपतिपुत्र को चार प्रकार के मित्रों को सुहृद् समझना चाहिये जो निम्नलिखित हैं- 1.उपकारी, 2.सुख-दुःख में समान व्यवहार करने वाला, 3.जो अर्थ-प्राप्ति का उपाय बताने वाला एवं 4.निरन्तर अनुकम्पा (दया सहानुभूति) रखने वाला मित्र सुहृद् समझा जाना चाहिये।[622]

इन चार कारणों से उपकारी मित्र को सुहृद् समझना चाहिये, क्योंकि वह प्रमत्त की, प्रमत्त की सम्पत्ति की, भयभीत की रक्षा करता है, एवं आवश्यकता पड़ने पर, द्विगुणित लाभ कराने का प्रयास करता है। इन चार कारणों से समान

---

[621] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*दीघनिकायपालि*", भाग 3, पृ. सं. 740-741

[622] वही, पृ.सं. 742

सुख-दुःखी मित्र को सुहृद् समझना चाहिये: क्योंकि वह उसे अपनी गोपनीय बात बताता है, इस की गोपनीय बात को गुप्त ही रखता है, संकटकाल में इस का परित्याग नहीं करता एवं वह इस के लिये जीवन तक का भी उत्सर्ग करने का उत्साह रखता है। इन चार कारणों से अर्थसहित बात कहने वाले मित्र को सुहृद समझना चाहिये- पाप कर्मों से दूर हटने का, शुभ कर्मों में लगे रहने का परामर्श देता है, नहीं सुनी हुई विद्या को सुनाता (सिखाता) है एवं सुगति का मार्ग बतलाता है। इन चार कारणों से अनुकम्पक मित्र को सुहृद् समझना चाहिये, क्योंकि वह मित्र के पास सम्पत्ति न होने से प्रसन्न नहीं होता, होने से प्रसन्न होता है, उसकी निन्दा करने वाले को रोकता है और प्रशंसा करने वाले से प्रसन्न होता है।[623]

उपकारी, समान सुख-दुख वाला, अर्थ की बात कहने वाला एवं मित्रानुकम्पक ये चारों ही वास्तविक मित्र हैं। तत्पश्चात भगवान् सिङ्गालक गृहपतिपुत्र को सम्बोधित करते हुए कहते है ऐसा जानकर बुद्धिमान् आदमी को, मातातरह की पुत्र एवं पिता-, उनका सत्कार करते हुए उनकी सेवा करनी चाहिये।[624] इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने सिङ्गालक गृहपतिपुत्र को उपदेशित करते हुए सभी गृहस्थों जीविका के लिए व्यापार उद्यम करते समय स्वीकार करने योग्य मार्गों का तथा विरत रहने योग्य वर्जनाओं निर्देश दिया। भगवान् बुद्ध के इस उपदेश से वे 'अर्थ-समन्वयक' के रूप स्पष्ट रूप दिखलाई देते है। गृहपतिपुत्र को तथागत ने कहा है कि

एकेन भोगे भुञ्जेथ द्वही कम्मं पयोजय।

चतुत्थं व निधापेय्य आपदासु भविस्सति। ।[625]

---

[623] शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, "*दीघनिकायपालि*", भाग 3, पृ.सं. 742

[624] वही,

[625] वही, पृ.सं. 745

अर्थात् भोगों का संचय अर्थसम्पन्न कुलवाला गृहस्थ अपने धन का चार भागों में विभाजन करे। उन भागों के एक भाग का स्वयं दैनिक उपयोग करे, दो भागों को घर के कार्य में प्रयुक्त करे और चतुर्थ भाग को संकट के समय काम में लेन के लिये सुरक्षित रखे। अतः पालि त्रिपिटक साहित्य में मनुष्य के आर्थिक जीवन एवं जीविका के साधनों के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना की गयी है। ऐहिक धन-सम्पदा के लिए विहित कर्म तथा कर्तव्यों की व्याख्या बुद्धोपदेशों में प्राप्त होती है।

5.4 आधुनिक बौद्ध विद्वान एवं उनके मत

भगवान् बुद्ध ने अपने चारिका काल में समाज जीवन के नैतिक एवं आर्थिक उन्नयन के लिए जिन उपदेशों दिया उन्हीं की उपयोगिता को आधुनिक विद्वानों ने वर्तमान के सम्बन्ध में व्याख्यायित किया है। आधुनिक आर्थिक, राजनीतिक एवं पर्यावरणीय समस्याओं के आलोक में विभिन्न विद्वानों के मत निम्नवत है-

5.4.1 ई.एफ. शूमाकर (E.F. Schumacher)

ई. एफ. शूमाकर एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री, दार्शनिक और पर्यावरणविद् थे। जिनका जन्म जर्मनी के बॉन शहर में हुआ था।[626] उन्होंने विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था और आत्मनिर्भरता का प्रबल रूप से पुरस्कार किया । वे भारत के उच्च आध्यात्मिक विचारों से प्रभावित थे। अपनी भारत में यात्रा के लिये आये उस समय और उनका मानना था कि स्थानीय संसाधनों के उपयोग और लघु उद्योगों के विकास से ही सतत आर्थिक प्रगति सम्भव है।

इनका जन्म जर्मनी के बॉन शहर में 16 अगस्त 1911 हुआ था। अर्नस्ट फ्रेडरिक शूमाकर (Ernst Friedrich Schumacher) यह इनका पूरा नाम है।[627] उन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय और कोलंबिया विश्वविद्यालय में अध्ययन

[626] Wood, Barbara, *"E.F. Schumacher: A Biography"*, p. 1
[627] Ibid

किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, उन्होंने ब्रिटेन में शरण ली और वहीं के नागरिक बन गए। उनके व्यावसायिक जीवन और योगदान के विषय में ज्ञात होता है कि वे ब्रिटेन के राष्ट्रीय कोयला बोर्ड (National Coal Board) में वरिष्ठ सलाहकार के रूप में कार्यरत रहे। Small Is Beautiful: A Study of Economics As If People Mattered – उनकी यह पुस्तक वैश्विक आर्थिक चिन्तन में क्रांतिकारी सिद्ध हुई। उन्होंने इसमें नैसर्गिक संसाधनों के अत्याधिक उपयोग और मानवता के विनाश के खतरे को व्यक्त किया है "Fossil fuels are merely a part of the "natural capital" which we steadfastly insist on treating as expendable, as if it were income, and by no means the most important part. If we squander our fossil fuels, we threaten civilisation; but if we squander the capital represented by living nature around us, we threaten life itself."[628] उन्होंने अपनी पुस्तक A Guide for the Perplexed में जीवन के गहरे दर्शन और आध्यात्मिक पक्ष पर चर्चा की है । Chicago Tribune महोदय के अनुसार "A Guide for the Perplexed is really a statement of the philosophical underpinnings that inform Small Is Beautiful. Those who have read neither book would be wise to read the latest book first. Those who have read Small Is Beautiful will benefit from a careful reading of this new book. Its impact may be less immediate, but perhaps more substantial and lasting.[629]"

बौद्ध आर्थिक व्यवस्था के रूप में मुख्य विचार और दर्शन निम्नवत्-

उन्होंने यह विचार दिया कि विकास की असली कुंजी बड़े उद्योगों की जगह छोटे, स्थानीय और पर्यावरण के अनुकूल उद्योगों में निहित है। उहोंने अपने इस विचार को "अल्पता में ही सुंदरता है" नाम से विश्व के सामने रखा। वर्तमान समय में आर्थिक क्षेत्र का विस्तार उपभोगतावाद एवं भौतिकतावाद के

[628] Schumacher, E.F., *"Small Is Beautiful: A Study of Economics As If People Mattered"*, p.5
[629] Schumacher, E.F., *"A Guide for the Perplexed"*, cover page

रूप में व्यापक रूप से हुआ है। वे आत्मनिर्भर आर्थिक व्यवस्था तथा स्थानीय संसाधनों के उपयोग पर बल देते थे। इस प्रकार के उनके इस दृष्टिकोण को स्थानीय अर्थव्यवस्था का समर्थन के रूप में देख सकते है। उन्होंने अपने विचारों में 'बौद्ध आर्थिक व्यवस्था' की अवधारणा प्रस्तुत किया है। 'Right livelihood is one of the requirement of the Buddha's Noble Eight Fold Path. It is clear, therefore, that there must be such a thing as Buddhist Economy.'[630] इस उद्धरण से यहीं स्पष्ट होता ही कि सम्यक् आजीविका ही बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का अर्थगर्भ है। वह सम्यक् आजीविका पञ्चसील से मार्ग से ही क्रियान्वित हो सकती है। प्राणीहिंसा करना, न दिए हुए वस्तु को ग्रहण करना अर्थात् चोरी करना, व्यविचार करना, असत्य बोलना एवं शराब आदि नशा का सेवन करना, यह मिथ्या आचरण है। जो इस प्रकार आचरण करते हुए जीवनयापन करते है वह मिथ्या आजीविका कहलाती है। इसके विपरीत शील का पालन करते हुए जीविकोपार्जन करना सम्यक् आजीव है। जिसमें आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों को आर्थिक व्यवस्था का अभिन्न अंग माना गया। उन्होंने ऐसी प्रोद्योगिकी को प्रोत्साहन देने को अत्यधिक बल दिया है। आर्थिक विकास मानव-केंद्रित हो और पर्यावरण को क्षति न पहुंचाए। जिसे उन्होंने "Technology with human face" इस संज्ञा से व्याख्यायित किया है।

आधुनिक अर्थव्यवस्था में, मनुष्य का जीवनमान उसकी वस्तु उपभोगिता पर निर्भर करता है, विचार करता है। किन्तु बौद्ध आर्थिक व्यवस्था मर्यादित उपभोगिता के आधार पर मनुष्य का जीवनमान को सुनिश्चित कराती है। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था में गरीब और अमीर होने का महिमा गान नहीं है, उन्होंने जीवन का मध्यम मार्ग स्वीकार किया है। यह मध्यम मार्ग पर निर्भर जीवन संसाधनों के मर्यादित उपयोगिता पर आधारित है। आधुनिक अर्थशास्त्री

[630] Schumacher, E.F.S. , *"Small Is Beautiful: A Study of Economics As If People Mattered"*, p.44

उपभोगिता अथवा उपयोगिता को साध्य और भूमि, श्रम एवं पूँजी को साधन मानते है। उनके अनुसार अधिकाधिक साधनों की उपलब्धता कर देने से मनुष्य को उपभोग को साध्य मान कर उपयोगिता की जा सकती है। किन्तु बौद्ध आर्थिक व्यवस्था में साध्य और साधन का अर्थ अलग है। ई. एफ. शूमाकर के अनुसार "The Keynote of Buddhist economics, therefore, is simplicity and non-violence"[631] इस प्रकार उन्होंने विश्व के समक्ष अपने विचारों के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि आर्थिक विकास केवल संख्याओं का गणनात्मक विकास नहीं, अपितु मानवीय मूल्यों, पर्यावरणीय संतुलन तथा स्थानीय संसाधनों की कुशलता पर आधारित गुणात्मक विकास है। "The Buddhist point of view takes the function of work to be atleast threefold- to give man a chance to utilise and develope his faculties; to enable him to overcome his egocentredness by joining with other people in a common task; and to bring forth the goods & services needed for a becoming existence."[632] शूमकर के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को आनंद लेने एवं स्वयं को विकसित करने का अवसर मिलना चाहिए। एक साथ मिलकर काम करना, अपने अहंकार को खत्म करना और सभी के लाभ के लिए अच्छी सेवाएं प्रदान करना; यह तीन सूत्री कार्यक्रम बौद्ध आर्थिक व्यवस्था के लिए राजमार्ग है। यदि बौद्ध आर्थिक व्यवस्था के इस मार्ग को विश्व स्वीकृत कर लें तो यह बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का कल्याणकारी लक्ष्य हो सकता है। उनका विचार आज भी प्रासंगिक है और सतत विकास की दिशा में एक महत्त्व पूर्ण मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

5.4.2 डॉ. भीमराव अम्बेडकर (Dr. Bhimrao Ambedakar)

डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक महान समाज सुधारक, विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने भारतीय सामाजिक सुधार के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित किया। उनका योगदान भारतीय लोकतंत्र और सामाजिक न्याय

631 Schumacher, E.F.S., *"Small is beautiful"*, p.60
632 Ibid, p.45

के क्षेत्र में अमूल्य है। बौद्ध जगत में इसलिए सुविख्यात है कि उन्होंने अपने लाखों अनुयायिओं के साथ 14 अक्तूबर 1956 को बौद्ध धर्म में धम्मदीक्षा ग्रहण की।[633] वे बहुत दीर्घ काल से भगवान् बुद्ध से प्रेरित रहे। उनके अनुसार भगवान् बुद्ध का विचार न केवल भारत के लिए महत्त्व पूर्ण है, बल्कि वैश्विक मानवता के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन इतिहास का विचार किया जाये तो यह स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष का एकमेव सत्पुरुष भगवान् बुद्ध विश्वभर में प्रसारित हुआ। वास्तव में भगवान् बुद्ध के विचारों में वह बल है जिन्होंने सम्पूर्ण विश्व को आकर्षित किया था। कुछ लोग मानते हैं कि आज दुनिया में जो परिवर्तन हो रहे हैं, वे मार्क्स के कारण हैं, दुनिया भर के कई देश इस विचार से ग्रस्त हैं।

"Communism is like a forest fire which goes on burning and consuming anything and everything that comes in its way"[634] उनके अनुसार यह 'जंगल की आग' बहुत तेजी से फैल रही है। उनमें नैतिकता के प्रति कोई सम्मान नहीं है। आज विश्व के लिए, विशेषकर एशियाई महाद्वीप के लिए केवल दो ही मार्ग उपलब्ध हैं। एक बुद्ध का मार्ग और दूसरा मार्क्स का मार्ग। यदि समय रहते विश्व ने बुद्ध के दर्शन को स्वीकार नहीं किया, तो साम्यवादी दर्शन की जीत अवश्यभावी है। बुद्ध का दर्शन ही विश्व का एकमात्र आश्रय सिद्ध है और जितना अधिक इसका प्रचार-प्रसार किया जाएगा, उतना ही विश्व युद्ध से दूर और शांति के करीब जाएगा। उन्होंने अपने "Buddha or Karl Marx" तुलनात्मक अध्ययन द्वारा यह स्थापित किया कि बुद्ध की शिक्षा में भी साम्यवाद है। वह साम्यवाद रशियन साम्यवाद की तरह तानाशाही नहीं है। "The Russians are proud of their Communism. But they forget that the wonder of all wonders is that the Buddha established Communism so far as the Sangh was concerned without dictatorship. It may be that it was a communism on a very small scale but it was communism without

[633] Ed. Narake, Hari, "Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches", Vol. 17, p.528
[634] Ed.Moon,Vasant, "Dr. Babasaheb Ambedkar : Writings and Speeches", Vol. 15, p.878

dictatorship a miracle which Lenin failed to do."[635] उन्होंने बुद्ध की पद्धति को आधुनिक साम्यवाद से भिन्न एवं मानसिक परिवर्तन से जोड़ा। "The Buddha's method was different. His method was to change the mind of man: to alter his disposition: so that whatever man does, he does it voluntarily without the use of force or compulsion. His main means to alter the disposition of men was his Dhamma and the constant preaching of his Dhamma. The Buddhas way was not to force people to do what they did not like to do although it was good for them. His way was to alter the disposition of men so that they would do voluntarily what they would not otherwise to do."[636]

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार बुद्ध धम्म मनुष्य का दुःख एवं दरिद्रता नष्ट करने के लिए परिणामकारक मार्ग है। उन्होंने प्रतिपादित किया कि भगवान् बुद्ध ने दुःखो के कारणों की व्याख्या की है। इस दुःख से मुक्ति का मार्ग बताया है। आर्य अष्टांगिक मार्ग, दस पारमिताएँ तथा पंचशील के पालन से मानवीय दुःखों से मुक्ति हो सकती है। सम्यक् आजीव का मूल अभिधेय प्रतिपादित करते हुए डॉ. अम्बेडकर अपने Buddha and his Dhamma ग्रन्थ में लिखते है कि "Every individual Has to earn his livelihood. But there are ways and ways of earning ons's livelihood. Some are bad: some are good. Bad ways are those which cause injury or injustice to others. Good ways are those by which the individual earns his livelihood without causing injury or injustice to others. This is samma ajivo."[637] तात्पर्य यह है की प्रत्येक व्यक्ती को अपना चरितार्थ चलाना है, परन्तु चरितार्थ के अनेक मार्ग है। कुछ बुरे है और कुछ अच्छे मार्ग है। जिसके द्वारा औरों पर अन्याय या हानि होती हो वह बुरे मार्ग है। औरों पर अन्याय एवं हानि न करते हुए जीविका चलने के लिए

[635] Ed. Narake, Hari, "Dr. Babasaheb Ambedkar : writings and Speeches", Vol. 3, p 461
[636] Ibid
[637] Ambedakar, B.R., "Buddha and his Dhamma", pp .125-126

अवलम्बित मार्ग अच्छे होते है। इससे स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर के विचारों में 'Buddhist Economics' ही नहीं अपितु उनके द्वारा किये गये धम्मक्रांति ने भारतीय परम्परा के संवाहक भगवान् बुद्ध के विचारों को "Buddhist Communism" एवं "Globalisation of Dhamma" की संकल्पना को दिया है। इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर के विचार बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

5.4.3 ए.टी. अरियरत्ने (A. T. Ariyaratne)

ए.टी. अरियरत्ने श्रीलंका में समाज सेवा और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में अग्रणी व्यक्तित्व हैं। उनका सर्वोदय आंदोलन न केवल श्रीलंका अपितु वैश्विक परिवेश में सामुदायिक विकास कार्यों के लिए एक प्रेरणा है। वे अहिंसा, आत्मनिर्भरता और सहयोग की भावना के प्रचारक हैं। उनका जन्म श्रीलंका में 5 नवंबर 1931 को हुआ। जिनका पूरा नाम अहंगमुवे तुडवे अरियरत्ने (Ahangamage Tudor Ariyaratne) है। उन्होंने श्रीलंका में शिक्षा प्राप्त की और एक शिक्षक के रूप में अपना कार्य शुरू किया। 1958 में, उन्होंने विद्यार्थिओं और शिक्षकों के साथ मिलकर समाज सेवा के क्षेत्र में कार्य को प्रारम्भ किया।[638] श्रीलंका में विकास की दृष्टि से पिछड़े अविकसित ग्रामीण क्षेत्र में श्रमदान (स्वैच्छिक सेवा) के माध्यम से विकास कार्य करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया ।

उन्होंने अपने "Buddhist economics in practice : in the Sarvodaya Shramadana movement of Sri Lanka" की व्याख्यानमाला में कहा है कि "I have learnt by applying Buddhist principles in actual practice over a period of 40 years in the social, economic and political life of the people of my country. My entire treatment of the subject of Buddhist economics will be from the experiential point of view of Sarvodaya. Academic

[638] Bond, George D., "A.T. Ariyaratne and Sarvodaya Shramadana movement in Sri Lanka", Engaged Buddhism: Buddhist Liberation Movements in Asia, "ed. Christopher S. Queen & Sallie B. King", p.121

treatment of a subject has never been of interest to me. I have always tried to discover ways and means of applying knowledge in serving the people. Knowledge that does not help people to overcome their problems and to lead a better and happier life is of no use."[639] स्पष्ट रूप से वे कहते है कि 'सर्वोदय श्रमदान आंदोलन' का उद्देश्य केवल बौद्ध मूल्यों को आचरण में लाकर आर्थिक व्यवस्था का सुधार करना है। उनका यह आंदोलन आचार प्रधान है, यह अपने जीवन में बुद्ध के विचारों को अंगीकृत कर विकास करना चाहते है। उनके अनुसार बौद्ध आर्थिक व्यवस्था एक शैक्षणिक पाठ्यक्रम नहीं अपितु सुधार का एक जीवनोपयोगी कृति कार्यक्रम है।

"The economic life of a human being cannot be separated from his or her total life and living. Buddha Dhamma looks at life as a whole. In fact the entire living world is treated as a whole in Buddha's trachings. Without this holistic understanding of life it is difficult for humans to follow the path to happiness that He showed. Economics is only a fragment of life and living. Therefore the moral and social implications of economic activity cannot be considered as apart from economics."[640] मनुष्य का आर्थिक जीवन उसके सम्पूर्ण अस्तित्व से अलग नहीं किया जा सकता। बुद्ध का धम्म जीवन को एक समग्र दृष्टिकोण से देखता है। वास्तव में, बुद्ध के उपदेशों में सम्पूर्ण जीव-जगत को एकीकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस समग्र दृष्टिकोण के बिना, मनुष्य के लिए उनके द्वारा प्रदर्शित सुख के मार्ग पर चलना कठिन है। अर्थशास्त्र जीवन का केवल एक हिस्सा है। इसलिए, आर्थिक गतिविधियों के नैतिक और सामाजिक पहलुओं को अर्थशास्त्र से पृथक नहीं किया जा सकता।

---

[639] Ariyaratne, A.T., "Buddhist economics in practice : in the Sarvodaya Shramadana movement of Sri Lanka", p. 5

[640] Ibid

समस्याओं का समाधान एक समग्र, अनुभवजन्य और व्यावहारिक दृष्टिकोण से किया जाता है। बुद्ध का संदेश सम्पूर्ण मानवता के लिए है, जिससे यह धर्म, जाति, रंग, राष्ट्रीय सीमाओं और राजनीतिक विचारधाराओं की सभी बाधाओं को पार करता है। यह एक ऐसी शिक्षा है जो सभी के जागरण और कल्याण की दिशा में निर्देशित है। उनके अनुसार "Sarvodaya means 'the awakening of all from an individual human personality to humanity as a whole. This awakening has spiritual, moral, cultural, social, economic and political dimen-sions. Whatever we do in one of these sectors influences all other sectors."[641] सर्वोदय का तात्पर्य है 'एक व्यक्तिगत मानव व्यक्तित्व से लेकर समग्र मानवता तक सभी का जागरण।' इस जागरण के विभिन्न आध्यात्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलू हैं। किसी एक क्षेत्र में किए गए कार्यों का प्रभाव अन्य सभी क्षेत्रों पर पड़ता है।

उनके अनुसार आर्थिक समन्वय के लिए जो साधन अपनाने चाहिए, वे सत्य, अहिंसा और निस्वार्थता पर आधारित होने चाहिए। आर्थिक गतिविधियों को भी इन मूलभूत सिद्धांतों के अनुसार संचालित किया जाना चाहिए। बौद्ध धर्म में अर्थशास्त्र का उद्देश्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि, उत्पादकता और क्रय शक्ति को बढ़ाना, दक्षता में सुधार करना और पूर्ण रोजगार सृजन करना नहीं है। बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करने वाली किसी भी मानवीय गतिविधि में अनुशासन, जागरूकता और ज्ञान जैसे मूल्यों की अनदेखी नहीं की जा सकती। दुख के आर्य सत्य, दुख के कारणों के आर्य सत्य और दुख के निवारण के आर्य सत्य का विश्लेषण करने के पश्चात, भगवान बुद्ध दुख के निवारण की दिशा में ले जाने वाले मार्ग के आर्य सत्य की व्याख्या करते हैं। यह आर्य अष्टांगिक मार्ग है

[641] Ariyaratne, A.T., "Buddhist economics in practice : in the Sarvodaya Shramadana movement of Sri Lanka", p.6

।आर्य अष्टांगिक मार्ग, जिसे मध्य मार्ग भी कहा जाता है, में आठ चरण या घटक शामिल हैं, जो हमारे विचारों, शब्दों और कर्मों से संबंधित हैं। हमें इन सभी को एक समग्र दृष्टिकोण से देखना चाहिए और प्रत्येक को एक-दूसरे के संदर्भ में समझना चाहिए।

उनका 'सर्वोदय श्रमदान आंदोलन' भगवान् बुद्ध के बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के सिद्धांत से प्रेरित है। यह आंदोलन श्रीलंका में सामुदायिक विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, और पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में कार्य करता है। इसका उद्देश्य स्वावलंबी ग्रामों का निर्माण करना और आर्थिक-सामाजिक असमानता को कम करना है।

5.4.4 सुलक शिवरक्षा (Sulak Sivaraksa)

सुलक शिवरक्षा एक प्रतिष्ठित थाई सामाजिक कार्यकर्ता, विद्वान और लेखक हैं। जो बौद्ध धर्म, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में अपने योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं। उनका कार्य प्रायः राजनीतिक दमन, उपभोक्तावाद और आधुनिक समाज में बौद्ध शिक्षाओं की गलत व्याख्या पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। अपने शोध Seeds of Peace: A Buddhist Vision for Renewing Society के प्रथम भाग 'The Politics of Greed' में लालच की राजीनीति, उपभोक्तावाद का धर्म, जापान के साथ थाई एकालाप, विकास के लिए बड़ी सोच वाली रणनीति, विकास का परिमाणन एवं जनता के उद्देश्य से विकास इत्यादि विभिन्न विषयों पर विचार किया है।[642] इस शोध में उन्होंने बौद्ध सिद्धांतों को सामाजिक सक्रियता और न्याय के संदर्भ में किस प्रकार लागू किया जा सकता है इस विषय पर ध्यान केंद्रित किया है। उन्होंने अपनी कृति "The Wisdom of Sustainability: Buddhist Economics

[642] Sivaraksa, sulak, "Seeds of Peace: A Buddhist Vision for Renewing Society" pp 3-44

for the 21st Century" ई.एफ. शूमाकर की 'बौद्ध अर्थशास्त्र' के सिद्धांत पर चिन्तन करते हुए स्थायी और नैतिक आर्थिक विधियों का समर्थन किया है।[643]

सामाजिक और राजनीतिक विषयों में सक्रिय बौद्ध धर्म की भूमिका पर अपने विचारों को उन्होंने 'Conflict, Culture, Change: Engaged Buddhism in a Globalizing World' में व्याख्यायित किया है। उनके विचार में हिंसा से विश्व की समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता। वे संरचनात्मक हिंसा का विरोध करते है और यह स्पष्ट करते है कि बौद्ध मूल्य किस प्रकार शांति को प्रोत्साहित कर सकते हैं। उन्होंने अहिंसा का विचार स्पष्ट करते हुए आचार्य नागार्जुन का उदहारण दिया है "When Nagarjuna, the great third-century Indian Buddhist scholar, was asked to summarize the Buddha's teaching, he replied, "Ahinsa," nonviolence. Nonviolence is the most basic teaching of the Buddha. There is, however, a misconception that nonviolence is equivalent to inaction."[644] उन्होंने हिंसा कि उत्पत्ति के लिए कर्म को कारण के रूप में व्याख्यायित किया।

"Buddha's teachings define violence in great detail. Every action has three doors, he taught, or three ways we create karma: through body, speech and mind. He further posited that every action originates in the mind and is then expressed through either speech or a bodily act. For a violent action to occur, there must fiust be a wish in one's mind to commit the action. This mental violence is of three types: greed, hatred, and delusion or ignorance. Known as the Three Poisons, they are regarded as the root cames of the violence that is subsequently expressed thaungh body and speech."[645] उनके अनुसार कर्म भी अविद्या के कारण उत्पन्न होते है। बौद्ध धम्म का मुख्य लक्ष्य अविद्या से मुक्ति है।

---

[643] Sivaraksa, sulak, "The Wisdom of Sustainability: Buddhist Economics for the 21st Century"
[644] Sivaraksa, sulak, 'Conflict, Culture, Change: Engaged Buddhism in a Globalizing World', p.3
[645] Ibid

सुलक शिवरक्षा आधुनिक बौद्ध धर्म के जागरण में एक महत्त्व पूर्ण हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने इंटरनेशनल नेटवर्क ऑफ एंगेज्ड बुद्धिज़्म (INEB) जैसे संगठनों की स्थापना की। थाईलैंड की राजशाही और सैन्य सरकारों की खुलकर आलोचना करने के कारण उन पर कई बार राजद्रोह के आरोप लगाए गए हैं।

5.4.5 थिच न्हात हन्ह (Thich Nhat Hanh)

थिच न्हात हन्ह का जीवन और कार्य बौद्ध धर्म, ध्यान, और शांति के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। उनका जीवन न केवल एक बौद्ध भिक्षु अपितु समस्त मानवता के लिए प्रेरणास्रोत है । उनका जन्म 1926 में मध्य वियतनाम में हुआ । उन्होंने ने 17 वर्ष की आयु में बौद्ध भिक्षु के रूप में गृहत्याग किया और ज़ेन बौद्ध परम्परा में गहन अध्ययन किया।[646] वह वियतनामी बौद्ध धर्म को नवीनीकृत करने के आंदोलन में 1950 के दशक के आरम्भ में एक युवा भिक्षु के रूप में सक्रिय रूप से लगे हुए थे। साइगॉन विश्वविद्यालय में धर्मनिरपेक्ष विषय का अध्ययन करने वाले आरम्भिक भिक्षुओं में से एक थे। साइकिल चलाने वाले प्रथम छह भिक्षुओं में से भी एक थे। वियतनाम में युद्ध के दौरान सामाजिक सक्रियता से जुड़े रहे।

जब वियतनाम में युद्ध हुआ, तो भिक्षुओं और भिक्षुणियों के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या उन्हें चिंतनशील जीवन का पालन करना चाहिए और विहारों में ध्यान करते रहना चाहिए, या बमबारी और युद्ध की उथल-पुथल से पीड़ित अपने आसपास के लोगों की मदद करनी चाहिए। थिच न्हात हन्ह उन लोगों में से एक थे, जिन्होंने दोनों करना स्वीकार किया और ऐसा करते हुए 1960 के दशक में, वे वियतनाम युद्ध के दरम्यान शांति और अहिंसा के

[646] King, Sallie B., "Thich Nhat Hanh and the Unified Buddhist Church of Vietnam: Nondualism in Action", Engaged Buddhism: Buddhist Liberation Movements in Asia, "ed. Christopher S. Queen & Sallie B. King", p. 322

पक्षधर रहे। उन्होंने Lotus in a Sea of Fire (1967) में "Engaged Buddhism" (सक्रिय बौद्ध धर्म) की अवधारणा को स्थापित किया। तब से उनका जीवन व्यक्तियों और समाज के कल्याण के लिए आंतरिक परिवर्तन के कार्य के लिए समर्पित हो गया है। "Engaged Buddhism is a Buddhist social movement that applies Buddhist principles to contemporary social, political, environmental, and economic issues. It's also known as "applied Buddhism" or "Buddhist activism".[647] अर्थात् यह बुद्ध धम्म की सामाजिक सक्रियता है, जो समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय और आर्थिक मुद्दों पर बौद्ध सिद्धांतों को क्रियान्वयित करता है। यह "व्यावहारिक बौद्ध धर्म" या "बौद्ध सक्रियता" के रूप में भी प्रसिद्ध है। उन्होंने आध्यात्मिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व को बौद्ध दृष्टि से जोड़ा ।

उनके अनुसार भगवान् बुद्ध ने यह बताया है कि मन की तीन अवस्थाएँ - अज्ञानता, आसक्ति एवं क्रोध, हमारे सभी दुखों का मुख्य स्रोत हैं। ये अवस्थाएँ कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं, लेकिन क्रोध के एक क्षण में जीवन को नष्ट किया जा सकता है और हमारे आध्यात्मिक विकास में रुकावट आ सकती है। क्रोध एक अत्यंत प्रभावशाली भावना है, और इसे नियंत्रित करना सबसे कठिन कार्यों में से एक है। उन्होंने क्रोध का उद्भव को क्रय की संकल्पना से जोड़ा है। अपनी पुस्तक "Anger : Buddhist Wisdom for cooling the Flames" में उन्होंने कहा है कि "Not only do we nourish our anger with edible food, but also through what we consume with our eyes, ears, and consciousness. The consumption of cultural items is also linked to anger. Therefore, developing a strategy for consuming is very important."[648] हम अपने क्रोध को केवल खाद्य पदार्थों से ही नहीं, बल्कि अपनी दृष्टि, श्रवण और जागरूकता के माध्यम से भी पोषित करते हैं। सांस्कृतिक सामग्री का अनुभव भी

[647] Thich Nhat Hanh, "Love in Actions : Writings on Nonviolent Social Change", pp.45-50
[648] Thich Nhat Hanh, "Anger : Buddhist Wisdom for cooling the Flames", p. 17

क्रोध के साथ सम्बधित है। इसलिये, एक प्रभावी क्रय की रणनीति का विकास करना अत्यंत आवश्यक है।

1966 में, वे अमेरिका और यूरोप गए, जहाँ उन्होंने मार्टिन लूथर किंग जूनियर से भेंट की। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने उन्हें नोबेल शांति पुरस्कार के लिए नामांकित किया। तत्पश्चात् वियतनाम सरकार ने उन्हें देश में वापस आने से रोक दिया, जिससे वे कई दशकों तक निर्वासन में रहे।

5.4.6 दलाई लामा (Dalai Lama)

दलाई लामा तिब्बती बौद्ध धर्म के प्रमुख आध्यात्मिक गुरु हैं। वे केवल तिब्बत के ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व के लिए शांति और अहिंसा के प्रतीक हैं। उनका जीवन और शिक्षाएँ मानवता के लिए प्रेरणास्रोत हैं। उनकी विचारधारा सभी धर्मों और संस्कृतियों को जोड़ने का कार्य करती है, जिससे दुनिया में प्रेम, करुणा और शांति को बढ़ावा मिलता है। दलाई लामा अहिंसा और करुणा के संदेश को विश्वभर में फैलाने के लिए जाने जाते हैं। वे बौद्ध धर्म, आध्यात्मिकता और मानवता के कल्याण के लिए कार्य करते हैं। उन्होंने तिब्बती संस्कृति और मानवाधिकारों की रक्षा के लिए भी अपना जीवन समर्पित किया है।

14वें दलाई लामा, तेनजिन ग्यात्सो, को तिब्बती बौद्ध धर्म के गेलुग परंपरा का सर्वोच्च नेता माना जाता है। उनका जन्म 6 जुलाई 1935 को तिब्बत के तक्तसर गाँव में हुआ था।[649] उन्हें बहुत ही कम उम्र में 13वें दलाई लामा के पुनर्जन्म के रूप में मान्यता दी गई। तिब्बती परंपरा के अनुसार, जब किसी दलाई लामा का निधन होता है, तो उनके पुनर्जन्म को खोजा जाता है, और इसी प्रक्रिया के तहत तेनजिन ग्यात्सो को दलाई लामा के रूप में चुना गया। उन्हें 1937 में दलाई लामा के रूप में मान्यता दी गई और 1940 में उन्हें आधिकारिक रूप से प्रतिष्ठित किया गया।

[649] "Freedom in Exile-The autobiography of The Dalai Lama, p.5

1950 में, जब चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया, तब वे केवल 15 वर्ष के थे। 1959 में तिब्बत में चीनी शासन के विरुद्ध विद्रोह हुआ, लेकिन उसे कुचल दिया गया, जिसके बाद दलाई लामा को भारत में शरण लेनी पड़ी। तब से वे धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) में निर्वासन में रह रहे हैं और तिब्बती सरकार-इन-एक्ज़ाइल का नेतृत्व कर रहे हैं।

दलाई लामा के विचार में "The human mind is the key factor. Whether they are problems of economics, international relations, science, technology, medicine or ecology, although these issues seem to be beyond any one individual's capacity, where the problem begins and where the answer must first be sought is within. In order to change the external situation we must first change within ourselves."[650] उनका प्रतिपादन है कि मानव मन सबसे महत्त्व पूर्ण तत्व है। किसी भी समस्या की जड़ और समाधान की खोज का प्रारम्भ बिन्दु अपने भीतर है, इसलिए अपने मन-मस्तिष्क में परिवर्तन लाना आवश्यक है। "The culture of perpetual economic growth, which fosters chronic discontent."[651]

दलाई लामा सतत आर्थिक विकास की संस्कृति पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संतोष का विकास करना अत्यंत आवश्यक है। संतोष की कमी से लालच और ईर्ष्या उत्पन्न होती है, जो आक्रमक प्रतिस्पर्धा और अत्यधिक भौतिकवाद को बढ़ावा देती है। संतोष केवल नैतिकता का विषय नहीं है, बल्कि यह एक आवश्यकता भी है। उनके अनुसार भौतिक विकास से भी महत्त्वपूर्ण है मानवता। "I believe that despite the rapid advances made by civilization in this century, the most immediate cause of our present dilemma is our undue emphasis on material development alone. We have become so engrossed in its pursuit

[650] "His Holiness the 14th Dalai Lama on Environment Collected Statements 1987-2017", p.36
[651] His Holiness the Dalai Lama, "Study Guide for ETHICS FOR THE NEW MILLENNIUM", p.30

that, without even knowing it, we have neglected to foster the most basic needs of love, kindness, cooperation, and caring. If we do not know someone or find another reason for not feeling connected with a particular individual or group, we simply ignore them. But the development of human society is based entirely on people helping each other. Once we have lost the essential humanity that is our foundation, what is the point of pursuing only material development?"[652] वे एक आध्यात्मिक नेता के रूप में कार्य कर रहे हैं और विश्वभर में अहिंसा, करुणा और धार्मिक सहिष्णुता के संदेश का प्रचार कर रहे हैं। वे विज्ञान, मानसिक शांति, और ध्यान पर भी विशेष रूप से जोर देते हैं।

[652] Dalai Lama, Bstan-'Dzin-Rgy, & Fabian Kuaki, Imagine All the People: A Conversation with the Dalai Lama on Money, Politics and Life as It Could Be, Boston: Wisdom Publications, 2003: 144-145.

उपसंहार

पालि त्रिपिटक में बुद्धकालीन भारतवर्ष का धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिवेश का विस्तृत विवेचन है। भगवान् बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धम्म में समस्त दुःख के निवारणार्थ उपदेश सन्निहित है, साथ ही वह लौकिक व्यवहारों के सूक्ष्म ज्ञान का भण्डार है। त्रिपिटक में भगवान् बुद्ध तथा उनके द्वारा अनुमोदित भिक्षुओं के श्रावक वचन भी संकलित है। तथागत के चारिका के क्रम में प्रसंगानुरूप विविध स्थानों पर, किसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर किये गये थे। त्रिपिटक की पृष्ठभूमि और उनमें प्रतिपाद्य विषय का मुख्य उद्देश्य बुद्ध, धम्म एवं संघ की महत्ता को प्रमाणित करना है। इसके साथ तत्कालीन समाज में प्रचलित मान्यताओं का भी दिग्दर्शन इनमें होता है। अपने उच्च आध्यात्मिक और धार्मिक मतों को श्रेष्ठ कहने के लिए भगवान् बुद्ध तथा उनके शिष्यों ने प्रयास नहीं किया। उन्होंने अपने धम्म को स्वीकार करने के लिए बल का प्रयोग नहीं किया, न दूसरे सम्प्रदायों की अवमानना की उनके अनुसार शाश्वत धम्म तो वहीं है जो मैत्रीभाव स्थापित करता है। वैर से कभी वैर का शमन नहीं होता, वह अवैर से ही होता है। इसलिए तत्कालीन विभिन्न सम्प्रदायों के मतों का खण्डन तो इसमें विद्यमान है, किन्तु किसी रूप में क्षति पहुंचाने का कोई भाव नहीं । दूसरे या अपने से भिन्न सम्प्रदाय अथवा समूह का कल्याण एवं उन्नति का विचार करने से अपने आचरण एवं व्यक्तित्व की भी अभिवृद्धि होती है। व्यक्ति यदि वैरभाव रखकर किसी कार्य को करता है, तो वह स्वयं की और लोगों की भी हानि करता हैं। परस्पर प्रेम और बन्धुत्व की भावना को दिन-प्रतिदिन वृद्धिगत करना ही त्रिपिटक का मूलमंत्र ज्ञात होता है। भगवान् बुद्ध के अनुसार धम्म केवल वाचासिक प्रलाप मात्र न होकर, प्रत्युत यह दैनिक व्यवहार में अहर्निश अवतरित हो होनेवाला स्थापित है। अतः उनकी की धम्म सम्बन्धी व्याख्यायें काल्पनिक न

होकर यथार्थ के अधिक समीप दिखाई देती है। अपने इसी महान दृष्टिकोण से सम्पन्न होकर त्रिपिटक उन सभी कर्मों को धम्म की संज्ञा देता हैं। धम्म शील, प्रज्ञा, समाधि के आचरण के साथ समस्त मानवता का कल्याण प्रतिपादित करता है। तथागत प्रवेदित धम्म के अभ्यास से उत्तरोत्तर विकास होकर विश्व बन्धुत्व की भावना बलवती होती है।

त्रिपिटक में धम्म एवं मानवीय व्यवहार को भिन्न-भिन्न रूप से देखने, समझने और आत्मसात करने की प्रवृत्ति का समर्थन नहीं किया गया है। अधिक बोलने मात्र से कोई धम्मधर नहीं होता। अल्पमात्र धम्म सुनकर जो काय से उसके अनुसार आचरण करता है, जो धम्म में प्रमाद नहीं करता वही धम्मधर है। सत्य, अहिंसा, संयम, दम, असहाय्य एवं रोगियों की सेवा, भोजन तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का दान, माता-पिता, पत्नी एवं बच्चों का उचित संगोपन कल्याणकारी धम्म की नीव है। किसी भी प्रकार के मिथ्याचार तथा मिथ्या दृष्टिकोण से रहित धम्म आचरण से व्यवहृत होता है, तो वह सम्पूर्ण मानवता का कल्याण ही करता है। अतः समस्त बुद्ध वचनों में मानवोपयोगी मूल्यों की स्थापना को ही धम्म के मूलाधार के रूप में स्वीकृत किया गया है।

त्रिपिटक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लोक व्यवहार के प्रति भगवान् बुद्ध एवं उनके धम्म की संवेदनशीलता बहुत ही व्यापक और गंभीर है। प्रसंगानुरूप विभिन्न स्थानों पर तथागत द्वारा जो उदाहरण एवं दृष्टान्त दिये गयें हैं, उनका उद्देश्य मनुष्य को धम्म में स्थापित कर सर्वोच्च फल निर्वाण की प्राप्ति करना है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों की मानसिक स्थिति को संज्ञान में लेकर भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिए है। उनके द्वारा दिए गये उदाहरण इतने प्रभावशाली है कि ऐसा प्रतीत होता है भगवान् बुद्ध का विराट व्यक्तित्व और तत्कालीन घटनाएँ, वर्त्तमान की घटनाओं एवं परिस्थितियों के समाधान हेतु यथार्थ रूप में अवतरित हो रही हो।

तत्कालीन आर्थिक जीवन की विविधतायें, जीविका सम्बन्धी साधन, कृषि-पशुपालन, विभिन्न उद्योग और वाणिज्य व्यवसाय सभी कुछ जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं का अंग थी। यह सभी अनिवार्य आवश्यकताएँ त्रिपिटक में महत्त्व का स्थान ग्रहण करती हैं। मानवीय दुःख से आत्यानिक निवृत्ति की अत्यन्त गम्भीर दार्शनिक पृष्ठभूमि होने पर भी त्रिपिटक का लोक-व्यवहार से व्यापक स्तर पर जुड़ने का औचित्य क्या है? इसके समाधान का शोध भगवान् बुद्ध के उपदेशों के उन संदर्भों में जा सकता है, जोलोक-व्यवहार से सम्बद्ध है । जहाँ भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को चारिका करते हुए लोकजीवन से लोककल्याण एवं लोकमंगल की भावना से जुड़ने का आदेश दिया है। गृहत्यागी संन्यस्त जीवनयापन करने का अर्थ यह नहीं है कि लोकजीवन के सुख-दुःख और कलानुरूप परिवर्त्तनों से उन्मुक्त हो जाये। त्रिपिटक में भगवान् बुद्ध के द्वारा भिक्षुओं को किये गये इस आह्वान का व्यावहारिक महत्त्व इसलिये भी है कि सभी प्राणियों को दुःखमुक्ति के लिए प्रेरित कर दुःखमुक्ति के उपाय का मार्ग प्रतिपादित करना है। श्रमणों, परिव्राजाकों और भिक्षुओं का इसके निष्पादन में अपना योगदान देना आवश्यक, क्योंकि उनका जीवन भी सामाजिक जीवन का एक अंग हैं। सांसारिक जीवन जीनेवाले गृहस्थों को चाहिये की वे समाज में इन श्रमणों, परिव्राजाकों और भिक्षुओं समुचित आदर-सत्कार कर उनके द्वारा व्यवहार एवं आचरण की श्रेष्ठ विधि का ज्ञान प्राप्त करें। त्रिपिटक में बौद्ध धम्म का जो स्वरूप उल्लिखित है, उसमें लोकजीवन से जुड़कर दुःख सन्तप्त मानवता को दुःखमुक्ति की ओर अग्रेषित करना है। भगवान् बुद्ध ने पलायनवादी दृष्टिकोण का कहीं भी समर्थन नहीं किया गया है। मानवीय जीवन में उत्पन्न समस्याओं का सामना करते हुए शुचितापूर्ण जीवन को धारण करने का अभ्यास करना चाहिये। मानवीय जीवन के प्रत्येक उचित-अनुचित व्यवहार से सन्तप्त

होकर व्यथित होने की अपेक्षा वीर्य पूर्वक उसे बदलने से ही जीवन का सर्वाङ्गीण विकास होता है।

आर्थिक दृष्टिकोण से सांसारिक जीवन की पूर्ति एवं उसके प्रति झुकाव का होना स्वाभाविक है। भगवान् बुद्ध द्वारा स्थापित भिक्षु संघ भी इससे भिन्न नहीं था। भगवान् का उपदेश निर्वाण की और उन्नयन करता है, अतः वह निवृत्ति परक है। जो लोग संघ में प्रविष्ट हो जाते है, उनके लिए निर्वाण प्राप्ति ही मुख्य धेय्य होता है, इसलिए संघ में सभासद होने की पहली शर्त गृहत्याग करना है। गृहत्याग से यहाँ तात्पर्य सभी प्रकार के सांसारिक जीवन के प्रति आसक्ति और झुकाव का मर्दन करना। जो लोग गृहस्थी हैं उनका सांसारिक जीवन के प्रति आसक्त होना स्वाभाविक है। गृहस्थों के लिए जीवन चरितार्थ चलने हेतु विभिन्न जीविकाओं का अवलम्बन करना सामान्य घटना है, किन्तु भिक्खु-भिक्खुणियों के लिए राष्ट्रपिण्ड पर निर्भरता ही जीविका है। सामान्य गृहस्थ और भिक्खु-भिक्खुणियों की चर्या में यही मूलभूत भेद है। भिक्खु-भिक्खुणियों का सांसारिक जीवन के प्रति आसक्ति और झुकाव न हो इसलिए नियमों का प्रज्ञापन और उपदेश तथागत द्वारा निर्दिष्ट है। जिसका सह सम्बन्ध आर्थिक व्यवस्था से भी है।

त्रिपिटक का लोकजीवन से निकट का सम्बन्ध होने से उसके उचित-अनुचित पक्षों का विस्तार से विवेचन किया गया है। यह समाज मानवीय सम्बन्धों के आधार पर बना है। बुद्धोपदेश सामाजिक जीवन यापन करने एवं सुख-दुःख को भोगने का अनुभव का यथोचित विवेचन कर मार्ग प्रतिपादित करता है। समाज के महत्त्व को वह व्यक्ति नहीं समझ सकता जो समाज से उन्मुक्त हुआ है। बुद्ध ने संघ को समाज का अभिन्न अंग बनाया । समाज के विना व्यक्ति और व्यक्ति के विना समाज की कोई कल्पना करना सार्थक नहीं होती । भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त केवल आदर्शवाद पर आधृत नहीं

है, अपितु आचरण तथा व्यवहार के ठोस धरातल पर आधारित है। इसलिए उन्होंने सम्पूर्ण समाज के किसी भी वर्ग अथवा व्यक्तिओं की उपेक्षा नहीं की। सभी को संघ में प्रविष्ट किया। तत्कालीन भारतवर्ष में विचरण करते हुए सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में उन्होंने जो कुछ कहा उसकी प्रासंगिकता वर्तमान तक सिद्ध हो रही है। विना व्यावहारिक ज्ञान व्यक्ति की अपनी विचारशैली के समाज के स्वरूप की संरचना असम्भव है। भगवान् बुद्ध ने अपने धम्मरूपी ज्ञान का वर्षण कर सामाजिक जीवन के निर्माण में उचित-अनुचित आचरण का उपदेश देकर तत्कालीन समाज को नयी दिशा प्रदान की।

त्रिपिटक में जहाँ सामाजिक व्यवस्था एवं तत्कालीन मानवीय व्यवहार के प्रचलित सिद्धान्तों की विवेचना है, वहीं उन जीविका वृत्तियों की भी चर्चायें हैं, जिनके अनुगमन से प्राणी अपना जीवन निर्वाह करता है। प्राचीन आर्थिक इतिहास की दृष्टि से त्रिपिटक का महत्त्व अत्यधिक इसलिए है कि उन्होंने बड़ी कुशलता से जीविका सम्बन्धी वृत्तियों के सामाजिक और आर्थिक परिवेश का मूल्यांकन किया है। भगवान् बुद्ध के अनुसार जीवन निर्वाह के लिये उन सभी कर्मों को किया जा सकता है जिनसे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में किसी भी प्रकार ही हानि न हो। बाहुबल से वीर्यपूर्वक जीवनयापन करना श्रेष्ट है। कर्महीन परिश्रमविहीन होकर भूखों मरना किसी भी परिस्थिति में उचित नहीं है।

त्रिपिटक में ब्राह्मणों द्वारा कृषि कर्म से अपनी जीविका चलाने का उल्लेख किया गया है, जिससे समाज में प्रचलित जन्म के आधार पर श्रेष्ठता का खण्डन किया गया है। तत्कालीन समाज में जीविका वृत्तियों के साधन से ही व्यक्ति की पहचान हो इसका त्रिपिटक मने समर्थन किया। कोई ब्राह्मण कृषि कर्म करता है, तो वह प्रधान के रूप से कृषक है ब्राह्मण नहीं। बुद्ध का कर्म-सिद्धान्त इसी रूप में विख्यात है। जीविका वृत्तियों के रूप में कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, शिल्प और अन्य सभी प्रचलित साधनों का अपनी अभिरुचि और

सामर्थ्य के अनुसार चुनाव किया जा सकता था। त्रिपिटक से यह स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि समाज में जीविका सम्बन्धी वृत्तियों के सम्बन्ध में उच्च और निम्न ये दो वर्ग तत्कालीन समाज में विद्यमान थे। यद्यपि समाज में कुछ जीविकाओं को निम्न कोटि का मनाने की मान्यता प्रचलित थी। विविध जीविकाओं का आर्थिक आधार भी अलग-अलग था। कृषि में अत्यन्त कठोर परिश्रम एवं अनुशासन के होते हुए भी नैसर्गिक आपदाओं के कारन प्रतिकूल परिणाम निकलने की सम्भावनाएँ रहती थी। वाणिज्य में अल्प श्रम के होते हुए भी अत्यधिक आर्थिक लाभ की पूरी संभावना बनी रहती थी। व्यापारियों के मार्ग में अनेक बाधाएँ भी थी। अधिक लाभ एवं अधिक हानि दोनों स्थितियाँ व्यापार में थी।

भगवान् बुद्ध का जीविका सम्बन्धी वृत्तियों के प्रति अपना एक दृष्टिकोण था, जिसे त्रिपिटक में सम्यक् आजीविका कहा जाता है। सामान्य रूप से जीविका के दो विकल्प हैं; यथा- सम्यक् जीविका और मिथ्या जीविका । जो सम्यक् जीविका होगी उसमें हिंसाचार, मिथ्याचार और परपीड़न का भाव नहीं होगा, परन्तु जिसमें सभी तरह के हिंसाचार और पापाचार होंगे उसे मिथ्या जीविका कहेंगे। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का समर्थन सम्यक् जीविका के लिये ही है और वे इसी से जीवन निर्वाह करने का औचित्य सिद्ध करते हैं।

प्राचीन भारतीय आर्थिक जीवन एक रोमांचकारी और विस्तृत विषय है, जिसमें समृद्धि, व्यापार, कृषि, विदेशी व्यापार, सामाजिक अर्थव्यवस्था और संस्कृति के प्रमुख पहलुओं की चर्चा की जा सकती है। भारतीय इतिहास और शास्त्रों के आधार पर, भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों में विकास और परिवर्तन के साथ भारतीय आर्थिक जीवन के विषय में जानकारी है। प्राचीन आर्थिक व्यवस्था विभिन्न समय युगों में विभाजित हो सकती है। प्रागैतिहासिक

युग में व्यापार और व्यवसायिक गतिविधियों की विकास कम थी। लोग खेती और गांवों में जीवन यापन करते थे और वस्तुओं का व्यापार अधिकतर स्थानीय स्तर पर होता था। धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों ने आर्थिक जीवन पर भी गहरा प्रभाव डाला। वैदिक काल तथा बुद्ध कालीन आर्थिक व्यवस्था की समीक्षा से काल परिवर्तन के साथ आर्थिक व्यवस्था के स्वरुप में जो परिवर्तन हुए इसका ज्ञान किया गया है। समाज के रूप-रंग, वृद्धि-ह्रास, उत्थान-पतन, समृद्धि-दुरावस्था का काल परिवर्तन के साथ विकास अथवा ह्रास होता है। अतः प्राचीन अर्थ व्यवस्था के रूप में वैदिक कालीन आर्थिक व्यवस्था के साथ बुद्ध कालीन आर्थिक स्थिति की तुलनात्मक समालोचना कर इसका विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य केवल ऐतिहासिक अथवा दार्शनिक पृष्ठभूमि को उपस्थापित करना नहीं है। इसका मूल उद्देश्य भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं तत्कालीन व्यवस्था के समृद्धता का ज्ञान कर वर्तमान में लागु करना है। आधुनिक वैश्विक समस्याओं के निदान में भगवान् बुद्ध का विचार किस प्रकार से उपयुक्त है इसका विचार शोध में किया गया है।

भगवान् बुद्ध के इस विचार ने विश्व के आर्थिक सिद्धान्त को प्रभावित किया। आधुनिक अर्थशास्त्री उपभोग को साध्य तथा भूमि एवं पूँजी को साधन मानते है। यदि अधिकतम संसाधन उपलब्ध हो जाये तो मनुष्य उनका भी भौतिकता के चरम का साध्य मान कर अत्यधिक उपयोग कर सकता है। भगवान् बुद्ध की दृष्टि से साध्य एवं साधन का अर्थ अलग है। आधुनिक आर्थिक व्यवस्था में किसी व्यक्ति के जीवन स्तर का मूल्यांकन उसकी उपभोग क्षमता के आधार किया जाता है। बौद्ध जीवन प्रणाली मध्यम मार्गाश्रित होने के कारण साधारण जीवन शैली एवं सीमित उपभोग की प्रवृत्ति पर बल देती है। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का मापदण्ड मध्यम मार्ग है। वह दरिद्रता और धनिकता का

महिमा मण्डन नहीं करते। भगवान् बुद्ध ने जिस प्रकार से दो अतियों को त्याग कर मध्यम मार्ग का अनुगमन करने का उपदेश दिया है उसी प्रकार आर्थिक व्यवस्था पर भी यह लागु किया जा सकता है। उपलब्ध भौतिक साधनों का संयमित उपभोग, आवश्यकता एवं अतिरेक का ध्यान रखना तथा इच्छाओं पर अंकुश ही मध्यम मार्ग की जीवन शैली का सूत्र है।

आधुनिक अर्थव्यवस्था में, मनुष्य का जीवनमान उसकी वस्तु उपभोगिता पर निर्भर करता है, विचार करता है। किन्तु बौद्ध आर्थिक व्यवस्था मर्यादित उपभोगिता के आधार पर मनुष्य का जीवनमान को सुनिश्चित कराती है। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था में गरीब और अमीर होने का महिमा गान नहीं है, उन्होंने जीवन का मध्यम मार्ग स्वीकार किया है। यह मध्यम मार्गा पर निर्भर जीवन संसाधनों के मर्यादित उपयोगिता पर आधारित है। आधुनिक अर्थशास्त्री उपभोगिता अथवा उपयोगिता को साध्य और भूमि, श्रम एवं पूँजी को साधन मानते है। उनके अनुसार अधिकाधिक साधनों की उपलब्धता कर देने से मनुष्य को उपभोग को साध्य मान कर उपयोगिता की जा सकती है। किन्तु बौद्ध आर्थिक व्यवस्था में साध्य और साधन का अर्थ अलग है।

सरलता और अहिंसा यही बुद्ध के आर्थिक व्यवस्था का मुख्य सूत्र है। इस विचार का मूलाधार 'सम्यक् आजीव' है। सम्यक् आजीविका के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति सादगीपूर्ण जीवनयापन कर सकता है। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था में मनुष्य का सर्वोच्च धेय्य सुखी जीवन यापन करना है। उपभोगिता और उपयोगिता से मनुष्य सुख कम और ज्यादा मानसिक और शारीरिक कष्ट को प्राप्त करता है। इसलिए भगवान् बुद्ध के द्वारा प्रतिपादित सम्यक् आजीव कि वर्तमान में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

पालि त्रिपिटक की इन्हीं विशेषताओं से प्रभावित होकर प्रस्तुत अध्ययन में तत्कालीन आर्थिक संस्थाओं की समालोचना कर वर्तमान में बौद्ध मूल्यों पर आधृत बौद्ध आर्थिक व्यवस्था की परिकल्पना को प्रस्तुत किया गया है। जो कई अर्थों में इस विषय पर अपने पूर्व के अध्ययनों से अलग एवं विशिष्ट है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्राथमिक स्त्रोत

- अङ्गुत्तरनिकायपालि, भाग 1-3, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009.
- अङ्गुत्तरनिकायपालि, भाग 4, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2002.
- अट्ठसालिनी, पी. वी. बापट, भण्डारकार ओरिएण्टल सीरिज, इंस्टिट्यूट, पूना, 1942.
- अथर्ववेद, सायण भाष्य सहित, (सम्पा.), प. रामस्वरूप शर्मा गौड़, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2003.
- अभिधम्मपिटके विभङ्गप्पकरणपालिया सम्मोहविनोदनी नाम अट्ठकथा, मुखर्जी, एस्., नव नालन्दा महाविहार ग्रन्थमाला, बिहारराजकीयेन पालिपकासनमण्डलेन पकासिता, नालन्दा, बिहार, 1961.
- अर्थशास्त्र, कौटिल्यकृत, (हिन्दी अनु.), वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, पंचम संस्करण, 2006.
- अष्टाध्यायी, पाणिनिकृत, सम्पा., गोपाल दत्त पाण्डेय, चौखम्भा सुरभारती, वाराणसी, 1992.
- आपस्तम्बपरिभाषासुत्रम्, (सम्पा.), महादेव शास्त्री, मैसूर, 1893.
- इतिवुत्तक अट्ठकथा (परमत्थदीपनी), मिथिलेश्वर प्रसाद, नव नालन्दा महाविहार ग्रन्थमाला, बिहारराजकीयेन पालिपकासनमण्डलेन पकासिता, नालन्दा, बिहार, 1975.
- इतिवुत्तक, भिक्खु धर्मरक्षित, सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली, 2013.
- ऋग्वेद, सायण भाष्य सहित, (अनु.), पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2007.

- ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, स्वामी दयानन्द सरस्वती, परोपकारिणी सभा, अजमेर, 1934.
- ऐतरेय आरण्यक, सायण भाष्य सहित, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली-38, (सम्पा.), हरिनारायण आपटे, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, शालिवाहन शक सं., 1930.
- ऐतरेय ब्राह्मण, सायणाचार्य कृत वेदार्थ भाष्य सहित, सम्पा., सुधाकर मालवीय, प्राच्य भारतीय ग्रन्थमाला-१४, वाराणसी, 1990.
- कालिदासकृत रघुवंशम्, पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र, बम्बई, 1829.
- चुल्लवग्गपालि, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2005.
- चुल्लवग्गपालि, भिक्खु जगदीसकस्सपो, नवनालन्दा महाविहार ग्रन्थमाला, बिहारराजकीयेन पालिपकासनमण्डलेन पकासिता, नालन्दा, बिहार, 1956.
- छान्दोग्य उपनिषद्, भाष्यकार पं. शिवशंकर शर्मा, हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, रोहतक, 2000.
- जातक-अट्ठकथा, भाग 1-2, (अनु.), भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2006.
- जातक-अट्ठकथा, भाग 3, (अनु.), भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2007.
- जातक-अट्ठकथा, भाग 4, (अनु.) भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2009.
- जातक-अट्ठकथा, भाग 5 , (अनु.), भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2011.
- जातक-अट्ठकथा, भाग 6, (अनु.), भदन्त आनन्द कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2013.

- जैमिनीय सूत्र, सम्पा., पण्डित श्रीअच्युतानन्द झा, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1943.
- थेरगाथा, विमलकीर्ति, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012.
- थेरगाथापालि, "थेरीगाथापालि", भाग 1, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2020.
- दीघनिकायपालि, (2.महावग्गो), भिक्खु जगदीसकस्सपो, नव नालन्दा महाविहार ग्रन्थमाला, बिहारराजकीयेन पालिपकासनमण्डलेन पकासिता, नालन्दा, बिहार,1958.
- दीघनिकायपालि, भाग 1-2, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009.
- दीघनिकायपालि, भाग 3, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2021.
- धम्मपद-अट्ठकथा (प्रथम भाग), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, (अनु.), बौद्ध आकर ग्रन्थमाला, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी 2000.
- धम्मपद-अट्ठकथा, (तृतीय भाग), शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, (अनु.), बौद्ध आकर ग्रन्थमाला, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी 2000.
- धम्मपदपालि, भिक्खु जगदीसकस्सपो, नव नालन्दा महाविहार ग्रन्थमाला, बिहारराजकीयेन पालिपकासनमण्डलेन पकासिता, नालन्दा, बिहार, पुनर्प्रकाशित 2017.
- नारदस्मृति, रामचन्द्र वर्मा शास्त्री, डायनेमिक पब्लिकेशन, मेरठ, उ. प्र.
- निदानकथा (जातकट्ठकथामागता), महेश तिवारी, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 1970.
- निरुक्त, यास्ककृत, प. मुकुन्द झा, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1989

- पाचित्तियपालि, भिक्खु जगदीसकस्सपो, नव नालन्दा महाविहार ग्रन्थमाला, बिहारराजकीयेन पालिपकासनमण्डलेन पकासिता, बिहार, पुनर्प्रकाशित, 2017.
- ब्रह्मसूत्र, शाङ्करभाष्य-रत्नप्रभा भाषानुवादसहित, (सम्पा.), श्रीचण्डीप्रसादशुक्ल तथा श्रीकृष्णपन्तशास्त्री, अच्युतग्रन्थमाला, काशी, 1956.
- मज्झिमनिकायपालि, भाग 1, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2021.
- मज्झिमनिकायपालि, भाग 2, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2007.
- मज्झिमनिकायपालि, भाग 3, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2020
- मनुस्मृति, (सम्पा.), गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, लखनऊ, 1917.
- महर्षिवेदव्यास-प्रणित, श्रीमद्भागवत पुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2071.
- महावंसटीका, श्रीधर वासुदेव सोहनी, नव नालन्दा महाविहार ग्रन्थमाला, बिहारराजकीयेन पालिपकासनमण्डलेन पकासिता, नालन्दा, बिहार, 1971.
- महावग्गपालि, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2021.
- मुक्तिकोपनिषद्, (सम्पा.), पण्डित जिनचन्द्र विद्यासागर, कलकत्ता, 1872.
- मुण्डकोपनिषद्, (सानुवाद), शाङ्करभाष्यसहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1992
- यजुर्वेद, स्वामी दयानन्द सरस्वती भाष्य, श्रद्धानन्द अनुसन्धान प्रकाशन केन्द्र, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, 2009.

- याज्ञवल्क्य स्मृति, डॉ. उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1967.
- वात्स्यायन, कामसूत्र, (सम्पा.), रामानन्द शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 2001.
- विनयपिटक, सांकृत्यायन, राहुल, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013.
- शतपथ ब्राह्मण, (हिन्दी अनु.), पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 2010.
- श्रीमद्भगवत्पञ्जलिमुनिविचरितं, व्याकरणभाष्यम्, (सम्पा.), श्रीगुरुप्रसादशास्त्री, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999.
- श्वेताश्वतरोपनिषद्, (सानुवाद), शाङ्करभाष्यसहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1995
- संयुत्त-निकाय, पहला भाग, (सगाथा वर्ग, निदान वर्ग, खन्ध वर्ग), भिक्षु जगदीश काश्यप एवं भिक्षु धर्मरक्षित, (अनु.), महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, ई.सं. 1954
- संयुत्तनिकायपालि, भाग 1-4, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008.
- सायण तैतिरीयसंहिताभाष्य भूमिका, (सम्पा.), श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, किल्ला-पारडी, जिला-बलसाड, गुजरात, 1983.
- सासनवंसो, च.सु., उपासक, नव नालन्दा महाविहार ग्रन्थमाला, बिहारराजकीयेन पालिपकासनमण्डलेन पकासिता, नालन्दा, बिहार,1961.
- सुत्तनिपातपालि, (सम्पा. एवं अनु.), स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2021.

द्वितीयक स्त्रोत

- उपध्याय,भरतसिंह, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, इलाहाबाद, 2009.
- उपाध्याय, जगन्नाथ, भगवान् बुद्ध, बौद्ध धर्म और उनका दर्शन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016.
- उपाध्याय, बलदेव, भारतीय दर्शन, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2021.
- उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन वाराणसी, 2001.
- उपाध्याय, भगवतशरण, प्राचीन भारत का इतिहास, (प्रारम्भ से 1200 ई. तक), ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, 1946.
- काणे, पी. बी., धर्म शास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1992.
- गुप्ता, देवेन्द्र कुमार, प्राचीन भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था, न्यू भारतीय बुक कारर्पोरेशन, दिल्ली, 2004.
- गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1960.
- गोयल श्रीराम, विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ, भाग 01, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1963.
- जैन, कोमलचन्द्र, पालि साहित्य का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1987.
- झा, डी. एन., प्राचीन भारत, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2019.
- त्रिपाठी, हवलदार, बौद्धधर्म और बिहार, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, 1960.

- दीक्षित, शंकर बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिषशास्त्र, हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश शासन, 1975.
- पण्डित भगवद्दत्त, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, वैदिक अनुसन्धान संस्था, माडल टाऊन, पंजाब, 1935.
- पाण्डेय, विजय लक्ष्मी, बौद्ध संघ का स्वरुप एवं विकास, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1997.
- बापट, पी. बी., बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 2010.
- मजूमदार, रमेशचन्द्र, प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2019.
- मिश्र, गिरिजा शंकर प्रसाद, प्राचीन भारत का इतिहास, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1996.
- मोतीचन्द्र, सार्थवाह (प्राचीन भारत की पथ-पद्धति), बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना 1953.
- विद्यालंकार, जयचन्द्र, इतिहास-प्रवेश, प्रारम्भिक काल से 18वीं शती तक, सरस्वती प्रकाशन- मन्दिर, इलाहबाद, 1911.
- विद्यालंकार, जयचन्द्र, भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जिल्द 1, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू.पी. इलाहाबाद, 1933.
- विद्यालंकार, सत्यकेतु, प्राचीन भारत, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 1978.
- शर्मा उमाशङ्कर, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, 2016.
- शर्मा, रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्, ग्रन्थ भारती, दिल्ली, 1997.

- शाक्य, ज्ञानादित्य, बौद्ध धर्म-दर्शन में ब्रह्मविहार-भावना, रिलायबल पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद, 2013
- शास्त्री, मङ्गलदेव, भारतीय संस्कृति का विकास, समाज विज्ञानं परिषद् काशी विद्यापीठ, बनारस, 1956.
- शुक्ल, हरीशङ्कर, अभिधर्म बिन्दु, काशीहिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी, 2001.
- सहाय, शिवस्वरूप, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली, 2020.
- सांकृत्यायन राहुल, महामानव बुद्ध, भारतीय बौद्ध समिति, बुद्ध विहार, लखनऊ, 1993.
- सांकृत्यायन, राहुल, बुद्धचर्य्या, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011.
- सांकृत्यायन, राहुल, बौद्ध संस्कृति, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली , 2016.
- सिंह, निरंजन, 'योगमणि', प्राचीन भारत का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर-2, 1958.
- सिंह, परमानन्द, बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2016.
- सम्राट अशोक के अभिलेख, विपश्यना विशोधन विन्यास, धम्मगिरी, इगतपुरी, नाशिक, महाराष्ट्र, 2016.
- Ambedakar, B.R. Buddha and his Dhamma, Siddharth College Publication:I, 1957.
- Ariyaratne, A.T. Buddhist Economics in Practice: in the Sarvodaya Shramadana Movement of Sri Lanka Salisbury: Sarvodaya Support Group, UK, 1999.
- Bapat, P.V. 2500 Years of Buddhism, The publication Division, Government of India, 1956.

- Basham, A.L. The Wonder that was India, Rupa co, New Delhi, 1986.
- Christopher, S. Queen& Sallie, B. King. Engaged Buddhism: Buddhist Liberation Movements in Asia, State University of New York Press, 1996.
- Dutta, N.K. Origin and Growth of Caste in India, Calcutta, 1986.
- Ernest, C.H. Ng. Introduction to Buddhist Economics' (The Relevance of Buddhist Values in Contemporary Economy and Society), Palgrave MacMillan, Springer Nature, Switzerland A.G., 2020.
- Hanh, Thich Nhat. Love in Actions: Writings on Nonviolent Social Change, Parallax Press, 1993.
- Hanh, Thich Nhat. Anger : Buddhist Wisdom for Cooling the Flames, Rider, London, 2001.
- Lama XIV, Dalai. Freedom in Exile -The autobiography of The Dalai Lama, Harper one, Collins publishers, USA, 1991.
- Lay, U. Ko. "Essence of Tipitaka", Vipassana Research Institute, Igatpuri, Maharashtra, India, 2009.
- Muller, Max. A History of ancient sanskrit literature, William and Norgate, Landon, 1860.
- Moon, Vasant (ed.). DR. BABASAHEB AMBEDKAR : WRITINGS AND SPEECHES, Vol. 15, Dr. Ambedkar Foundation, Ministry of Social Justice & Empowerment, Govt. of India 15, Janpath, New Delhi, 2020.
- Narake, Hari (ed.). DR. BABASAHEB AMBEDKAR : WRITINGS AND SPEECHES, Vol. 3, Dr. Ambedkar Foundation, Ministry of Social Justice & Empowerment, Govt. of India 15, Janpath, New Delhi, 2014.

- Schumacher, E.F. A Guide for the Perplexed, Harper & Row publishers, New York, London, 1978.
- Schumacher, E.F. Small is Beautiful: A Study of Economics as if People Mattered, Vintage Books London, 2011.
- Sivaraksa, Sulak. Conflict, Culture, Change: Engaged Buddhism in a Globalizing World, Wisdom Publications, USA, 2005.
- Sivaraksa, Sulak. Seeds of Peace: A Buddhist Vision for Renewing Society, Kled Thai Co. Ltd. Bangkok, 1992.
- Sivaraksa, Sulak. The Wisdom of Sustainability: Buddhist Economics for the 21st Century Kihei, Hawai'i : Koa Books ; North America by SCB Distributors, 2009.
- Tilak Bal Gangadhar. The Antiquity of the Vedas, Lok. Tilak Mandir, 568 Narayan Petha, Poona-2, 1955.
- Wood, Barbara, E.F. Schumacher: A Biography, Harper Collins, USA 1984.
- “His Holiness the 14th Dalai Lama on Environment Collected Statements 1987-2017”, Environment and Development Desk, The Tibet Policy Institute, Central Tibetan Administration, Dharamsala, H.P. INDIA, 2017.
- His Holiness the Dalai Lama, Study Guide for ETHICS FOR THE NEW MILLENNIUM, The Dalai Lama Foundation, March 2004.

कोशग्रन्थ एवं विश्वकोश

- काम्बले, सविता, पालि भाष्य कोश, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
- कौसल्यायन, भदन्त आनन्द, पालि-हिन्दी कोश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.
- त्रिपाठी, रमाशंकर, अमरकोषः, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2012.
- शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, (सम्पा.), अभिधानप्पदीपिका एकक्खरकोससहिता, बौद्ध भारती प्रकाशन वाराणसी, 1981.
- Aggamahapandita Buddhadatta Mahathera, English-Pali Dictionary, Motilal Banarasidass Publishers Private Limited, Delhi, 1997.
- Malalasekera, G. P., Encylopedia of Buddhism, Goverment of Ceylon, Colombo, 1961.
- Nyanatiloka, Buddhist Dictionary (Manual of Buddhist Terms and Doctrines), Buddhist Publication Society, Kandy, Sri Lanka, 1952
- Upasak, C.S., Dictionary of early Buddhist monastic terms (Based on Pali Literature), Bharati Prakashan, Varanasi, 1975.

Webliography

- http://www.tipitaka.org, 20 January 2023
- http://www.palitext.com, 12 June 2024
- http://www.epustakalay.com , 02 August 2024
- http://www.Buddhanet.com, 15 December 2024
- https://suttacentral.net/, 12 January 2025

ISSN 0975-735X

शोध दिशा

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त
UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त शोध पत्रिका

शोध अंक 61/2 जनवरी-मार्च 2023 400.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)
फोन : 0124-4076565, 09557746346
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ० मीना अग्रवाल
ए-402, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)

दिल्ली एन०सी०आर०
डॉ० अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल
07838090732

प्रबंध संपादक
डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ० शंकर क्षेम
डॉ० प्रमोद सागर

उपसंपादक
डॉ० अशोककुमार
09557746346
डॉ० कनुप्रिया प्रचण्डिया

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क
आजीवन (दस वर्ष): छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : एक हजार रुपए
यह प्रति : चार सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

अनुक्रम

स्वाधीनता-आंदोलन के आलोक में हिंदी-पत्रकारिता/ **डॉ॰ लक्ष्मी गुप्ता** 19

किसान त्रासदी और 'फाँस'/ **नवीन राय** 26

थर्ड जेंडर पर बारह हिंदी उपन्यासों का परिचयात्मक अनुशीलन 32
पूजा विश्वकर्मा, डॉ॰ शैलेन्द्र कुमार ठाकुर, डॉ॰ सुधीर शर्मा 32

स्वतंत्र लेखन का अद्‌भुत दस्तावेज : 'हादसे' आत्मकथा/ **पूनम चौहान** 42

रीतिकाल में हिंदू मुस्लिम संस्कृति का समन्वय/ **प्रो॰ राखी उपाध्याय** 48

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानियों में राष्ट्रीय-सामाजिक-सांस्कृतिक
जागरण का प्रभाव/ **कनक नंदिनी** 56

हिंदी मीडिया और भाषा/ **डॉ॰ राकेशकुमार दुबे** 62

अवधी लोकगीतों में रस-व्यंजना/ **डॉ॰ सीमा गुप्ता** 69

सम्यक् आजीव बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार : एक अध्ययन/
शुभम महेश गजभिये 75

कुसुम अंसल की कहानी में किन्नर जीवन/ **शिवानी, प्रो॰ सुचित्रा मलिक** 81

दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता और एकात्म मानववाद/ **शुभांगी** 85

केदारनाथ सिंह की कविताओं में व्यक्त भावबोध/ **श्रीमती शुभ्रा पांडेय** 89

कालगणना में सृष्टि रचना का महत्त्व/ **डॉ॰ सोनिया** 95

डॉ॰ दामोदर खड़से के उपन्यास 'बादल राग' में नारी-संघर्ष/
स्वाति पाल, डॉ॰ शशिकला सालुंखे 100

सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में जनसंपर्क विभाग द्वारा डिजिटल
मीडिया के प्रयोग का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन/ 104
सुधाकर शुक्ला, डॉ॰ नरेंद्र कौशिक 104

हिंदी की समकालीन कहानियों में महानगरीय बोध का चित्रण/
सुषमा माधवराव नरांजे 109

द्विवेदीयुगीन उपन्यासों में ग्रामीण जनजीवन की अभिव्यक्ति/ **उपदीप कौर** 113

विवेकी राय की कहानियों में सामाजिक जीवन/ **वर्षा रानी, जयनारायण** 118

औरत ही औरत की आवाज/ **डॉ॰ विजय कुमार वर्मा** 121

हिंदीभाषा और मीडिया वैश्विक परिदृश्य/ **डॉ॰ विजयबहादुर त्रिपाठी** 125

क्रांतिकारी कवि और विद्रोही संत : महात्मा कबीर/ **डॉ॰ सुधाकर शेंडगे** 130

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नई पहल/
ज्ञानेश कुमार वर्मा 138

जीवनकौशल शिक्षा तथा इसका महत्त्व/ **सत्यप्रकाश परमार** 143

ISSN 0975-735X

सम्यक् आजीव बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार : एक अध्ययन

शुभम महेश गजभिये, शोधार्थी, बौद्ध अध्ययन
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची (म०प्र०)

भारतीय इतिहास में एक व्यापक धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्रांति के लिए छठी शताब्दी इसवी पूर्व यह काल अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसी कालखंड में भारतीय जन-मानस की चेतना में परिवर्तन लाने वाले महावीर और भगवान् बुद्ध का आविर्भाव दृष्टिगोचर होता है। भारत वर्ष में इस धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्रांति के संकेत पालि बौद्ध साहित्य व जैन अर्द्ध मागधी (प्राकृत) साहित्य में परिलक्षित होते है। इस काल में निश्चय ही समकालीन दो परंपराएँ मुख्यत: द्रष्टव्य हैं यथा–श्रमण परंपरा एवं ब्राह्मण परंपरा। भारत वर्ष में उदित हुए बौद्ध और जैन दोनों ही श्रमण परंपरा ध्वजवाहक है। भगवान् बुद्ध और उनके उपदेश तो वर्तमान समय तक एक अत्यंत विस्तृत भूभाग के जनमानस पर अधिराज्य कायम किए हुए दिखाई पड़ते हैं। भगवान् बुद्ध के विचारों में न केवल आध्यात्मिक समुन्नति है वरन् जन-जीवन के समुन्नति का भी विचार दिखाई देता है।

'किसी समाज के अंदर या किसी भौगोलिक क्षेत्र के अंदर उत्पादन, संसाधनों के नियतन, तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के वितरण को आर्थिक व्यवस्था कहा जाता है।' जीवन मुक्ति के लिए भगवान् बुद्ध ने आर्य अष्टांगिक मार्ग को प्रतिपादित किया है। जीवनयापन करते हुए व्यक्ति की आजीविका किस प्रकार होनी चाहिए, वह किस प्रकार एक व्यवस्थित जीवन निर्वहन कर सके। जीविका के साधन उसके और अन्य सभी सत्वों के लिए उपकारक है अथवा हानिकारक है। इसकी सम्यक् विवेचना तथागत ने मार्ग सत्य में की है। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का यही मूल दर्शन है, जो जीवन निर्वहन के लिए अत्यंत उपयुक्त है।

संबोधि लाभ के पश्चात् भगवान् बुद्ध ने विभिन्न क्षेत्र में चारिका करते हुए जो कुछ उपदेश दिए वह त्रिपिटक में संग्रहीत है। बुद्ध उपदेशों में सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धांत, चार आर्य सत्य 'चत्तारि अरियसच्चानि'[1] अपना एक विशेष स्थान रखता है। इसी के ज्ञान के प्रवर्तन उपरान्त वे लोक में सम्यक् सम्बुद्ध के नाम से ख्यात हुए। बोधिसत्व सिद्धार्थ गोतम ने गृहत्याग करने से पूर्व जीवन में अनुभूत नाना प्रकार के दु:खों को जो देखा था, उसी का निदान उन्हें बोधि ज्ञान के प्राप्ति पश्चात्प्राप्त हुआ।विनय पिटक के महावग्ग से ज्ञातव्य है कि भगवान् बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को इन्हीं चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया था। वस्तुत: यह बुद्ध के जीवन का प्रथम धर्मोपदेश था। जिसे पालि साहित्य में 'धम्मचक्कपवत्तन' कहा जाता है। जो महत्ता की दृष्टि से भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। भगवान् बुद्ध ने अपने प्रथम उपदेश में जिन सत्यों को उद्घटित किया उसके चार विभाग किए गए हैं अत: इन्हें 'चार आर्य सत्य' कहा जाता है। वह चार आर्य सत्य हैं–दु:ख, दु:खसमुदय, दु:खनिरोध तथा दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य।

भगवान् बुद्ध के वचनों में इन चारों आर्य सत्यों की व्याख्या संक्षेप में निम्न प्रकारेण की जा

सकती है-

दु:ख आर्य सत्य–भगवान् बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा–'इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्ख अरियसच्चं जाति पि दुक्खा जरा पि दुक्खा, व्याधि पि दुक्खो, मरणम्पि दुक्खं, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं संखित्तेन पृच उपादानक्खन्धा दुक्खा।'[2] अर्थात् जन्म लेना दु:खकारक है, वृद्धावस्था भी दु:ख है, रोग भी दु:ख है, मृत्यु भी दु:ख है, अप्रिय वस्तुओं या व्यक्तियों का मिलना भी दु:ख है, प्रिय वस्तुओं या व्यक्तियों का बिछुड़ना भी दु:ख है, जिस वस्तु की इच्छा हो उसका न मिलना भी दु:ख है और संक्षेप में कहा जाय तो पंचस्कंध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) से निर्मित सत्त्व का जीवन ही दु:ख है। सब वस्तुओं या परिस्थितियों के मूल में जो यह 'दु:ख' विद्यमान है, वह वस्तुत: है क्या? इसके उत्तर में भगवान् बुद्ध ने कहा है–'पटिकूलवेदना ति दुक्खं' या 'दुक्करेन खमति इति दुक्खं'। दूसरे शब्दों में, प्रतिकूल वेदना ही दु:ख है या फिर जिसका दुष्करता या कठिनाई से वहन किया जाए वही दु:ख है।

दु:ख समुदय आर्य सत्य–भगवान् बुद्ध ने द्वितीय आर्य सत्य के स्पष्टीकरण में कहा–'इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं यायं तण्हा पोनोब्भविका नंदिरागसहगता तत्र तत्राभिनंदिनी सेय्यमिद-कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा।'[3] अर्थात् यह जो विविध तृष्णा या इच्छा है यही सभी प्रकार के दु:खों की जड़ है। यहाँ कामतृष्णा से तात्पर्य है, हमारी छ: इंद्रियों से संबंधित सुख भोगने की इच्छा, भवतृष्णा से तात्पर्य है इस संसार में बारंबार पुनर्जन्म लेते रहने की इच्छा एवं विभवतृष्णा से तात्पर्य है जन्म पुनर्जन्म लेने की प्रक्रिया से मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा। इन्हीं तीन प्रकार की तृष्णाओं से प्रेरित होकर व्यक्ति विभिन्न प्रकार के कुशल अकुशल कार्य करता है तथा नानाविध दु:खों को भोगता है।

द्वितीय आर्य सत्य के संबंध में हम कह सकते हैं कि भगवान् बुद्ध ने मनुष्य के दुखों का कारण तृष्णा को बतलाया। वह तृष्णा जो हमारे स्वयं की होती है।

अनेकजातिसंसारं सन्धाविसं अनिब्बिसं।
गहकाराकं गवेसंतो दुक्खा जाति पुनप्पुनं।।
गहकारक! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसिं
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखितं।
विसंङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा।।[4]

अर्थात् गृहकारक को ढूँढते हुए मैं अनेक जन्मों तक लगातार संसार में मैं दौड़ता रहा। बार बार जन्म लेना दु:ख है। गृहकारक! तू दिखाई दे गया। अब फिर घर नहीं बन सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं। घर का शिखर बिखर गया। चित्त संस्कार रहित हो गया। तृष्णाओं का क्षय हो गया।

बुद्ध अनीश्वरवादी थे। उन्होंने किसी भी ऐसी ईश्वर जैसी सत्ता को मानने से इंकार कर दिया जो कि अजर, अमर, अविनाशी हो और सृष्टि का सृजन करता है। ऐसा मानने के चलते बुद्ध ने दु:ख को अकारण या ईश्वर जैसी किसी भी अलौकिक सत्ता द्वारा प्रदत्त नहीं माना। भगवान् बुद्ध ने कहा है–

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो पयो सिया।
अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं।।[5]

अर्थात् मनुष्य अपना स्वामी आप है, दूसरा और कौन स्वामी हो सकता है? अपने को दमन

करने वाला दुर्लभ स्वामित्व को प्राप्त करता है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि दुःख होने के पीछे कोई-न-कोई कारण होता है और वह कारण है 'तृष्णा' जो तीन प्रकार की होती है-कामतृष्णा, भवतृष्णा एवं विभवतृष्णा। वह तृष्णा भी किन्ही दूसरों के कारन नहीं अपितु हमारे कारण होती है।

दुःख निरोध आर्य सत्य-तृतीय आर्यसत्य में बुद्ध ने स्पष्ट किया कि 'इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खनिरोधं अरियसच्चं यो तस्सा येव तण्हाय असेसविरागनिरोधो चागो पटिनिस्सग्गो मुत्ति अनालयो।'[6]

दुःख निरोध आर्यसत्य पर प्रकाश डालते हुए बुद्ध कहते हैं चूँकि दुःख कारण उद्भूत है, अतः इन कारणों को दूर करना भी संभव है। इन तृष्णाओं को दूर करने से ही दुःख को रोका जा सकता है। तृष्णाएँ जितनी ही कम होंगी, दुःख की मात्रा भी उतनी ही कम होगी। इस क्रम में तृष्णाओं के बिल्कुल समाप्त हो जाने की स्थिति में दुःख भी बिल्कुल ही समाप्त हो जाएगा। दुःखों के स्थाई रूप से समाप्त हो जाने को अवस्था को ही निर्वाण की अवस्था कहते हैं।

बुद्ध ने इस बात पर जोर देकर कहा कि दुःख का विनाश उसके कारणों के विनाश से ही संभव है। अतः वे जब तृष्णा के समूल नाश, उस पर रोक, उसका त्याग, उससे मुक्ति आदि की बात करते हैं तो उनका स्पष्ट निर्देश दुःख से सर्वथा मुक्ति अर्थात् निर्वाण की ओर होता है। इस प्रकार तृतीय आर्य सत्य में दुःख निरोध की संभावना पर प्रकाश डाला गया है।

दुःखनिरोध गामिनीप्रतिपदा आर्यसत्य-यदि दुःख के कारणों की उत्पत्ति एवं उनका विनाश संभव है, तो उसके लिए कोई न कोई उपाय या मार्ग अवश्य होना चाहिए और यही मार्ग श्दुःखनिरोध गामिनीपटिपदा (मार्ग) कहलाता है। इसे 'मध्यम मार्ग' भी कहा गया है, क्योंकि यह 'कामेसुकामसुखल्लिकानुयोग' (अर्थात् सांसारिक सुखों में अत्यधिक लिप्त रहना) एवं 'अत्तकिलमथानुयोग' (आत्मशुद्धि के नाम पर शरीर को अत्यधिक कष्ट देना) जैसे दो अतियों या अंतों का त्याग कर मध्य का मार्ग है। इसमें आठ चरण या अंग हैं, जिनके चलते इसे 'आर्य अष्टाङ्गिक' मार्ग भी कहा जाता है। ये आठ अंग हैं-सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मांत, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि।' इन आठ अंगों तीन भागों मे विभाजित कर भी संक्षिप्त किया जाता है यथा-प्रज्ञा, शील तथा समाधि के। इसके अनुसार प्रज्ञा के अंतर्गत सम्यक् दृष्टि तथा सम्यक् संकल्प आते हैं। शील के अंतर्गत सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मांत तथा सम्यक् आजीव एवं समाधि के अंतर्गत सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि।

इन आठों अंगों को संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार से समझाया जा सकता है-

सम्यक् दृष्टि-सम्यक् दृष्टि का अर्थ है कि हम हर वस्तु को उसके यथार्थ रूप में देखें अर्थात् यह अच्छी तरह समझें कि हर वस्तु अनित्य, दुःख तथा अनात्म है। इन त्रिलक्षणों की दृष्टि से देखने पर किसी भी वस्तु में राग या तृष्णा उत्पन्न नहीं होती और पहले से होने पर भी वह समाप्त हो जाती है।

सम्यक् संकल्प-यदि हमारी दृष्टि सम्यक् है, तभी हम अपने द्वारा लिए जाने वाले संकल्प को सम्यक् कह सकते हैं। सम्यक् रूप से लिए गए संकल्प से हम अपने लिए कुशल व कल्याणकारी कार्य करने की दिशा में दृढ़ता से बढ़ सकते हैं।

सम्यक् वाचा (वचन)-सम्यक् वचन का अर्थ है मिथ्यावचन से विरत रहकर उचित तथा मधुर वचन बोलना। झूठ बोलना, चुगली करना, कठोर वचन बोलना तथा व्यर्थ की बकवास करना-ये चार प्रकार के मिथ्या व निंदनीय वचन कहे गए हैं। इनसे विरत रहकर सत्य बोलना,

परनिंदा न करना, मृदुवचन बोलना तथा आवश्यकतानुसार उचित बोलना ही सम्यक् वचन है।

सम्यक् कर्मांत–हिंसा, चोरी, व्यभिचार इत्यादि अकुशल कर्मों से विरत रहकर कुशल कर्म करना ही सम्यक् कर्मांत कहलाता है।

सम्यक् आजीव–अन्य बातों के साथ-साथ बुद्ध ने आजीविका के साधनों की पवित्रता पर भी काफी बल दिया। अपना पेट भरने के लिए दूसरों के समक्ष झूठ-मूठ ही अलौकिक शक्ति का दावा या प्रदर्शन करना, किसी भी स्त्री-पुरुष का संवाद अन्य स्त्री-पुरुष के पास पहुँचाना, अपनी या किसी अन्य की बीमारी का बहाना कर भोजन पाना इत्यादि भिक्षुओं के लिए एवं हथियारों का व्यापार, प्राणी का व्यापार, मांस-मद्य आदि का व्यापार इत्यादि गृहस्थों के लिए मिथ्या आजीव माने गए। इन सबों से विरत रह कर उचित ढंग से जीविका चलाना ही सम्यक् आजीव है।

सम्यक् व्यायाम–इंद्रियों पर संयम करना तथा मन में उठने वाली उत्पन्न हो चुकी बुरी भावनाओं को समाप्त करना, अच्छी भावनाओं को उत्पन्न करने का प्रयास करना, अभी तक उत्पन्न नहीं हुई बुरी भावना को उत्पन्न होने से रोकना एवं अभी तक उत्पन्न हो चुकी अच्छी भावना को बढ़ाने एवं सशक्त करने का प्रयत्न करना यही सम्यक् व्यायाम है।

सम्यक् स्मृति–स्मृति का सामान्य अर्थ होता है-स्मरण करना। किंतु बौद्ध दर्शन में इसका प्रयोग अधिक व्यापक है। यहाँ स्मृति का अर्थ है मानसिक जागरूकता। यह मन रूपी द्वार पर स्थित सतत जागरूक द्वारपाल की भाँति है जो अवांछित धर्मों को मन में प्रवेश करने से रोकती है तथा वांछित धर्मों को ही वहाँ प्रवेश करने देती है। काया, वेदना, चित्त और मन के धर्मों की ठीक ठीक स्थितियों अर्थात् उनके मलिन होने, क्षणभंगुरता आदि का सतत ध्यान रखना सम्यक् स्मृति है।

सम्यक् समाधि–कहा गया है–'कुसलचित्तस्स एकग्गता समाधि'[7] अर्थात् कुशल चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। अलोभ, अद्वेष तथा अमोह–ये तीन कुशल मूल हैं। इनसे संप्रयुक्त चित्त या कर्म को ही कुशल चित्त या कुशल कर्म कहते हैं। इंद्रियों के यत्र-तत्र भटकाव को रोककर चित्त को किसी एक विषय पर एकाग्र करना ही समाधि या सम्यक् समाधि है।

अस्तु, शोध आलेख का मुख्य अभिधेय सम्यक् आजीव का आजीव अर्थात् आजीविका जीवन निर्वाह के साधनों की प्राप्ति करना। मिथ्या आजीव का त्याग करके सम्यक् आजीव को स्वीकार करने का उपदेश त्रिपिटक में बार-बार मिलता है। मिथ्या आजीव को अधर्म और सम्यक् आजीव को धर्म कहा गया है। अंगुत्तर निकाय में इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

'मिच्छाआजीवो, भिक्खवेअधम्मो, सम्माआजीवोधम्मो, ये च मिच्छाआजीवकेपच्चया अनेक पापका अकुसला धम्मा संभवन्ति, अयं, अनत्थो; सम्माआजीवपच्चया च अनेके कुसला धम्मा भावनापारिपूरिं गच्छन्ति, अयं अत्था।'[8]

कौन-कौन से व्यवसाय मिथ्या आजीव हैं, इसका उल्लेख अंगुत्तर निकाय में मिलता है। उपासक वग्ग के वाणिज्जसुत्त में उपासकों के लिए निम्न आजीव का निषेध किया गया है। 'पञ्चिमा भिक्खवे वणिज्जा उपासकेन अकरणीया। कतमा पञ्च। सम्थवणिज्जा, सत्तवणिज्जा, मंसवणिज्जा, मज्जवणिज्जा, विसवणिज्जा।[9]

सत्थवणिज्जाति आवुधभंडं कारेत्वा तस्स विक्कयो अर्थात् आयुध आदि बना कर उसका विक्रय करना। सत्तवाणिज्जाति मनुस्स विक्कय अर्थात् मनुष्य एवं जीवों का विक्रय करना। मंसवणिज्जा तिसूकरमिगादयो पोसेत्वा तेसं विक्कयो अर्थात् सूकर मृग आदि प्राणिओं का पोषण कर उनका मांस के लिए विक्रय करना। मज्जवणिज्जा तियं किञ्च मज्जं कारेत्वा तस्स विक्कयो अर्थात् मद्य आदि

 ISSN 0975-735X

नशाकारक चीजों का उत्पादन करके उनके विक्रय करना। विसवणिज्जा ति विसं कारेत्वा तस्स विक्कयो अर्थात् विष आदि का उत्पादन करके उनका विक्रय करना।

आजीव के संबंध में धर्म और अधर्म की चर्चा पूर्वोक्त है। आजीव का संबंध आर्थिकता और जीवनयापन के साथ भी है। धर्म शब्द का एक अर्थ नहीं है, धर्म एक बहुवार्थक शब्द है। यहाँ देशना, नियम और सदाचार अर्थ अभिप्रेत है। भगवान् बुद्ध ने आध्यात्मिक समुन्नति और व्यावहारिक जीवन का समन्वय कर मध्यम मार्ग का प्रतिपादन किया है। जीवन चरितार्थ चलने के लिए केवल अर्थ की ही आवश्यकता नहीं अपितु सदाचार की आवश्यकता है। इसलिए तथागत द्वारा उपदिष्ट सम्यक् आजीव समाज को अधिक नैतिक और सुदृढ़ करने की लिए नितांत आवश्यक है। Small is beautiful इस पुस्तक के लेखक E.F.S. Schumacher अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि 'Right livelihood is one of the requirement of the Buddha's Noble Eight Fold Path- It is clear, therefore, that there must be such a thing as Buddhist Economy.'[10] इस उद्धरण से यहीं स्पष्ट होता ही कि सम्यक् आजीविका ही बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का अर्थगर्भ है। वह सम्यक् आजीविका पंचसील से मार्ग से ही क्रियान्वित हो सकती है। प्राणी हिंसा करना, न दिए हुए वस्तु को ग्रहण करना अर्थात् चोरी करना, व्यविचार करना, असत्य बोलना एवं शराब आदि नशा का सेवन करना, यह मिथ्या आचरण है। जो इस प्रकार आचरण करते हुए जीवनयापन करते हैं वह मिथ्या आजीविका कहलाती है। इसके विपरीत शील का पालन करते हुए जीविकोपार्जन करना सम्यक् आजीव है। सम्यक् आजीव के संबंध में डॉ॰ अंबेडकर अपने Buddha and his Dhamm ग्रंथ में लिखते हैं कि 'Every individual Has to earn his livelihood- But there are ways and ways of earning ons's livelihood- Some are bad: some are good. Bad ways are those which cause injury or injustice to others. Good ways are those by which the individual earns his livelihood without causing injury or injustice to others- This is samma ajivo.'[11] तात्पर्य यह है की प्रत्येक व्यक्ति को अपना चरितार्थ चलाना है, परंतु चरितार्थ के अनेक मार्ग है। कुछ बुरे हैं और कुछ अच्छे मार्ग हैं जिसके द्वारा औरों पर अन्याय या हानि होती हो वह बुरे मार्ग हैं। औरों पर अन्याय एवं हानि न करते हुए जीविका चलाने के लिए अवलंबित मार्ग अच्छे होते हैं। यही सम्यक् आजीव का मूल अभिधेय होता है।

आधुनिक अर्थव्यवस्था में, मनुष्य का जीवनमान उसकी वस्तु उपभोगिता पर निर्भर करता है, विचार करता है। किंतु बौद्ध आर्थिक व्यवस्था मर्यादित उपभोगिता के आधार पर मनुष्य का जीवनमान को सुनिश्चित कराती है। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था में गरीब और अमीर होने का महिमागान नहीं है, उन्होंने जीवन का मध्यम मार्ग स्वीकार किया है। यह मध्यम मार्ग पर निर्भर जीवन संसाधनों के मर्यादित उपयोगिता पर आधारित है। आधुनिक अर्थशास्त्री उपभोगिता अथवा उपयोगिता को साध्य और भूमि, श्रम एवं पूँजी को साधन मानते हैं। उनके अनुसार अधिकाधिक साधनों की उपलब्धता कर देने से मनुष्य को उपभोग को साध्य मान कर उपयोगिता की जा सकती है। किंतु बौद्ध आर्थिक व्यवस्था में साध्य और साधन का अर्थ अलग है। Small is beautiful में लेखक E.F.S. Schumacher कहते हैं कि 'The Keynote of Buddhist economics, therefore, is simplicity and non-violence.'[12]

सरलता और अहिंसा यही बुद्ध के आर्थिक व्यवस्था का मुख्य सूत्र है। इस विचार का मूलाधार 'सम्यक् आजीव' है। सम्यक् आजीविका के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति सादगीपूर्ण जीवनयापन

कर सकता है। बौद्ध आर्थिक व्यवस्था में मनुष्य का सर्वोच्च ध्येय सुखी जीवनयापन करना है। उपभोगिता और उपयोगिता से मनुष्य सुख कम और ज्यादा मानसिक और शारीरिक कष्ट को प्राप्त करता है। इसलिए भगवान् बुद्ध के द्वारा प्रतिपादित सम्यक् आजीव कि वर्तमान में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

संदर्भ

1. भदंत आनंद, कौसल्यायन, पालि-हिंदी कोश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ॰ 37
2. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, महावग्गपालि, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2013, पृ॰ 13
3. तथैव
4. भदन्त आनंद, कौसल्यायन, धम्मपदं, बुद्धभूमि प्रकाशन, नागपुर, 1993, पृ॰ 38
5. तथैव, पृ॰ 40
6. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, महावग्गपालि, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2013, पृ॰ 13
7. भिक्षु धर्मरक्षित, विसुद्धिमग्ग, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ॰ 147
8. स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, अंगुत्तरनिकायपालि, अट्ठक निपात, दान वग्ग, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2013
9. तथैव
10. E.F.S. Chumacher, "Small is beautiful", India Book Distributors, Bombay-21, Ed.1983, P.44
11. Ambedakar, B.R., "Buddha and his Dhamma" Siddharth College Publication:I, 1957, P.125-126
12. E.F.S. Chumacher, "Small is beautiful", India Book Distributors, Bombay-21, Ed.1983, P.60

Shubham Mahesh Gajbhiye
Shanti Vihar, Near Telephone Exchange,
Ward No.05, Sanchi 464661 M. P.
Mob. 8380852588
shubhamchitta@gmail.com

Praxis International
Journal of Social Science and Literature

ISSN: 2581-6675
Impact Factor:
SJIF 2023= 5.918

VOL. 08, NO. 03

Cover Page
Download

Presentation of Historical Political Allegory through the Character of Baba: A Historical Perspective from *Clear Light of Day*
Marzia Rahman Rochi
Download (Page No. 1-6)

Struggle for Protection of Justice in Recent Context --!
Naresh Das
Download (Page No. 7-10)

Sexual Abuses Against Children and Role of Socio-legal Institutions in Rehabilitation of the Victim Survivors in Assam under the POCSO Act with special reference to its Barpeta & Bajali Districts: A socio-legal Study
Mitali Talukdar
Download (Page No. 11-17)

Health Care Services for Transgender Individuals in Post Colonial India: A Review
Nivedita Chakraborty
Download (Page No. 18-31)

***Swaraj* and *Sandhya* - Two Different Trends of formation of Nationalistic thought in Colonial India**
Upama Biswas
Download (Page No. 32-39)

Women Writers of Tripura: Voices from the Margins
Rajib Majumder
Download (Page No. 40-52)

Discerning the Situations of Spiritual Sterility in Thomas Stearns Eliot's *The Waste Land*
Dr. Lok Raj Sharma
Download (Page No. 53-62)

The Solution of Modern Economic Crises: In the Perspective of Buddhist Ethics and Economics
Shubham Mahesh Gajbhiye
Download (Page No. 63-70)

The National Curriculum Framework 2020: Shaping School Education in India
Alauddin Middya, Dr. Bimal Mandal
Download (Page No. 71-77)

From Folk Art to Social Media: The Evolution of Visual Communication in Development Discourse in India
Sumana Mitra, Dr. Abhishek Das
Download (Page No. 78-87)

Civil Society Movement: A Comparison between Niyamgiri and POSCO Movements in Odisha
Ananya Asmita
Download (Page No. 88-94)

PIJSSL

Praxis International Journal of Social Science and Literature

A Peer-reviewed & Open Access eJournal with SJIF 2023 = 5.918, ISSN: 2581-6675

Vol. 08, No. 03, March 2025 DOI: 10.51879/PIJSSL/080308

E-mail: editor.pijssl@gmail.com, **Website:** www.pijssl.com

The Solution of Modern Economic Crises: In the Perspective of Buddhist Ethics and Economics

Shubham Mahesh Gajbhiye

Ph.D. Research Scholar, Department of Buddhist Philosophy, Sanchi University of Buddhist-Indic Studies, Sanchi, Raisen, Madhya Pradesh, India

E-mail: shubhamchitta@gmail.com

Abstract

Modern economic crises–which are characterized by inequality, environmental damage, and financial instability – show systematic flaws in classic growth-focused theories focused on materialism and profit maximization. Emphasizing interdependence, holistic well-being, and moral responsibility, this dissertation analyses Buddhist ethics and economics as a transformative framework to confront these issues. Buddhist economics highlights the notions of 'right livelihood' (ethical action), the 'middle way' (balanced consumption), and the elimination of suffering ('dukkha), in contrast to traditional paradigms that place a first emphasis on unlimited consumption and competitiveness. The root causes of crises, rooted in the Four Noble Truths, it names greed ('lobha'), aversion ('dosha'), and delusion ('moha'), hence calling for a shift from self-interest to social benefit. Buddhist economics criticizes GDP-driven metrics and instead argues for indicators of social equity, environmental health, and spiritual fulfilment. Actionable approaches to sustainability exist from notions such as the 'sufficiency economy'– promoting moderation and resilience. Case studies proving the feasibility of incorporating Buddhist ideals into policy– such as the Gross National Happiness Index for Bhutan– demonstrate how material needs are successfully combined with cultural and environmental preservation. Reconciling these principles with world capitalism and eliminating structural injustices remains problematic. But Buddhist economics promotes systemic change through meditation, compassion and ways of redefining 'progress' outside of consumption. This study proposes that incorporating Buddhist ethics into economic debates provides an ethical compass to balance exploitative actions and offers a paradigm under which human and planetary flourishing are interdependent objectives. Buddhist principles offer a relevant, holistic answer to modern issues by raising awareness of the ethical consequences of consumerism and reorienting economic systems towards shared well-being, thus linking ancient wisdom to current ecological imperatives.

Keywords: *Buddhism, Economy, Tripitaka, Environment, Ethics etc.*

Introduction

The period from 600 BCE to 400 BCE is important in Indian history. In this period, epoch-changing events took place on the horizon of India's history. These events gave new dimensions to the political and religious life of India. Today, everywhere in the whole world, there is talk of violence, hysteria, despair, hatred, and malice. Due to this, not only is instability increasing, but the pace of development is also slowing down. Even humans are questioning the future. Today we are living in terrible times, and man is becoming the enemy of man. If we pay attention to these challenges and look to the ancient traditions and ideas of water to overcome them, Lord Buddha's thoughts appear before us like a jewel whose light rays can dispel the

This is an open access article licensed under https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0

darkness of our illusions. Many of Lord Buddha's practices, thoughts, and wisdom are milestones for human welfare, as Lord Buddha has contributed significantly to building a non-socialist society. Lord Buddha has said that hatred never ends, but only love ends hatred. “To find a solution, if we look to the legacy of our traditional ideals, the thoughts of Lord Buddha come before us like a jewel whose light rays can dispel the darkness of our hallucinations.

The world largely realized the potential usefulness of Buddhism after the Second World War. The way in which a nation like Japan revived and faced the world stage, the nations of the world began to understand the importance of Buddhism.

The middle path, or the eightfold path, shown by the Buddha, was unique and had a universal approach. The eightfold path by Buddha includes right action, right livelihood, right effort, and right intention, and all these four practices of the eightfold path were reiterated through modern terms by many Buddhist teachers and scholars. The eightfold path sequentially emphasizes the importance of right intention, right livelihood, right efforts, right resource utilization, and an ethical way of living. The present paper is focused on Buddha’s vision of ethics and practice. This paper examines Buddhist thought from the perspective of its potential benefits to society. This represents the ultimate stage of acceptance, and Buddha considered the welfare of all members of society.

The Buddha not only offered advice but also suggested practical ways related to individual economic welfare as well as those related to the state of humanity. He instructed the laity on the importance of improving their economic affairs. He even went into detail about saving money and spending it. According to the Cakkavattisihanada Sutta, the social cause of poverty is immorality and crimes. This undoubtedly indicated that the Buddha, though having attained the state of Enlightenment and therefore could have easily remained unaffected and aloof to worldly affairs, still actively engaged himself in trying to alleviate the daily human despairs. And he did this by choice, not compulsion. With his practical teachings, he attempted to create a middle-class society and to narrow the gap between the rich and the poor so that the big wall of separation between the two could be demolished with the active support of the common masses of both sides. Buddha had derived three fundamental laws characterizing impermanence (*anicca*), non-satisfactory nature (*dukkha*), and insubstantiality (*anatta*).

Discussion

According to Buddha, the economic aspect of a community profoundly influences its other aspects. In the Buddhist economic system, the people deliberately use state power to maximize welfare, both economic and social, from a given national income while enhancing the spiritual dimensions. The Buddha mentioned the economic aspect of life, such as, ‘Poverty is suffering in this world’ (*Anguttara Nikaya*), and its other dimension is hunger, which is the most severe form of all illnesses. From a Buddhist economic perspective, work is regarded as a purely mindful activity that brings economic advancement and social harmony. Further, human beings should be skilled, efficient, courageous, honest, and energetic in their work that brings betterment to society. Buddhist economics regards human work in terms of human fulfillment, both in material and spiritual.

The Buddha perceives life as a series of causes and effects. Buddha’s teachings offer a grand insight into the nature of reality, including practical aspects of mundane life. Buddha has given sensible guidance for the layperson and recommendations to cope with life’s difficulties. Buddhism gives appropriate guidance to combine personal progress in worldly matters with moral principles. In fact, Buddha was one of the first thinkers in history to embrace the doctrine of human equality. Buddhism stands for a society of equals where democracy prevails. Buddha believed in a classless society. In his community, the Sangha has no class system[1]. For the Buddha, all men are one in that they belong to one species. Social classes and castes are nothing but functional or occupational groupings. For Buddha, poverty was not a virtue. As previously mentioned, and as stated in the *Cakkavattisihanada Sutta*[2], poverty is the root cause of immoral behaviors such as theft, falsehood, violence, hatred, and cruelty, which often lead to criminal activity. The

Buddha said, 'Poverty is a suffering in the world for a layman.'[3] The modern world suffers from overproduction, overconsumption, and eventually global pollution. Buddha said, 'There is no river-like craving.'[4] Buddha encouraged the use of goods and services to satisfy the desire for true well-being. Buddhism offers the man a simple, moderate lifestyle, avoiding both extremes of self-deprivation and self-indulgence. Buddhism emphasizes that the government must serve the people and eliminate poverty.

Buddhism is not opposed to the accumulation of wealth, which is earned honestly. Acquisition of wealth by unlawful means is not accepted in Buddhism... he who seeks after wealth lawfully, not arbitrarily, and in so doing makes himself happy and cheerful, and also shares his wealth with others and further does meritorious deeds therewith, and yet makes use of his wealth without greed and longing without infatuation, and heedful of the danger or alive to his salvation. (*Anguttara Nikaya*). This notion was also stated by Marx, as global capitalism has brought enormous wealth for a few and misery for the vast majority, and it has generated inhuman living conditions for most people. Further, he articulated that economic disparity is the main reason for human suffering.

Buddha explained about human suffering thus,

1. All human life is suffering.
2. Ignorance, which arises from desire, particularly the desire for impermanent things, causes suffering.
3. By permanently ending human desire and craving, we can end human suffering.
4. Desire can be ended by following the "Eightfold Noble Path": right understanding, right thought, right speech, right action, right livelihood, right effort, right mindfulness, and right concentration. The Buddha thus describes the nature of suffering. The Eightfold Path leads to the extinction of suffering.[5]

The relevance of the principle can be seen today as the Prime Minister of England, Mr. Gordon Brown, while referring to the concept of Buddhism on the occasion of celebrating Wesak, a festival (marking the Lord Buddha's 2632nd birthday), mentioned that everyone could learn from the Buddhist philosophy and should reflect on the contribution the religion has made to society. Further, he mentioned, "The Four Noble Truths and the Noble Eightfold Path have brought so much peace to so many, and we can all learn from Buddhist philosophy and the practice of mindfulness."

Further, he added, "Today we should reflect on the great spiritual contribution that Buddhism has made to the world and congratulate Britain's Buddhists for their vibrant contribution to our national life. Please do pass on my best wishes to your family and friends."

In fact, the same concept can be used to overcome the economic crisis as well, as in one of the meetings of the G-20 in London, where, in a speech, St. Paul's Cathedral drew on religious doctrine and said, "When Buddhists say hurt, not others in ways that you would find hurtful."

The relevance of Buddha is becoming more relevant because of various aspects of economic ideas along with the evaluation of the relevance of their ideologies in a modern and technological era wherein the trend of consumerism has emerged and moral value has lost its identity. When we see the economic point of view of Buddha, then Buddhist economic philosophy is becoming increasingly relevant to the world as well as India today, particularly the Third World countries.

Buddhist economics is defined as a spiritual approach to economics. It explains how fundamental fears, desires, and emotions trigger economic activity. People often use the moderation principle to draw comparisons with Western economics. This essay attempts to make comparisons between Western and Buddhist economics based on some commonly known concepts. We use Hong Kong as an example to present the idea.

Craving

To begin with, it is essential to understand a basic idea in Buddhism. Buddhism upholds two kinds of desire[6], *Tanha* and *Chanda*. Tanha refers to the desire for pleasure objects, which is based on ignorance.

Chanda, the desire for well-being, is based on wisdom and helps solve problems (Payutto 1994, 7). Both of them can lead to satisfaction but in different kinds.

The concept of craving

In Western economics, they believe self-interest is the motivator of economic activity. Because of this, the economy can achieve the best result as proposed by Adam Smith, which is opposite to Buddhist economics. In Buddhism, they uphold *anatta*, or no-self. There is no such thing as "I" or "mine." They regard the self-interest approach as the road to failure. They make decisions based on the world.

Consumption

In modern economics, consumption is defined as the use of goods and services to satisfy one's needs. When there is a demand from an individual, he will consume goods and services to satisfy the desire for pleasure sensations or ego gratification. Buddhist economics defines it as "wrong consumption," which arises from *Tanha*. For "right consumption,"[7] Buddhism views it as consumption guided by *Chanda*, which does more than satisfy one's desire and also contributes to his well-being and spiritual development.

For example, food is one of the consumption items. Eating is a way to satisfy our needs. However, there are various kinds of food that we can choose from. Fast food, being the most popular food choice for Hong Kong people, upholds the value of efficiency. People frequently consume it because it can lead to fullness in the shortest period of time. Nonetheless, it is widely known that the high calories in fast food are detrimental to human health if consumed constantly. In Buddhism, it is called wrong consumption because it is harmful to human beings. Oppositely speaking, right consumption refers to food that is good for health.

As a Buddhist, you believe that every economic system (i.e., a more or less coherent system of behavioral conditioning [*sankhara*][8] in handling scarce resources) has its origin in the "mind" [*nama*][9]. All economic systems ranging from capitalism to socialism and other idealistic altruistic systems have been devised by man to satisfy the three basic motivations of anger [*dosa*][10], greed [*lobha*][11], and blindness [*moha*][12]. Three important reinforcing motivations are fear [*bhaya*][13], lust [*raga*][14], and selfishness. In this sense, it is not the economic systems that stir greed, but it is the naturally conditioned greed of man himself that produces postmodern capitalism. The ultimate cause is rebirth in ignorance (*avijja*)[15], which necessitates the practice of *sankhara*. People's anger, greed, selfishness, fear, and lack of knowledge are caused by associating our consciousness (*viññana*)[16] with stimulus on their own sense doors (*salayatana*)[17], which teaches them to prefer pleasant sensations over unpleasant ones. This causes the arising of craving [*tanha*][18] and grasping [*upadana*][19], and in turn, it causes the creation or becoming [*bhava*][20].

Rarely can non-greed, non-aversion, and non-blindness serve as the foundation for any thought, leading to the appearance of fully wholesome moments. So, in principle, all conceivable systems produced by the history of human actions are motivated by self-preservation, self-need, and egoistic motivation, with an exception for the rules that were laid down by Buddha Sidharta for the Sangha in the Vinaya. That is why all systems produced by human philosophy and political-economic thoughts will end up in temporality, suffering, and meaninglessness [*anicca*, *dukkha*, *anatta*][21]. Furthermore, it is also wrong to think that the Buddha rejected wealth and capital growth and prescribed a life in poverty. The Buddha had clearly distinguished between laity and monks; he had prescribed different rules of life for both. The laity world was the place where economic activity and reproduction of the socially necessary conditions took place, and the monks' realm was the place where saintly spiritual goals were achieved, free from worldly worries. The monks' world, however, is still part of matter and consciousness [*rupa-nama*] and needs data from laymen for its physical existence. In contrast, the laity receive in return the dhamma of the Buddha and the necessary spiritual guidance from the monks. The Buddha gave clear instructions to the laypeople on how to organize the economy. The *Tipitaka* contains texts like the *Diighajanu Sutta*[22] and *Ujjaya Sutta*[23] that address this topic. The Buddha thus has encouraged the laity to improve well-being and prosperity. However, the fundamental distinctions from the classical economy lie in the objectives of development and

the methods employed to carry out these activities. So, the key to stability and prosperity is in the moral action of persons and not in the concepts (*paññati*) of economic systems.

For us as Buddhists, our personal salvation lies in the "extinction(*nirodha*)[24] of the consciousness, i.e., submerged in Nibbana without ever returning to the material and spiritual world, and surely not in satisfying sensory desires and personal feelings. Worldly existence is only a means to finally get into *nibbāna*[25] by wisdom [*paññā*][26]. This is the premise of the Buddhist economy: the creation of added value to facilitate the spiritual goal, the realization of Nibbana. Power, well-being, conditioned happiness, and prosperity are only a means for the Buddhist and never an end goal. A means to facilitate mental development to the point of cessation of suffering: attainment of Nibbana. Furthermore, the Buddhist avoids attachment [*upadana*] in relation to economic means, making the relationship with the strategic means only instrumental and impersonal. But even though there is equanimity [*uppekha*][27] about the means of production, the Buddha says that there are four types of economic joy that ordinary people should experience:

1. Property joy [*atthisukha*], which is the happiness that comes from having means;
2. Utilitarian joy [*bhogasukha*], which is the happiness that comes from using means in the right way;
3. Debtless joy [*ananasukha*], which is the happiness that comes from not having any obligations and having no debt;
4. Innocence joy [*anavajjasukha*]. The joy from knowing that no unskillful action was performed in obtaining wealth.[28]

The Buddha acknowledged that ownership and profit were joyful and should, in fact, be in line with moderation [*santutthi*] and control of wishes. Just as with the meditation techniques in which he taught the middle way, his economic advice to the laymen emphasizes the avoidance of extremes, excessiveness, and ill-considered action. The ogre *Avalaka* illustrates this notion by questioning the Buddha about the acquisition of wealth. The Buddha answers in a quite conservative way, saying, the approach of the Buddhist economy is therefore not so much in the systems but in the morality of the acting person within each or any economic or social system. The four principles of Buddhist economy from the perspective of the sutta: 1. Diligent acquisition [*Utthanasampada*][29] This meant skillfulness in gaining added value on an ethical basis. Specifically, six business types were labeled as unethical, namely arms trade, slavery, sale of animals to the slaughterhouse, sale of mind-expanding drugs, and sale of poison. Despite the lack of specificity, individuals such as rentiers, soldiers, actors, gamers, and executioners were also associated with negative connotations. Activities should not cause distress to others and other beings. Avoiding any form of suffering-causing activity is essential for achieving a clear consciousness. 2. Cautious conservation [*arakkhasampada*][30] This meant agility in preserving the profits and wealth obtained. Explicitly, the Buddha advised saving obtained profits or making reservations for times of need. However, people view hoarding and stockpiling as immoral. 3. Valuable friends [*kalyanamittata*][31] This term refers to valuable friends and acquaintances who can aid in their personal development, both materially and spiritually. The friends who were appointed by the Buddha to stay there possess the following qualities of faith [*sadha*], morality [*sila*], self-sacrifice [*caaga*], and wisdom [*paññā*]. 4. Within the limits of means [*samajivita*][32] This meant the art of managing and distributing expenses. The Buddha himself advised entrepreneurs to share the profits in four parts: a part for their own necessary use, two parts for reinvestment, and a part for reservation or saving. In another account, the Buddha suggests that the household's assets should be divided into five categories: A part for direct use for one's own needs, a part for generosity to friends and acquaintances, a part for your own reservation, a part intended for specific purposes (assistance to other family members, holding ceremonies, transfer of merits, etc.), and a part for the maintenance of practicing monks and ascetics. According to the four principles mentioned above, it appears that morality and spiritual control are at the heart of the Buddhist economic approach. We fully agree with the ideas of Dependent Origination [*Patticasammupadaa*], which says that material and spiritual desires are caused by consciousness becoming

identified with the six-fold range of senses. This makes the sensory cravings stronger than the biological basic needs. Here, too, lies the basis for anger, fear, blindness, stupidity, and selfishness. The non-spiritually developed person suffers from economic inability because he/she is unable to determine personal ethical boundaries and unable to retract oneself from feelings and wishes. It follows that this person has no choice but to pursue their own desires and illusions. Eventually, the illusion splits apart. These are the fruits of their own actions (*vipakka-kamma*), caught in *samsara*. F.L. Pryor[33] maintains that there is a dialectical relationship between the level of prosperity and the number of non-producing monasteries and ascetics that a society can bear. Therefore, society relies on the minimum welfare required to sustain the training and ascetic practices of the monk community. The maximum size is achieved when wealth and prosperity can sustain the maximum number of non-producing monks and monasteries. The Buddhist doctrine is therefore also consistent in stimulating activity and development as long as it falls within moral values and supports spiritual activities.

On the basis of the Buddhist starting points outlined above for the economy, we can roughly state the following as virtuous economic guidelines:

1. The production of raw materials, capital, and consumer goods aligns with the necessary supply provision. Exorbitant stimulation of demand by a supply-side economy should be avoided.
2. Financial institutions must start trading less in financial derivatives and start trading in direct business loans to trading companies and production companies, with a supporting angle towards small and medium-sized businesses.
3. Financial institutions must be less dependent on the liabilities of other financial institutions and attract money from savers and the current accounts of companies.
4. Economic education should be based on personality development, emphasizing values such as virtue, desire control, sensible consideration, moderation, communality, diligence, and refraining from pursuing personal sensory satisfaction. Conversely, we clearly designate property and possessions as the cornerstone of our society.
5. Stimulation of consumer loans or interest-only mortgages must be reversed, and, on the other hand, savings and investments must be encouraged.
6. To stimulate beneficial goods and sustainable economic sectors, clear government measures are necessary. On the other hand, governments should discourage the production of harmful products and products that are detrimental to the ecology. As a guideline, consider whether or not other living beings could cause suffering.
7. Revaluation of the free market in a partly controlled and partly free economy, where the strategic industries and sectors are held in the hands of the community, under public control.

Conclusion

Modern economic crises, marked by cyclical recessions, widespread inequality, and ecological breakdown, highlight the inadequacies of old economic frameworks that prioritize constant growth, competitiveness, and material accumulation. A mindset that separates economic activity from ethical duty and ecological interdependence is the core cause of these crises, which are not only technological failures but also ethical and systemic in nature. As a fundamental alternative paradigm for addressing these issues, Buddhist ethics and economics, which are founded on the teachings of interdependence (*paticcasamuppada*), restraint, and compassion, provide a solution. By redefining prosperity as comprehensive well-being rather than mere wealth, Buddhist teachings provide concrete ideas for reorienting economic systems toward sustainability, equality and resilience. A critique of the “three poisons”- greed (*lobha*), hatred (dosha), and ignorance (*moha*)- that Buddhists believe are the primary causes of misery (*dukkha*) lies at the heart of this strategy. With its focus on consumerism and profit maximizing, modern capitalism institutionalizes these poisons, so perpetuating the cycle of exploitation, environmental damage and social fragmentation. Buddhist economics questions this by pushing the “middle way,” which opposes both austerity and excess in favor of balanced consumption, and "right livelihood," which combines work with moral integrity. Emphasizing quality of

life, community cohesion, and spiritual fulfillment as markers of actual prosperity, these values change the focus from "having" to “having.” An important contribution of Buddhist economics is its all-encompassing measure of development. Unlike the Gross Domestic Product (GDP), which does not take into account the costs to society and the environment, frameworks such as Bhutan's Gross National Happiness (GNH) index incorporate the preservation of cultural traditions, ecological health, and mental well-being into the process of policymaking. Inspired by Buddhist ideas, Thailand's “sufficiency economy” approach also gives resilience via self-reliance, moderation, and ethical government top priority. These models show that, given awareness of connectivity, economies can grow without draining limited resources or widening inequality. Cooperative farming, ethical banking and circular production systems, for instance, help to reduce waste, build trust and fairly distribute benefits, so complement the Buddhist ideal of “sangha,” or community, as the foundation for general well-being. Buddhist economics also rewrites our relationship with the earth. Dependent origination theory emphasizes that since all life is interdependent and hence ecological damage is self-destructive. Approaches including regenerative agriculture, renewable energy transitions and rights of nature legal systems appeal to this perspective since they acknowledge ecosystems as living systems rather than exploitable goods. Buddhist ethics opposes anthropocentrism driving climate crises and biodiversity loss by presenting environmental stewardship as a moral obligation. Still, including Buddhist ideas into mainstream economics presents difficult problems. Deeply ingrained in power structures and vested interests, the global capitalist system opposes paradigm changes that compromise its growth essential. Moreover, translating ethical ideas into scalable policies calls for negotiating political, cultural, and logistical complexity. Changing to a sufficiency-based economy, for instance, could call for redistributive changes, caps on luxury consumption, and the eradication of monopolies- all of which the elites object to. Furthermore, systemic inequities cannot be resolved by Buddhist economics’ emphasis on internal reform (e.g., lowering desire through mindfulness) without supplementary structural improvements like progressive taxation, universal healthcare, and labor rights. Still, the urgency of contemporary crises demands bold alternatives. Buddhist economics holds that markets and technology have ethical uses even though it does not reject them. Ethical business models, such as B Corporations and social enterprises, exhibit this balance by prioritizing stakeholder wellbeing over shareholder profit. Similarly, if directed by compassion rather than surveillance capitalism, digital platforms can promote solidarity economies- linking local producers, enabling resource-sharing and democratizing access.

Ultimately, the relevance of Buddhist economics comes in its ability to integrate the spiritual and material components of human experience. This demands a societal change from individuality to interdependence, from a scarcity mentality to thankfulness and exploitation with stewardship. Media stories, leadership styles, and educational institutions all have to reinforce these ideals to raise a generation that views economics as a tool for crisis management.

References

[1] Narsu, P. Laxmi. “The Essence of Buddhism”, Srinivas varadachari & co., Madras, 1907, p. 75
[2] Walshe Maurice, “The long Discourses of the Buddha” a Translation of Digha Nikaya, wisdom publication, usa, 2012, pp. 399-401
[3] Bhikhu Bodhi, “The Numerical Discourses of the Buddha” a Translation of Anguttra Nikaya” wisdom publication, usa, 2012, p.914
[4] Payutto P.A., “Buddhist Economics” Buddhadharma Foundation, Bangkok, 2016, p.18
[5] Bhikhu Nanamoli & Bhikhu Bodhi, “The middle length Discourses of the Buddha” a Translation of Majjhima Nikaya” wisdom publication, usa, 2012, pp.154-155
[6] Payutto P.A., “Buddhist Economics” Buddhadharma Foundation, Bangkok, 2016, p. 20
[7] Ibid.p. 22
[8] Bhikhu Nanamoli. “Visuddhimagga” The path of purification. Buddhist publication Society, Colombo, 2010. Pp.543-545
[9] Ibid. pp. 543-545
[10] Kashyap J. “Abhidhamma Philosophy” Bhartiya Vidhya Prakashan, Delhi, 2006, p. 7
[11] Ibid. p.7

[12] Ibid. P.7
[13] Bhikhu Bodhi, "The Numerical Discourses of the Buddha" a Translation of Anguttra Nikaya" wisdom publication, usa, 2012, p. 401
[14] Ibid. P. 157
[15] Bhikhu Nanamoli. "Visuddhimagga" The path of purification. Buddhist publication Society, Colombo, 2010. Pp.543-545
[16] Ibid. Pp.543-545
[17] Ibid. Pp.543-545
[18] Ibid. Pp.543-545
[19] Ibid. Pp.543-545
[20] Ibid. Pp.543-545
[21] Ireland, John D. "Samyutta Nikaya" An Anthology part 1, Buddhist publication Society, kandy, 2016, p.70
[22] Bhikhu Bodhi, "The Numerical Discourses of the Buddha" a Translation of Anguttra Nikaya" wisdom publication, usa, 2012, Pp.1194-1197
[23] Ibid. P. 1197
[24] Horner I.B. "The Book of Discipline" Vinaya pitaka-Mahavagga. PTS, London. 2007. P.54
[25] Acharya Buddharakshita, "The Dhammapada". Buddhist publication Society, kandy,1985. P.66
[26] Ibid. P.28
[27] Kashyap J. "Abhidhamma Philosophy" Bhartiya Vidhya Prakashan, Delhi, 2006, p.30
[28] Bhikhu Bodhi, "The Numerical Discourses of the Buddha" a Translation of Anguttra Nikaya" wisdom publication, usa, 2012, P.452
[29]https://suttacentral.net/an8.54/en/sujato?lang=en&layout=plain&reference=none&notes=asterisk&highlight=false&script=latin
[30] Ibid
[31] Ibid
[32] Ibid
[33] Pryor, Frederic L. "A Buddhist Economic System. In Practice: The Rules of State Policy Making of the Ideal Kings Sought a 'Middle Way' between Right and Left." The American Journal of Economics and Sociology, vol. 50, no. 1, 1991, pp. 17–32. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/3487026. Accessed 21 Mar. 2025.



International Conference
on
BUDDHISM IN CONTEMPORARY TIMES: RELEVANCE OF JUSTICE, LIBERTY, EQUALITY & FRATERNITY



3rd October, 2022

Organized by : Gagan Malik Foundation, India

In collaboration with : ★ International Centre for Buddhist Studies, R.T.M. Nagpur University, Nagpur
★ College of Social Work, Kamptee, Dist. Nagpur ★ Sangha Kaya Foundation, India
★ Swargiya Hirabai Bahuddeshiya Shikshan Santhan, Nagpur
★ Matoshri Anjanabai Bahuddeshiya Mahila Vikas Mandal, Nagpur

GM•F
LOVE CARE SUPPORT

Certificate

This is to certify that

Dr./Mr./Mrs./Ms. Shubham Mahesh Gajbhiye

of _____ *attended the*

"Inteternational Conference on Buddhism in Comtemporary Times : Relevance of Justice, Liberty, Equality & Fraternity"

acted as Participant /Resource Person/ Chaired the session/ Speaker/ Volunteer /

Member of the organizing committee / _____ *committee member/ Presented as paper his / her*

topic आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग में आगत सम्यक् आजीव की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

held at Hotel Center Point, Nagpur on 3rd October 2022

The organizing committee appreciate his/her active participation

Smita Wakde	Dr. Vandana Ingle	Dr. Niraj Bodhi	Dr. Puranchandra Meshram	Mr. Gagan Malik
Conference Convener Vice President Gagan Malik Foundation, India	Conference Convener Secretary, M.A.B.M.V.M. Nagpur	Conference Convener HOD, I.B.S., R.T.M. Nagpur University, Nagpur	Patron Former Registrar, RTM Nagpur University, Nagpur	Chief Patron President, Gagan Malik Foundation, India

राष्ट्रहिताय संस्कृतम्

INDIAN SOCIETY FOR BUDDHIST STUDIES (ISBS)

(Registered under the Societies Registration Act VI of J & K vide No. - 4113-5 of 2002)

24th ANNUAL CONFERENCE

Hosted By :

Kavikulaguru Kalidas Sanskrit University, Ramtek, Maharashtra

September 14-16, 2024

Certificate of Attendance

Certified that Prof./Dr./Shri/Smt./Km. Shubham Mahesh Gajbhiye from Buddhist-Indic Studies, M.P. attended the Conference and actively participated in its deliberations. He/She presented a research paper entitled सम्यक् आजीव एवं बौद्ध आर्थिक व्यवस्था का साहित्यिक अनुशीलन

No T.A./D.A. has been paid to him/her for attending the Conference.

(S.P. Sharma)	(M.M. Pathak)	(Saswati Mutsuddy)	(Prasad Gokhale)
President	*General President*	*Secretary*	*Local Secretary*